तंत्र विद्या का यथार्थ

पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल

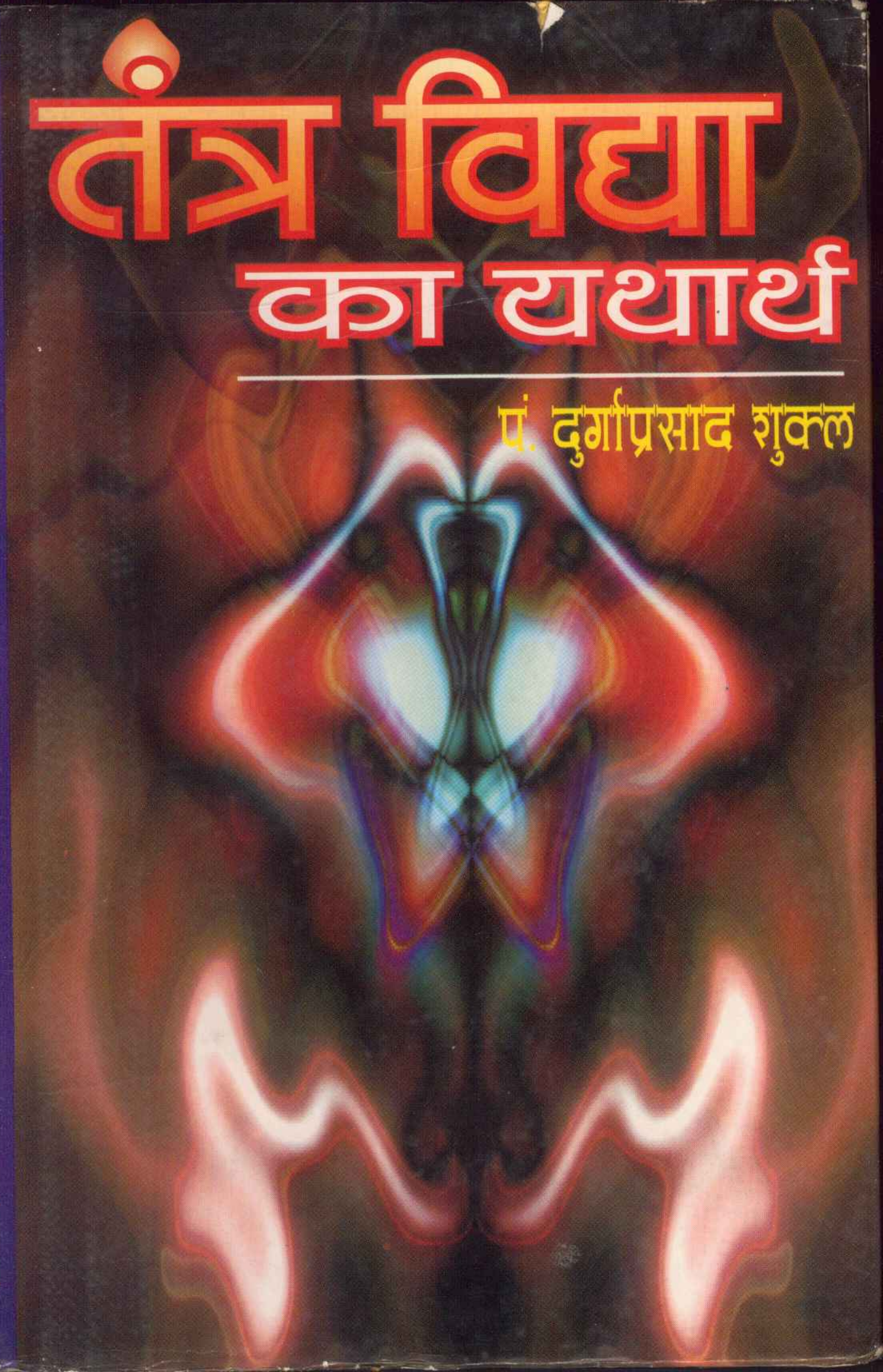

तंत्र विद्या का यथार्थ : एक अध्ययनपूर्ण विचारोत्तेजक कृति। तंत्र सिद्धांत एवं साधना के संबंध में अनेकानेक मत प्रचलित हैं। एक मत उसे उच्चतम कोटि की आध्यात्मिक साधना मानता है, जो साधक को शिव स्वरूप बना देती है, तो दूसरा मत उसे अभिचार कर्मों अर्थात् टोने-टोटके का पर्याय निरूपित करता है। एक अन्य मत, तंत्र में आदिम जन-जातियों के विश्वासों का क्रमशः परिष्करण देखता है। वास्तव में तंत्र क्या है? इसे साधना द्वारा ही समझा जा सकता है। तंत्र में अवश्य ही मानव विश्वास के कुछ सनातन मूल्य विद्यमान हैं, इसीलिए न केवल पूर्व एवं वैदिक युग में उनका प्रचलन रहा, वरन जैन, बौद्ध एवं चीन में प्रचलित ताओ धर्म में भी उन्हें प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

'तंत्र विद्या का यथार्थ' में लेखक ने तंत्र के संबंध में विभिन्न मत-मतांतरों को सार रूप में प्रस्तुत किया है। तंत्र के अर्थ, उसके उद्देश्य, उसकी विभिन्न साधना पद्धतियों एवं तंत्र-साहित्य का सम्यक् ज्ञान कराने वाली यह कृति तंत्र के मर्म को समझने में सहायक है। इसमें तंत्र के प्रति न अंधविश्वास है और न 'आधुनिक' अविश्वास! इस कृति में एक जिज्ञासु के नाते तंत्र को समझने की सफल चेष्टा है।

[illegible] के [illegible]
[illegible] सिद्ध, सदी [illegible]
[illegible]

[illegible] इस [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] होने पर
[illegible] के [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible] [illegible]
[illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]
के [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] के [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] के [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] आधुनिक
[illegible] [illegible] विशेषता है
[illegible] [illegible] [illegible] देता है।

तंत्र-विद्या का यथार्थ

पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल

मेघ प्रकाशन
दिल्ली-110006

- विलुप्त हो रहे प्राचीन एवं अधुनातन मौलिक साहित्य को विश्वसनीय रूप में प्रकाशित करने के लिए प्रतिबद्ध
- पाठकों की रुचि के संस्कार एवं स्तर निर्माण करने के लिए मार्गदर्शक ग्रंथ प्रस्तुति के लिए समर्पित
- देशगत किंवा जातिगत आग्रहों व व्यामोहों से मुक्त रहकर विश्वजनीन शाश्वत मूल्यों की प्रेरणा देने वाले चिंतन को प्रसारित करने के लिए संकल्पशील
- स्वस्थ परम्परा और उदात्त आचार-व्यवहार की स्थापना के लिए एक शालीन सारस्वत प्रयास की ओर अग्रसर

मेघ प्रकाशन
239, दरीबाकलां, दिल्ली-110006 (भारत) दूरभाष : 3278761
द्वारा प्रकाशित

© All rights reserved.
No part of this publication may be reprinted, reproduced in retrieval system or transmitted in any form or by any means electronic, mechanical, photo-copying, recording or otherwise, without the prior consent of the publisher.

संस्करण : प्रथम, सन् 2003
आवरण : मनीष डागा
शब्द-संयोजन : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रण : अरोड़ा ऑफसेट, दिल्ली-110095

TANTRAVIDYA KA YATHARTH Rs. 200/-
by Pt. DurgaPrasad Shukla

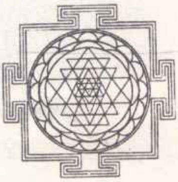

अनुक्रम

भूमिका 5
तंत्र : एक जिज्ञासा-यात्रा 8
तंत्र : अर्थ एवं उद्देश्य 28
तंत्र-शास्त्र : उद्भव और विकास 34
तंत्र-साहित्य 43
तंत्र : सिद्धांत और साधना 47
तंत्र : विभिन्न साधना पद्धतियाँ 52
तंत्र-साधना में कौल मत 56
शैव मत : मातृका चक्र 58
आम्नाय का सिद्धांत 63
शाक्तमत और शक्ति 67
दस देवियां : दस महाविद्याएं 74
तीन भावों का महत्त्व 82
तंत्र-साधना के पंचमकार 84
तंत्र-साधना में चक्रानुष्ठान 89
श्री चक्र 93
शिव और शक्ति 97

तांत्रिक चेतना 101
कुंडलिनी शक्ति की परिकल्पना 106
षट् चक्र परिचय 111
कमल दलों की संख्याओं का रहस्य 119
कुंडलिनी योग 122
बौद्ध तंत्र 126
तंत्र और ताओवाद 134
तंत्र और रसायन शास्त्र, कीमियागिरी 137
तंत्र और मनोविज्ञान 139
भारतीय सौंदर्य-शास्त्र एवं तंत्र 144
तंत्र एवं लोकायत अथवा चार्वाक-दर्शन 146
तंत्र-शास्त्र का यथार्थ 164
समापन 173

भूमिका

तंत्र-शास्त्र के संबंध में सामान्यजन ही नहीं, प्रबुद्ध जनमानस में भी अनेक प्रकार की भ्रांतियां हैं। इसी तरह तांत्रिकों के बारे में भी आज जो धारणा बनी हुई है, वह वास्तविकता से सर्वथा विपरीत है। 'तांत्रिक' शब्द का उच्चारण करते ही मानस में जो चित्र उभरता है, वह एक भय, एक आंतक की सृष्टि करता है। आंखों के सामने 'तांत्रिक' का जो व्यक्तित्व उभरता है, वह कुछ इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है : लंबे काले केश, बड़ी-बड़ी आंखें, माथे पर रक्तिम श्वेत चंदन, कानों में कुंडल, गले में छोटे-छोटे रुद्राक्षों की तथा रंगबिरंगी मणियों की मालाएं, शरीर पर लाल, काला लम्बा चोगा, कलाइयों में रुद्राक्ष की माला या लोहे अथवा सोने के कंगन।

तांत्रिक अर्थात् समस्त समस्याओं की रामबाण औषध! वह प्रेत-बाधा से मुक्ति दिलाता है, शत्रुओं का नाश, मनचाही मुराद की पूर्ति, वशीकरण आदि उसके लिए बायें हाथ का खेल समझा जाता है। हां, इन सबके बदले पूजा-पाठ; हवन आदि के लिए कुछ अर्थ भी प्रदान करना पड़ता है। आजकल दैनिक समाचार पत्रों में ऐसे तांत्रिकों के रोजाना, आकर्षक विज्ञापन भी प्रकाशित होते रहते हैं। वर्गीकृत विज्ञापनों से लेकर 'डिस्प्ले' अर्थात् चित्र सहित बड़े-बड़े विज्ञापनों के माध्यम से तांत्रिक सारी समस्याओं, रोगों, क्लेशों से चुटकी बजाते मुक्त कराने का दावा करते हैं।

इधर चार-पाँच वर्षों से समाचार-पत्रों में इस तरह के विज्ञापनों की संख्या काफी बढ़ गयी है। एक ओर जहां यह समाज-शास्त्रियों के लिए चिंतन एवं अध्ययन का विषय बन सकती है, वहीं दूसरी ओर वह समाचार-पत्रों के प्रबंधकों-संचालकों के दायित्व के विषय में भी कुछ सोचने को मजबूर करती है। विज्ञापनों का असर कोई साधारण नहीं होता। बड़ी-बड़ी कम्पनियां लाखों-करोड़ों रुपये इस मद पर खर्च करती हैं। किसी लोकप्रिय, प्रतिष्ठित समाचार-पत्र या

साप्ताहिक, मासिक में छपे ऐसे विज्ञापनों को उस प्रकाशन की साख का भी भरपूर लाभ मिलता है। समाचार-पत्रों में बड़े-बड़े विज्ञापन प्रकाशित कर लोगों को ठगने की 'कला' अब काफी विकसित हो चुकी है। आये दिन समाचार-पत्रों में इस आशय के समाचार छपते ही रहते हैं कि अमुक कम्पनी इतने करोड़ों का 'चूना' लगाकर गायब हो गई है। नौकरियां उपलब्ध कराने वाले झूठे विज्ञापनों के सहारे जहां कुछ लोग मालामाल हो गये हैं, तो कुछ कंगाल, जिन्होंने सुखद भविष्य के लिए इन विज्ञापनों के मायाजाल में पड़कर अपना सर्वस्व गवां दिया। तांत्रिकों के विज्ञापन भी कुछ इसी श्रेणी में आते हैं। निराश-हताश व्यक्ति अपनी समस्याओं के निराकरण के लिए आखिरी कोशिश के रूप में उन्हें आजमा लेना चाहता है।

ऐसे विज्ञापन कुछ समाचार-पत्रों में नियमित रूप से छपते हैं। उनके विज्ञापनकर्ता तांत्रिकों के दावों में कितनी सच्चाई है, इसे खोजने का दायित्व आज की पत्रकारिता का है। कुछ स्वयंसेवी संगठन भी इस कार्य में सहयोग बंटा सकते हैं। नागपुर की 'अंधविश्वास निर्मूलन समिति' ने ऐसा ही कार्य अपने हाथ में लिया है। समाचार-पत्रों के प्रबंधकों-संचालकों का भी विशेष दायित्व है कि वे कुछ आर्थिक लाभ के लोभ में ऐसे विज्ञापनों के प्रचार-प्रसार से बचें। समाचार-पत्रों की एक साख होती है और उसमें प्रकाशित होने वाले समाचारों-विचारों, का ही नहीं, विज्ञापनों का भी जन-मानस पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम आर्थिक लोभ के कारण गलत बातों के प्रचार-प्रसार में सहायक होते हैं तो अनजाने ही एक पाप, एक अपराध के भी भागी होते हैं। ऐसे पत्रों के पाठकों की भी भूमिका कम नहीं होती। सजग पाठकों द्वारा संपादक को पत्र लिखकर पत्र में छपी गलत बातों की ओर ध्यान आकर्षित कराना एक स्वस्थ परम्परा है। उनके पत्र संपादक को वस्तुस्थिति की सच्चाई को जांचने में मदद करते हैं। यह मेरा अपना अनुभव है।

इधर तंत्र के प्रति रुचि भी कुछ ज्यादा ही बढ़ रही है। प्रमाण हैं, तंत्र विषयक वे जेबी पुस्तकें, जिनमें तंत्र के संक्षिप्त इतिहास और सिद्धांत-साधना के संक्षिप्त विवरण के साथ कार्यसिद्धि के लिए अनेक तांत्रिक प्रयोगों की भरमार है। कोई भी तांत्रिक प्रयोग किसी योग्य गुरु के मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए। लेकिन योग्य गुरुओं का तो अकाल-सा ही है। और फिर इन पुस्तकों को पढ़ने वाला उनकी तलाश भी नहीं करता। प्रस्तुत कृति में ऐसे प्रयोगों का जान-बूझकर समावेश नहीं किया गया है। 'तंत्र-शास्त्र का यथार्थ' का उद्देश्य आम पाठक को तंत्र के उद्देश्य, उसके उद्भव और विकास अर्थात् इतिहास, सिद्धांतों एवं साधना-पद्धतियों, विभिन्न तांत्रिक संप्रदायों की एक ठोस जानकारी देना है।

साथ ही तंत्र के संबंध में व्याप्त भ्रांतियों को भी दूर करने का प्रयत्न करना है।

पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल एक वरिष्ठ पत्रकार और सक्षम कुशल संपादक रहे हैं। 'कादम्बनी' के यशस्वी संपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी के वे पुराने मित्र एवं विश्वस्त सहयोगी रहे हैं। 'कादम्बनी' के तंत्र-विशेषांकों के संयोजन में अवस्थी जी के मार्गदर्शन में उनकी सदैव सक्रिय भूमिका भी रही। एक सजग पत्रकार होने के नाते उन्होंने उस विषय को भी समझने की चेष्टा की , जिस पर पत्रिका के लोकप्रिय विशेषांक निकलते थे। मेरा उनका वर्षों पुराना संबंध है। मेरे ही आग्रह पर उन्होंने मेघ प्रकाशन के लिए ज्योतिष संबंधी कुछ पुस्तकें लीक से हटकर लिखीं। पर वे स्वयं को ज्योतिष शास्त्री नहीं मानते। उनका कहना है, मैं पत्रकार रहा हूँ, संपादन का भी अनुभव है अतः मैं पाठकों के लिए संबंधित सामग्री सिल-सिलेवार ही प्रस्तुत कर सकता हूँ।

मेरी दृष्टि में यह भी कोई कम महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं है। आमतौर पर ज्योतिष संबंधी कृतियां अंध-विश्वास बढ़ाती हैं, पर पं. शुक्ल की कृतियां पाठक को अंधविश्वासी नहीं, जिज्ञासु बनाती हैं।

'तंत्रशास्त्र का यथार्थ' भी पाठक को अंधविश्वासी नहीं, जिज्ञासु बनाएगी, ऐसा विश्वास है। आशा है, पाठक इसका लाभ उठाएंगे और अपनी प्रतिक्रियाओं से हमें अवगत कराएंगे ताकि इस कृति के अगले संस्करण में उनके आलोक में इसे और संवारा जा सके।

अशोक सहजानन्द

संपादक : 'आपकी समस्या-हमारा समाधान' (मासिक)

तंत्र : एक जिज्ञासा-यात्रा

लगभग बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध साहित्यिक सांस्कृतिक पत्रिका 'कादम्बनी' ने अपना पहला तंत्र-विशेषांक प्रकाशित किया था। यह विशेषांक तथा बाद में प्रकाशित होने वाले विशेषांक पाठकों ने मुद्रित मूल्य से अधिक राशि देकर खरीदे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इन विशेषांकों में जो भी प्रकाशित होगा, वह अर्थवान एवं सच्चाई की कसौटी पर खरा उतरने वाला सिद्ध होगा। इन विशेषांकों की लोकप्रियता के बावजूद पाठकों के एक बड़े वर्ग ने उनकी कठोर आलोचना भी की। कुछ ऐसे भी उदाहरण सामने आये, जिनसे पता चला कि पत्रिका में प्रकाशित तांत्रिकों ने उनके पास समस्या लेकर गये लोगों से अनाप-शनाप धन राशि माँगी। यद्यपि संपादक ने ऐसे तांत्रिकों की सामग्री इसी शर्त पर प्रकाशित की थी कि वे पाठकों की समस्याओं के निवारणार्थ कोई धनराशि नहीं लेंगे। जब इस आशय की शिकायतें बढ़ गयीं तो संपादक ने न केवल उन तांत्रिकों को कड़े पत्र लिखे, वरन बाद में तंत्र-विशेषांकों में ऐसे तांत्रिकों के नाम छापकर, लोगों को उनसे बचने का भी परामर्श दिया।

'कादम्बनी' के संपादकीय विभाग के एक वरिष्ठ सदस्य के नाते इन विशेषांकों के संयोजन में मुझे भी एक विशेष भूमिका निभानी पड़ी। संपादक जी ने मुझे सिद्ध, निर्लोभी तांत्रिकों की खोज कर उनके बारे में जानकारी एकत्र करने का कार्य सौंपा। इसी सिलसिले में मैंने प्रयाग, वाराणसी, हरिद्वार, विंध्येश्वरी, मैहर एवं अन्य स्थानों की भी यात्रा की। फलत: तंत्र शास्त्र को जानने की भी इच्छा हुई तथा तत्संबंधी साहित्य पढ़ने का चाव भी जागा। इस कृति में एक ओर जहां तंत्र-साहित्य के विभिन्न ग्रंथों के सार से पाठकों को परिचित कराने का यत्न है, वहीं दूसरी ओर तांत्रिकों की खोज में मिले अनुभव भी प्रस्तुत हैं।

यहां सर्वप्रथम मैं एक प्रसंग उद्धृत करना चाहूँगा जो अपने-आप में बहुत कुछ कह जाता है।

अष्टभुजा : साक्षात देवी या सिद्ध साधिका?

विंध्येश्वरी देवी का स्थल तांत्रिकों का एक बेहद पुराना क्षेत्र माना जाता है। विंध्येश्वरी देवी की इस क्षेत्र में ही नहीं भारत के अन्य क्षेत्रों में भी बहुत मान्यता है। यहां दूर-दूर से यात्री आते हैं। लेकिन सारा परिसर एक व्यावसायिक आसक्ति से भरपूर नजर आता है। 15-16 वर्ष पूर्व वहां 532 पंडे थे और दिन में चार परिवारों को पूजा का भार संभालना पड़ता था। चढ़ावा लेने की होड़ में लगे लोगों को देख तब मन बेहद खिन्न हुआ था। विंध्येश्वरी देवी के दर्शन के बाद मैं कालीखोह होता हुआ अष्टभुजा के दर्शन के लिए गया था। कालीखोह में काली के अलावा शिव मंदिर है। ऊँची पहाड़ी पर स्थित अष्टभुजा का स्थल आज तीर्थस्थान कम, एक पिकनिक स्पॉट ज्यादा लगता है। पिछले कुछ वर्षों में वहां काफी तब्दीली आयी है। सीढ़ियाँ भी बन गयी हैं। दुकानों की संख्या बढ़ने के साथ-साथ अब अनेक गेरुए वस्त्रधारी लोग भी कुछ ज्यादा नजर आने लगे हैं।

लगभग बीस-पच्चीस वर्ष पूर्व यह स्थान प्राय: निर्जन था। यह निर्जनता एक सात्विकता की भी सृष्टि करती थी। पहाड़ी से दिखायी देती गंगा, चाँदी-सा चमकता रेतीला तट, क्षण भर के लिए व्यक्ति को सबसे दूर कर देता था। अष्टभुजा के दर्शन के बाद मैंने वहां उपस्थित एक पुजारी श्री धरती नारायण मिश्र से अपनी यात्रा का उद्देश्य बताया। वे गत 23 वर्षों से वहां थे। उनका व्यक्तित्व दर्शा रहा था कि वे भी साधना किया करते हैं। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तथा पूछा कि क्या वे किसी सिद्ध तांत्रिक के बारे में कोई जानकारी दे सकते हैं, जिनसे मिला जा सके।

वे किंचित मुस्कान के साथ बोले, 'देखिए, सिद्ध तांत्रिक कोई वस्तु तो है नहीं, जो दुकान पर जाने से मिल जाए। यहां आपको कोई ऐसा सिद्ध तांत्रिक नहीं मिलेगा।' आगे उन्होंने बताया कि, 'पर ऐसी बात भी नही कि सिद्ध तांत्रिक यहां आते ही नही। वे आते हैं, मां का दर्शन करते हैं और चुपचाप चले जाते हैं। उन्हें पहचानना भी कठिन होता है। इसलिए यहां तो आपको निराशा ही मिलेगी। हां, कुछ दिन यहां रहिए। भाग्य हुआ तो शायद किसी सिद्ध तांत्रिक से भेंट भी हो जाए।' उन्होंने बताया कि 'रात को आज भी देवी की सवारी निकलती है। एक विशालकाय सिंह पर सवार देवी शृंगार किये रहती हैं। पर वे सबको दिखायी नहीं देती। वे हर मंदिर में जाती हैं। कोई-कोई उन्हें देखकर मर जाता है।' उनके वाक्य एक परम्परा की उद्घोषणा ही थे। एक ओर वे जहां मुझे वास्तविकता से परिचित करा रहे थे, वहीं वे कहीं, मेरे तांत्रिकों की खोज के

इस उपक्रम पद्धति का उपहास भी उड़ा रहे थे।

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और नीचे उतर आया। राह में एक चाय की दुकान पर मैं रुक गया। मेरे साथ आज के प्रसिद्ध कम्प्यूटर ज्योतिषी अजय भांभी भी थे। हम लोग एक बेंच पर बैठ गये तथा चाय के लिए कहा।

थोड़ी देर बाद जब दुकानदार, जिनका नाम राधेलाल गुप्त था, चाय लेकर आये तो मेरी निगाह उनके हाथों पर पड़ गई। बायां हाथ कभी बुरी तरह से जल गया प्रतीत होता था।

मैंने उनसे पूछा, 'अरे आपके हाथों में यह क्या हुआ था?'

वे बोले, 'बाबूजी, इसी कारण तो यहां मां के चरणों में पड़े हैं' और फिर उन्होंने जो आपबीती सुनायी, उसका सार इस तरह है :

वे मिर्जापुर के रहनेवाले थे, हलवाई का काम पुश्तैनी था। बचपन में वे इलाहाबाद में रहे थे अपने मामा की दुकान पर। उनके ही शब्दों में,

"एक दिन की बात है, मैं दुकान के ऊपरी हिस्से से खोए की थाली लेकर सीढ़ियों से उतर रहा था। बच्चा ही था। अचानक मेरी नजर नीचे पड़ी। एक ओर भट्टी पर कड़ाही में तेल उबल रहा था और दूसरी ओर एक बनिया चिल्लर पैसों की ढेरियाँ लगाये बैठा था। अचानक मेरे दिल में यह ख्याल आया कि यदि मैं सीढ़ी से फिसल गया तो या तो मैं उबलते तेल की कढ़ाई पर जा गिरूंगा या फिर चिल्लर की ढेरियों पर। तब मुझे यह बनिया बहुत मारेगा। होनी कुछ ऐसी हुई कि मेरा डर सच निकला। मेरा पैर फिसल गया और चिल्लर की ढेरियों पर न गिरूं, इस कोशिश में तेल की कढ़ाई के पास जा गिरा। खोए की थाली छूट गयी। कढ़ाई भी उलट गई और उबलते तेल से मेरे हाथ बुरी तरह से जल गये। 'बाबू' (पिता) ने बहुत दवा-दारू की, कोई फायदा नहीं हुआ। घाव पक गया। भरने का नाम ही नहीं ले। हारकर माई (मां) एक दिन मुझे यहां ले आयीं। लोगों ने उनसे कहा, 'दवा बहुत कर ली। अब मां की शरण जाओ। अष्टभुजा रोज आधी रात के बाद सिंह पर निकलती हैं, वही इसे ठीक करेंगी।'

"सो माँ यहां आ गयीं। रात हुई तो उन्होंने मुझे इसी जगह पगडंडी पर डाल दिया और स्वयं सामने चट्टान के पीछे छिप गयीं।

"आधी रात के बाद मंदिर की ओर से सफेद साड़ी में एक स्त्री आती दिखायी दी। माँ की साँस थम गयी। उनके लिए वही स्त्री देवी थी। वह स्त्री मेरे पास आयी। राह में मुझे पड़ा देखकर पूछा, 'को है ई कोढ़ी! काहे पड़ा है?' मैं तो बेसुध था। माँ भी चट्टान की ओर से नहीं निकलीं।

काफी देर बाद वही स्त्री पुनः गंगा की ओर से आती नजर आयीं। मुझे

राह में पड़ा देखकर उसने फिर पूछा, 'को है, काहे पड़ा है?'

अब की बार माँ चट्टान की ओर से निकल आयीं। बोलीं, 'आपने लड़कन से कुछ कहा नहीं, ताहे से पड़ा है।'

उस स्त्री ने कुछ नहीं कहा। लोटे से गंगा जल मुझ पर छिड़का और चली गयी। बाद में मैंने माई से पूछा, 'ई हाथ काहे गीला है! का हुई गवा?'

माई बोलीं, 'चुप रह।'

दूसरे दिन से घाव भरने लगा। मैं बिलकुल ठीक हो गया। बस, बाबूजी, जब से प्रण कर लिया कि मां ने नयी जिंदगी दी है, अब बाकी का जीवन भी उनके चरणों में गुजार दूँगा। थोड़ा बड़ा हुआ तो यहीं यह दुकान कर ली।"

क्षणभर रुककर उन्होंने आगे कहा, "बाबूजी, उस रात किसी स्त्री ने नहीं, साक्षात अष्टभुजा माई ने मुझे ठीक किया था!"

मेरे मन में संदेह-सा जागा। पूछा, 'क्या उसके बाद कोई दवा ली थी?'

"नहीं बाबू! माई ने सब कुछ बंद कर दिया। बस, मैं तो मां के जल से ठीक हो गया।"

बाद में 'कादम्बिनी' के एक तंत्र-विशेषांक में यह प्रसंग प्रकाशित भी हुआ। मैंने उसमें लिखा था कि उस रात शायद किसी सिद्ध साधिका ने अभिमंत्रित जल से उपचार किया होगा। वर्षों बाद एक बार फिर तंत्र-विशेषांक के सिलसिले में विंध्येश्वरी जाना हुआ। इस बार मेरे साथ 'कादम्बिनी' के उप सम्पादक सुजीत वाजपेयी थे। हम लोग अष्टभुजा भी गये। उन दिनों वहां राष्ट्रपति आने वाले थे। काफी साफ-सफाई का आलम था। सीमेंट का एक विशाल पक्का मण्डप भी तैयार हो चुका था। वर्षों पहले की निर्जनता अब कोलाहल में बदल गयी थी। कहीं पुजारियों के वस्त्र सूख रहे थे, कहीं सामान बिखरा हुआ था। वर्षों पहले केवल एक पुजारी थे। वह भी रात को नीचे उतर आते थे। अब सफेद कुरता-पाजामा पहने एक बलिष्ठ युवक चढ़ावे की माँग कर रहा था।

मन कुछ खिन्न-सा हो उठा। नीचे उतरते समय अनुमान से उसी दुकान के सामने रुका। वह सज्जन उस समय नहीं थे। पूछा, "यहां एक दुकानदार थे, जिनके दोनों हाथ जल गये थे। वे कहां हैं? क्या वे यह दुकान बेच गये?"

पास के दुकानदार ने जवाब दिया, "नहीं, नहीं, यहीं हैं। माई के दर्शन को गये हैं। आते ही होंगे।"

हम लोग वहीं बेंच पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद वे लाल गमछा पहने मंदिर से आये। मैंने हंसकर पूछा, "आप पहचानते हैं मुझे?"

वह बोले, "अरे बाबू जी, आपको कैसे भूलूँगा। पता नहीं, आपने कहां क्या छाप

दिया था। मेरे पास कई लोग आये। सभी उस घटना के बारे में पूछते थे।''

कुछ देर बातें करने के बाद मैं वहां से निकल पड़ा। सोचता रहा, क्या अभी भी यहां साधक आते होंगे। एक दो लोगों से पूछा तो किसी ने बताया था कि एक तांत्रिक ऊपर कहीं रहते हैं। पर उनके पास भीड़ लगी रहती है। मुझे सहसा पुजारी जी की बात याद आ गयी। सिद्ध तांत्रिक तो किसी को अपना परिचय देते नहीं। अतः उन तांत्रिक महोदय से बिना मिले लौट आया। जब मैं उक्त दुकानदार से बातें कर रहा था, तो कुछ गेरुए वस्त्रधारी भी हम लोगों की बातें सुन रहे थे। उनमें से एक ने शिरडी के साईं बाबा जैसा व्यक्तित्व बना रखा था। उनके सिर पर वैसी ही कफनी, वैसी ही दाढ़ी, बैठने की मुद्रा भी वैसी ही। और स्वयं ही उन्होंने कहा भी कि लोग मुझे शिरडी बाबा कहते हैं।

अपने शरीर पर लिया गुरु ने शिष्य का संकट

एक बार वाराणसी में मैं गुलाबबाग स्थित होटल वरुणा में ठहरा था। तंत्र-विशेषांक के सिलसिले में ही वहां गया था। सौभाग्य से मेरी भेंट होटल के स्वामी श्री त्रिलोकी नाथ जायसवाल से हो गयी। अपना परिचय दिया, यात्रा का उद्देश्य बताया। परिचय आत्मीयता में बदल गया। श्री जायसवाल जी की आंखें बड़ी-बड़ी और लाल-सी थीं, जैसे वे रात भर सोये नहीं थे। बातों-बातों में उन्होंने बताया कि वे काशी के सुप्रसिद्ध तांत्रिक श्री सुधीर रंजन भादुड़ी के शिष्य रह चुके हैं। प्रख्यात फ्रांसीसी लेखक पॉल ब्रंटन ने भी अपनी एक कृति में श्री सुधीर रंजन भादुड़ी का उल्लेख किया है। गुरु की कृपा से अभी भी साधना करते हैं। अनुरोध करने पर उन्होंने संकट निवारण के लिए कुछ अनुभूत प्रयोग भी बतलाये, जो बाद में 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित भी हुए। 'कादम्बिनी' के संपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी उन दिनों 'साप्ताहिक' के भी संपादक थे तथा 'कादम्बिनी' के तंत्र विशेषांक की तरह उन्होंने 'साप्ताहिक' का भी तंत्र-विशेषांक प्रकाशित किया था। श्री जायसवाल ने स्व. सुधीर रंजन के संबंध में अपने कुछ संस्मरण भी सुनाये थे।

उन्होंने बताया कि, 'मैं अक्सर गुरुजी के पास जाता। मैं देखता कि गुरुजी को जब भी किसी को कुछ देना होता तो वे मकान में ऊपर बने एक कमरे में जाते हैं। कभी-कभी वे अपने पास आने वालों को मिठाई, ताजे फल या और भी अन्य वस्तुएँ भेंट करते। कभी-कभी भक्त जो माँगता, उसे भी लाकर दे देते।

यह देखकर मुझे कुछ उत्सुकता सी हुई कि गुरुजी ये चीजें आखिर लाते कहां से हैं? कौन उन्हें देता है?

मैंने उनसे पूछा भी। पर वे उत्तर टाल गये। हां, एक चेतावनी जरूर दी कि कभी मेरे पीछे-पीछे ऊपर मत आना। मेरी उत्सुकता और बढ़ गयी। और एक दिन मैं स्वयं को न रोक पाया। एक दिन जब वे ऊपर उस कमरे में गये तो मैं भी दबे पाँव उनके पीछे हो लिया।

ओट से देखा कि गुरुजी एक आले के सामने खड़े कुछ बुदबुदा रहे हैं थोड़ी देर बाद देखा कि वे हाथों में ढेर सारा सामान लिये लौट रहे हैं। मैं छिपने की कोशिश करता, पर उन्होंने मुझे देख लिया था। उन्होंने मुझे पास बुलाया और खूब डाँटा। मेरी नजर उस आले पर भी पड़ी। वहां कुछ नहीं था। मैंने गुरुजी से क्षमा माँगी, रो पड़ा। उन्होंने मुझे माफ करते हुए कहा, "दोबारा ऐसी गलती नहीं करना।"

श्री जायसवाल ने स्व. भादुड़ी के संबंध में एक और रोमांचक संस्मरण सुनाया। वे बोले, 'हुआ यह था कि मैंने इलाहाबाद में एक नयी कार बुक की थी। वह आ गयी थी। मुझे उसकी डिलीवरी लेनी थी। सोचा कि अपनी पुरानी कार से जाऊँगा, और वहां से नयी कार में आऊँगा। पुरानी कार बाद में आती रहेगी।' मैं गुरुजी को यह सब बताने और यात्रा के लिए उनकी अनुमति लेने गया। उन्होंने मुझसे कहा, 'नहीं आज नहीं जाना है। तुम आज इलाहाबाद बिलकुल नहीं जाओगे।'

मैं घर वापस आ गया। पर नयी कार का लोभ मैं रोक न पाया और गुरुजी की बात को अनदेखा करते हुए कार से इलाहाबाद के लिए रवाना हुआ। अभी वाराणसी से निकला भी नहीं था कि वरुणा नदी के पास एक रेलवे क्रासिंग पर मेरी कार जबर्दस्त दुर्घटना का शिकार हो गयी। लेकिन सौभाग्य से मुझे खरोंच तक नहीं आयी। मुझे गुरुजी की चेतावनी याद आ गयी। सोचा, शायद वे भावी जानते थे। इसलिए मुझे जाने से रोक रहे थे। उन्हें सारी घटना बताने मैं उनके घर गया। पहुँचा तो देखा कि उसने सारे शरीर पर पट्टियाँ बँधी हैं। मुझे देखते ही बोले, "तुझसे कहा था न कि आज न जाना। देख रहा है मेरा हाल!"

ओह, अब मुझे जरा-सी भी खरोंच न आने का रहस्य एकाएक उजागर हो गया। गुरुजी ने मुझे तो दुर्घटना से बचा लिया, पर लगने वाली सारी चोटें अपने ऊपर ले लीं।

क्या ऐसा संभव है?

उस दिन भी मन में यह प्रश्न उठा था और आज भी जब यह प्रसंग

याद आता है तो उसके साथ ही यह प्रश्न भी सिर उठाये उत्तर की राह ताकता है।

यों, सुप्रसिद्ध नीम करौली बाबा से संबंधित एक ऐसा ही प्रसंग भी 'कादम्बिनी' में प्रकाशित हुआ था। वह प्रसंग किसी सैन्य अधिकारी का था। वे नीम करौली बाबा के भक्त थे। एक बार वे रात भर गोलियों की बौछारों के बीच फँस गये पर आश्चर्य, कोई भी गोली उनके पास आकर भी उन्हें घायल नहीं कर पायी। बाद में जब वे नीम करौली बाबा से मिले तो उन्होंने उन्हें एक पोटली दी। उसे खोलकर देखा था तो उसमें गोलियाँ भरी पड़ी थीं। तब उन्हें भान हुआ कि उस रात गोलियों की बौछारों के बीच वे क्यों नहीं घायल हुए! कौन उनकी रक्षा करता रहा!

मंत्र-दर्शन

वाराणसी में ही मलदहैया की बादशाह बाग कालोनी में डॉ. परमहंस मिश्र से तंत्र के संबंध में काफी कुछ जानने का अवसर मिला। डॉ. मिश्र स्वाधीनता सेनानी भी रह चुके हैं। प्रत्यभिज्ञ दर्शन के संदर्भ में उन्होंने प्रसाद साहित्य का विशेष अध्ययन किया और इसी सिलसिले में उन्होंने तंत्र एवं आगम शास्त्र को भी गहराई से जाना। फिर 'विश्वमित्र' महाकाव्य में 'मंत्र-दर्शन' सर्ग के लिए उन्होंने साधना की आवश्यकता समझी। उन्हें इस सर्ग को लिखने में तीन वर्ष लगे। उन्होंने बताया कि, 'जिस तपस्या के संदर्भ में साधक ऋषि निर्विकल्प स्थिति की प्रकाशात्मका पराकाष्ठा को प्राप्त करता है, उस समय प्रकाश रूप परब्रह्म से उसका प्रकाशात्मक संदर्भ जुड़ जाता है, जहां परा वाक्य प्रकाशात्मक तेजस के रूप में ऋषि के मस्तिष्क में मंत्र रूप में ही प्रत्यक्षीकृत हो जाता है।' डॉ. मिश्र ने बताया कि इसी स्थिति में पहुँचकर ही मंत्र-दर्शन सर्ग लिखा जा सकता था और इस सर्ग को लिखने में उन्हें तीन वर्ष लगे।

डॉ. मिश्र को इस बात पर खेद था कि तंत्र-शास्त्र की साधनात्मक परम्परा का इस समय प्रायः ह्रास हो चुका है। यह कुछ ही लोगों के पास रह गयी है। जहां तक साधना का प्रश्न है, इसे प्रायः लोग हठयोग तक सीमित मान लेते हैं, यद्यपि साधना सर्वसाधारण के वश की बात नहीं है लेकिन इसकी प्रकृति, प्रवृत्ति और प्रक्रिया से परिचित होने में सभी लोग समर्थ हो सकते हैं। साधारणतः हर व्यक्ति साधना के लिए प्रयत्नशील भी होता है तथापि मार्गदर्शन के अभाव में निराश हो वह इससे विरत हो जाता है।

साधना की एक सरल पद्धति

डॉ. मिश्र ने साधना की एक सरल पद्धति भी बतलायी। कहा कि सर्वप्रथम व्यक्ति, सुखासन, पद्मासन, वज्रासन या आसानी से सध जाने वाले किसी भी आसन में बैठे। फिर वह अपने मेरुदण्ड या रीढ़ को लम्बवत् कर अपने दोनों हाथ अपने घुटनों पर रखकर नेत्र बंद कर या खोलकर नासिका के अग्रभाग में देखने का अभ्यास करे। उसमें बहुत अधिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती। चाहे व्यक्ति को शरीर में स्थित चक्रों की वास्तविक स्थिति का भान भी न हो, फिर भी वह अपने शरीर में इन चक्रों का ध्यान तथा स्वयं में चिरंतन चैतन्य का आधान (अर्थात् आरोपण) करे। यदि इस विषय में मन में कुछ जिज्ञासाएँ उठती हैं तो उन्हें शुभ माना जाएगा। यह इस बात का भी संकेत है कि व्यक्ति की प्रवृत्ति उस दिशा में बढ़ रही है।

मन चंचल है। उसे वश में करना दुष्कर है। गीता भी इसे दुष्कर मानती है। तथापि तंत्र-शास्त्र मन को वश में करने की एक बेहद सरल विधि प्रस्तुत करता है। तंत्र-शास्त्र कहता है :

यत्र यत्र मनः गच्छेत् तत्र तत्र समा विशेत्

अर्थात् चूंकि परम शिव का चैतन्य सर्वत्र व्याप्त है, अतः मन जहां कहीं भी जाता हो, उसे वहीं चैतन्य में डुबो देना चाहिए।

मन की एकाग्रता की स्थिति में हर व्यक्ति को तीन प्रकार की बातों का विमर्श करना चाहिए।

1. इदम् इदम्, अहम् अहम्

इस स्थिति में संसार की सत्ता का पृथक और अपनी सत्ता का पृथक आकलन, जो प्रत्यक्ष जान पड़ता है, स्पष्ट हो जाता है।

दूसरा विमर्श है–

2. इदम् अहम्

इस विमर्श में सारा जगत अपनी अहंता में सिमटता जान पड़ता है। इदंता गौण होने लगती हैं, अहंता सामने आती है।

तीसरी स्थिति में इदंता का अहंता में पूर्ण विलय हो जाता है। इस आनंद अवस्था में पहुंचकर व्यक्ति को समरसत्व की अनुभूति होती है। जिस तरह दो सच्चे मित्र स्वयं को अभिन्न समझते हैं, या स्त्री-पुरुष रति-क्षण में एकात्मकता का अनुभव करते हैं, ठीक उसी प्रकार अहंता में उसकी समरसता में सारा विश्व आत्मसात हो जाता है।

इस साधना में यदि कोई गुरु न भी मिले तो भी आत्म-चिंतन के आधार पर परमानंद की प्राप्ति की जा सकती है। शर्त यही है कि व्यक्ति को इस अभ्यास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए।। प्रवृत्ति अर्थात् संसार में रहते हुए आत्मतत्व का जागरण इसी पद्धति से किया जा सकता है। आत्म-चिंतन से सामाजिकता भी संस्कार संपन्न होती है। किसी योगी का भौतिक शरीर भौतिक न रहकर चित्त के चैतन्य के स्पंदन का आधार बन जाता है और उससे ऐसी विद्युत किरणों का प्रवाह निसृत होता है कि उसके संपर्क में आने वाले लोगों के भी संस्कार संवरने लगते हैं। लोग ऐसे योगी के पास बैठने से स्वयं में प्रेरणा के संचार का अनुभव करते हैं।

ढुंढिराज गणेश द्वारा ज्योतिष ज्ञान

वाराणसी में लंका निवासी श्री एस.एन. खंडेलवाल अक्सर 'कादम्बिनी' कार्यालय आया करते थे। वे महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ जी कविराज के सानिघ्य में रह चुक थे। उन्होंने स्वयं 'जपसूत्रम्' एवं तंत्र-शास्त्र की अनेक दुर्लभ महत्वपूर्ण कृतियों का अनुवाद किया है। अतः उम्मीद थी कि वे वाराणसी के किसी सिद्ध तांत्रिक के बारे में जरूर जानते होंगे। इसी उद्देश्य से एक शाम मैं उनके घर पहुँचा था। उनकी बैठक में सात-आठ लोग बैठे हुए थे। उन्हीं के बीच एक सज्जन थे, जिन्हें सब लोग 'गुरुजी' कहकर सम्बोधित कर रहे थे। हालांकि उनकी अवस्था बहुत ज्यादा नहीं थी। श्यामल वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें! श्री खंडेलवाल ने उनका परिचय कराते हुए बतलाया कि वे काशी के सुप्रसिद्ध तांत्रिक स्व. सुधीर रंजन भादुड़ी के पुत्र श्री ब्रह्मगोपाल भादुड़ी हैं। स्वयं भी एक सिद्ध तांत्रिक। श्री भादुड़ी ने तेरह विषयों में एम.ए. कर लिया था, अब चौदहवें विषय में एम.ए.. करने जा रहे थे।

बाद में श्री भादुड़ी के रामापुरा स्थित निवास पर उनसे काफी देर तक बातें हुईं। उन्होंने अपने स्वर्गीय पिता के संबंध में भी जानकारी दी। वे बंगाल के नवद्वीप के राज परिवार की शाखा से संबंधित थे। 26 वर्ष की अवस्था में वे काशी में प्रख्यात ज्योतिर्विद पं. सुधाकर द्विवेदी से विद्या अध्ययन के लिए आये। लेकिन कुछ कारणों से द्विवेदी जी ने उन्हें अपना शिष्य बनाना अस्वीकार कर दिया। इस उपेक्षा से मर्माहत सुधीर रंजन जी विश्वनाथ मंदिर के पास ढुंढिराज गणेश मंदिर के बाहर बैठ गये। इसी बीच उन्हें नींद-सी आ गयी। तंद्रा टूटी

तो उन्हें लगा, जैसे साक्षात् गणेश जी कह रहे हैं, "चिंतित होने की जरूरत नहीं, मैं तुम्हें लक्ष्य की सफलता के लिए मार्गदर्शन करूंगा।' इसके बाद सवा वर्ष तक नित्य प्रति ब्राह्ममुहुर्त के पूर्व देहबोध रहित अवस्था में मध्यमा वाक रूप में उन्हें ज्योतिष ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता रहा। बाद में उन्होंने साधना शुरू की। जीविकोपार्जन के लिए उन्होंने बाँस फाटक में एक मकान ले, ज्योतिष कार्यालय खोला। पाल ब्रंटन ने वहीं उनसे भेंट की थी।

सुधीर रंजन जी को पुस्तकें एकत्र करने का बड़ा शौक था। उनका पुस्तकालय तंत्र एवं ज्योतिष पुस्तकों के अलावा अन्य पुस्तकों से भरा पड़ा था। अनेक पुस्तकें चमड़े पर लिखी हुईं थीं। नेपाल से भी वे दुर्लभ तंत्र साहित्य लाये थे। भादुड़ी जी के देहांत के बाद स्वर्गीय संपूर्णानंद जी ने इस दुर्लभ साहित्य की सुरक्षा के लिए उसे एक पुस्तकालय को सौंप दिया लेकिन दुर्भाग्य से उनकी कुछ पुस्तकें चोरी से बेची जाने लगीं। उन दिनों श्री ब्रह्मगोपाल भादुड़ी स्वर्गीय पिता के इसी साहित्य को लेने के लिए मुकदमे की तैयारी में जुटे थे।

उनकी एक बहन भी थीं दुर्गादेवी, जो उन दिनों रुग्ण थीं। जायसवालजी ने बताया कि तंत्र पर उनकी पकड़ भाई से ज्यादा थी।

श्री भादुड़ी ने 'कादम्बिनी' के पाठकों के लिए कुछ यंत्र-मंत्र भी बनाकर दिये थे। वे प्रकाशित भी हुए। श्री भादुड़ी के निवास पर हमेशा भारी भीड़ रहती थी। लोग तरह-तरह की समस्याएँ लेकर उनके पास आते। वे दक्षिणा लेकर उनकी समस्या के निराकरण के लिए उपाय सुझाते।

विशुद्धानंद कानन का नवमुंडी आसन

वाराणसी में ही मुझे सूर्य-विज्ञान के प्रणेता विशुद्धानंद जी के बारे में पता चला। विशुद्धानंद जी की चर्चा स्व. कविराज ने भी बेहद आदरपूर्वक की है। विशुद्धानंद जी एक स्वतंत्र पुस्तक का ही विषय हैं।

मलदहैया में उन्होंने विशुद्धानंद कानन की स्थापना की। जब भी वाराणसी जाना होता है, वहां अवश्य ही जाता हूँ। वहीं मुझे विशुद्धानंद द्वारा स्थापित नवमुंडी आसन को देखने का अवसर मिला। विशुद्धानंद कानन के एक निर्जन स्थल पर स्थापित इस नवमुंडी आसन की तरंगों को मैंने भी अनुभव किया। वहां ज्यादा देर तक रुक न पाया। आसन के द्वार पर हमेशा ताला रहता है, तथा सभी को वहां जाने की अनुमति नहीं, उनकी अपनी सुरक्षा की दृष्टि से।

वाराणसी में ही एक दक्षिणी सज्जन मुझे सीटी बाबा के दर्शन कराने ले गये। हम लोग उनके लिए पान ले गये थे। एक गंगा के किनारे पहली मंजिल पर वे खाट पर लेटे थे। सामने गंगा दिखायी दे रही थीं। हम लोगों ने उन्हें प्रणाम किया। उन सज्जन ने सीटी बाबा को पान भेंट करने में पूर्व उसे कुचला। बाबा के दाँत नहीं थे। गौरवर्ण, कृशकाय शरीर लेकिन चेहरे पर अपूर्व तेज।

बिना कुछ बात किये हम लोग लौट आये।

वाराणसी में मेरी अनेक तांत्रिकों से भेंट हुई। लेकिन शीघ्र ही मैं समझ गया कि सिद्ध तांत्रिकों की इस तरह तलाश व्यर्थ है, कुछ सीमा तक नासमझी भी। लेकिन 'कादम्बिनी' का तंत्र-विशेषांक तो प्रति वर्ष प्रकाशित करना ही पड़ता था। संपादक कभी नहीं भी चाहते तो भी प्रसार विभाग का जबर्दस्त आग्रह होता कि दीपावली पर ऐसा विशेषांक प्रकाशित किया ही जाए। क्योंकि इस विशेषांक की लाख से अधिक प्रतियाँ छपती थीं जो पत्रिका की प्रसार-संख्या के वार्षिक औसत में वृद्धि कर देती थी। अतः एक तरह से तंत्र विशेषांक एक 'मजबूरी' भी बन गयी थी।

एक निस्पृह सिद्ध योगी : हस्वा के नागा बाबा

अपने अब तक के जीवन में मुझे एक ही बाबा के दर्शन हुए, जो पूर्णतः निस्पृह थे। लोग उन्हें सिद्ध तांत्रिक कहते थे। पर उन्होंने इससे इंकार ही किया। वे थे, फतेहपुर के पास हस्वा के नागा बाबा।

हस्वा के नागा बाबा के संबंध में मुझे अपनी पत्नी के चचेरे भाई शरद मिश्र और उनके जीजा श्री ओंकार तिवारी से जानकारी मिली थी। शरद तो बाबा के भक्त और शिष्य ही थे और ओंकार जी भी जब-तब उनके दर्शन को जाया करते थे। उनका कहना था कि बाबा सिद्ध हैं। उनकी कृपा से कई लोगों के बिगड़े काम बन गये हैं। शरद ने भी बताया कि कैसे एक दिन उसके कमरे में आग लग गयी तो सब चीजें जल गयीं लेकिन पूजा में नागाबाबा का चित्र पूर्णतः सुरक्षित रहा।

उन दिनों 'कादम्बिनी' के चित्रकार श्री सुकुमार चटरजी की पत्नी एक दुर्घटना का शिकार होकर शैय्या पर ही पूरी जिंदगी बिताने के लिए विवश हो गयी थीं। बाबा के चमत्कारों का वर्णन सुन-सुनकर मैंने और चटरजी ने हस्वा जाने का निर्णय किया। एक दिन हम लोग यानी मैं और चटरजी, 'कादम्बिनी'

के एक सहयोगी डॉ. जगदीश चंद्रिकेश एवं 'हिन्दू' के फोटोग्राफर श्री एस. अरनेजा हस्वा के लिए रवाना हुए। कानपुर, वहां से बस द्वारा फतेहपुर और फिर इक्के से हस्वा। हम लोग दोपहर ग्यारह-बारह बजे तक उनके आश्रम में पहुँच गये थे। आश्रम गाँव से दूर एक सुनसान स्थल पर था। पास ही आम का बाग था। आश्रम के पास ही एक हाईस्कूल था। बाद में पता चला कि वह बाबा की कृपा से ही चल रहा है।

आश्रम एक मंजिला था। एक बड़ी-सी दालान थी। कुछ कोठरियाँ बनी थीं। एक कोठरी में मंदिर था। पता चला, बाबा ऊपर विश्राम कर रहे हैं। दो ढाई बजे नीचे आएँगे। आश्रम के पास पीपल या बरगद का एक विशालकाय वृक्ष था। लोगों ने बताया कि बाबा यही चारों ओर आग जलाकर साधना किया करते थे। आश्रम के सामने एक कोठरी-सी थी। लोगों ने बताया कि बाबा ने यहां भी वर्षों तक साधना की। उनसे ही पता चला कि बाबा के महाराष्ट्र एवं बंगाल में काफी बड़ी संख्या में शिष्य हैं, जो गुरु पूर्णिमा को यहां एकत्र होते हैं, तब एक भंडारा होता है।

प्रतीक्षा करते-करते समय कब बीत गया, पता ही नहीं चला। सहसा हम लोगों ने देखा कि सीढ़ियों के पास जाने कहां से बीसियों कुत्ते आकर एकत्र हो गये हैं। वे सब गरदन उठाये ऊपर की ओर ताक रहे हैं। किसी ने बताया कि उन्हें पता चल गया है बाबा आने वाले हैं।

कुछ ही पलों में बाबा नीचे आये। ऊँचा शरीर, घनी सफेद दाढ़ी, आँखों में अद्‌भुत चमक, पूर्णतः निर्वस्त्र। वे आये तो सारे कुत्ते भूंकने लगे पर बाबा की एक फटकार ने उन्हें चुप करा दिया।

अन्य लोगों की भांति हम लोग भी एक ओर हाथ जोड़े खड़े रहे। बाबा सबसे पहले आश्रम की गायों के पास गये। उन्हें चारा खिलाया। फिर वे दालान में रखी एक कुर्सी की ओर बढ़े।

श्री चटरजी ने आगे बढ़कर उनके चरण छूने चाहे तो बाबा ने उन्हें इस तरह फटकारा कि हम सब डर गये। चटरजी साहब भी पीछे हट गये।

कुर्सी पर बैठने के बाद में बाबा ने एक लंगड़ी कुतिया को बेहद स्नेह से कोई दवा पिलायी। लोगों ने उन्हें प्रणाम किया। हाईस्कूल के 'प्रिसिंपल साहब' ने बाबा को हम लोगों के बारे में बताया। उन्होंने थोड़ी देर बाद में मिलने के लिए कहा। कुछ देर बाद बाबा ऊपर चले गये। हम लोग भी उनके पीछे-पीछे गये। बाबा जब आसनस्थ हुए तो चटरजी साहब ने उन्हें अपनी व्यथा-कथा सुनायी। वे बोले, "अगर सुष्मुना ही कट गयी है तो कुछ नहीं हो सकता। कोई भी कुछ

नहीं कर सकता। हां, उनके स्वास्थ्य के लिए कुछ औषधि जरूर दे सकता हूं आप सामान लेकर आ जाइए, मैं दवा बना दूँगा।"

इस औषध के लिए कस्तूरी जरूरी थी। हम लोगों के कहा, "बाबा, हम लोग कस्तूरी कहां से लाएंगे। सही कस्तूरी की पहचान भी नहीं।"

बाबा ने कहा, "कस्तूरी तो हम कानपुर की एक फर्म से कहकर मंगाते हैं। वे नेपाल से उसे खरीदते हैं। पर इसमें व्यर्थ का खर्च बढ़ जाता है। तुम लोग दिल्ली में प्रबंध कर लो। हो जाएगा। अगर नहीं हो तो फिर पैसे दे जाना। कस्तूरी आ जाएगी तो मैं औषध बना दूँगा।"

बाबा के व्यक्तित्व से हम लोग बेहद प्रभावित हुए थे। मैंने कहा, "बाबा, आपका एक चित्र ले लें।"

वे बोले, "क्यों?"

"बस, यही पत्रिका में छापेंगे।"

"नहीं, नहीं बिलकुल नहीं।"

हम लोगों ने जिद पकड़ ली तो बोले, "अच्छा अगली बार आना, तब सोचेंगे।"

कुछ महीने बाद हम लोग पुनः हस्वा गये। बाबा के कहे अनुसार, दिल्ली में ही आवश्यक कस्तूरी मिल गयी थी। चटरजी साहब दस हजार रुपये लेकर गये थे। बाबा हम लोगों को पहचान गये, बोले, "कस्तूरी का प्रबंध हो गया न!"

हम लोगों ने हामी भरी।

उन्होंने कहा, "शेष दवाओं के पैसे दे जाओ। कस्तूरी भी छोड़ जाओ। दवा तैयार होते ही खबर कर देंगे।"

चटरजी साहब ने उनके सामने दस हजार की गड्डी निकाली और पूछा, "बाबा, कितने रुपये दूँ।"

"यही हजार-पाँच सौ।"

चटरजी ने एक हजार रुपये के नोट बाबा के एक शिष्य को थमा दिए।

बाबा ने पूछा, "कितने रुपये दिये।"

'हजार' उनके शिष्य ने उत्तर दिया।

"हजार क्यों? इन्हें पाँच सौ लौटा दो। दवा चार-साढ़े चार सौ में आ जाएगी। एक-एक पैसा का हिसाब रखना। जो बचे, इनको लौटा देना।"

शिष्य ने यही किया।

बाबा से तंत्र-शास्त्र और तांत्रिकों के विषय में पूछना चाहा तो वे टाल गये। फिर एक बार उनसे चित्र खींचने का अनुरोध किया। पहले तो नहीं माने, पर जब सबने ज्यादा जोर दिया तो तैयार हो गये।

बाद में 'कादम्बिनी' के एक तंत्र विशेषांक में बाबा के संबंध में एक सचित्र लेख छापा। उन दिनों मेरे पास 'कादम्बिनी' कार्यालय में हिमालय में साधनारत एक युवा संन्यासी आया करते थे। वे लिखते भी थे। बाबा के बारे में छपने के बाद वे उनसे मिलने गये थे। बेहद प्रभावित हुए थे। मुझसे बोले, "भाई साहब, इस बार आपने वाकई एक सिद्ध पुरुष के बारे में प्रकाशित किया है। मैं भी साधक हूँ। बाबा पहली ही नजर में ताड़ गये थे।" फिर उस युवा संन्यासी ने बताया कि कैसे उस दिन चंडीगढ़ से एक सज्जन अपने एक विक्षिप्त युवा पुत्र को बांधकर लाये थे। और कैसे उसे कार के बाहर निकालना कठिन हो रहा था। शोरगुल सुनकर बाबा भी नीचे आ गये थे और उन्हें देखते ही वह विक्षिप्त युवक चुपचाप कार से बाहर निकल उनके पास चला आया था।

मुझे संतोष हुआ कि किसी गलत व्यक्ति को प्रचारित नहीं किया गया।

बाद में मुझे पता चला कि बाबा उस लेख के प्रकाशित होने पर बेहद नाराज हुए थे। कारण, उनके आश्रम की शाँति भंग हो गयी थी। उन्हें बताया कि शरद के जीजा आपसे मिलकर गये थे और आपसे पूछकर ही तो फोटो खींचा था। तब वे कहीं शांत हुए।

तंत्र साहित्य का अध्ययन करते समय उसमें तांत्रिकों के जो गुण ज्ञात हुए थे, बाबा उन पर खरे उतरते नजर आये थे।

तंत्र के नाम पर धोखाधड़ी

कुछ तथाकथित तांत्रिक या उनके नाम पर उनके शिष्य किस तरह धोखाधड़ी करते हैं, इसका भी अनुभव हुआ।

'कादम्बिनी' में लखनऊ के एक तांत्रिक का साक्षात्कार प्रकाशित हुआ था। साक्षात्कार मैंने लिया था, पर मैं उसे अपने नाम से नहीं प्रकाशित करना चाहता था। संपादक का आदेश था, 'इस पर आपका ही नाम जाएगा।' यही हुआ भी।

अंक प्रकाशित होने के कुछ मास बाद मुझे कार्यालय में अपने नाम से एक पत्र मिला। पत्र राजस्थान के किसी गाँव की शिक्षिका का था। उसने लिखा था कि 'कादम्बिनी' में प्रकाशित लेख पढ़कर उसने उस तांत्रिक के आश्रम में संपर्क किया था। आश्रम से उसे सूचना मिली कि समस्या निवारण हेतु अनुष्ठान के लिए उनका शिष्य उसके गांव पहुँचेगा। वह शिक्षिका घबरा गयी थी और उसने अनुरोध किया था कि उसके पास आश्रम से किसी को न भेजा जाए।

लेकिन इस अनुरोध के बावजूद आश्रम से एक शिष्य वहां पहुँच गया। वह महिला क्या करती। हारकर उसने अपनी एक सहेली के घर अनुष्ठान करवाया। शिष्य ने अनुष्ठान में कुछ स्वर्ण आभूषणों की जरूरत बतायी थी। इसे भी पूरा किया गया। लेकिन स्वर्ण आभूषण लौटाने की बजाए वह उन्हें लेकर चम्पत हो गया।

मैंने संपादक जी को वह पत्र दिखाया। वे बोले, "उन्हें पत्र लिखो कि यदि सात दिनों में उत्तर न मिला तो हम उक्त महिला का पत्र प्रकाशित कर देंगे। उस महिला का पता हटाकर उसकी फोटो कापी भी उनके आश्रम में भेज दो।"

मैंने यही किया।

एक सप्ताह के भीतर ही तांत्रिक महोदय का पत्र मिला कि उनके आश्रम से कोई नहीं गया था। दरअसल डाक-विभाग के कुछ लोग ऐसी हेराफेरी कर रहे हैं। उन्होंने यह भी लिखा था कि उनके आश्रम में न तो मनीआर्डर किया जाए और न उनके किसी शिष्य को किसी प्रकार की धनराशि दी जाए।

अब वे तांत्रिक नहीं रहे। पर कुछ लोग उन्हें 'भगवान' ही मानते थे। दिल्ली के माडल टाउन में जिस कोठी में वे ठहरे थे, उसके मालिक के परिवार के लोगों का कहना था कि 'बाबा हमारे लिए भगवान ही हैं।'

बाबा ने उन्हें किसी बड़े संकट से उबारा था। शायद उनके युवापुत्र के प्राण बचाये थे, अतः उन पर उनकी ऐसी आस्था स्वाभाविक ही थी। पर सभी को ऐसे अनुभव नहीं होते।

तांत्रिक से दुःखी वह युवती

एक और तांत्रिक थे, प्रचार से ज्यादा ही लगाव था उन्हें, क्योंकि प्रचार उनकी आजीविका में वृद्धि करता था। वे 'कादम्बिनी' कार्यालय आया करते थे। तंत्र विशेषांकों में उनके बारे में छपता ही रहता था। हमसे तो वे कहते थे कि वे किसी से एक पैसा नहीं लेते, लेकिन हमारे पास आने वाले पत्रों में अक्सर शिकायतें होती कि वे पैसे माँगते हैं। उनका दावा था कि वे अपने घर बैठे हजारों मील दूर कहां क्या हो रहा है, देख सकते थे।

तांत्रिक कितनी भयभीत मनःस्थिति को जन्म दे सकते हैं, यह मैंने अपने स्वयं के अनुभव से जाना। उनसे हित की बजाए अहित भी हो सकता है। यह धारणा कुछ बद्धमूल भी हो चुकी थी। इसलिए जब भी वे आते तो कोशिश

करता कि उनसे कम-से-कम बात हो लेकिन वे आत्मीयता का प्रदर्शन करने के लिए मेरे केबिन में काफी समय बिता देते। स्नेह जतलाते। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई के बारे में पूछते। 'कादम्बिनी' में उनके बारे में छपने से उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी है, काम भी अच्छा चल निकला है, यह वे जानते थे, अतः उनकी कोशिश होती कि कार्यालय के सभी लोग उनसे खुश रहें।

कुछ वर्षों पूर्व उनका निधन हो गया। 'कादम्बिनी' के पाठकों के सूचनार्थ एक शोक समाचार भी प्रकाशित कर दिया गया।

काफी दिनों बाद की बात है। अचानक फोन पर संपादक जी ने अपने केबिन में आने का निर्देश दिया। मैं उनके केबिन में गया तो देखा कि एक सुंदर-सी युवती एक बुजुर्ग के साथ बैठी हुई है। बाद में पता चला कि वे उसके पिता थे। युवती के गले के नीचे का काफी शरीर जला हुआ था। त्वचा में सिकुड़न-सी पड़ गयी थी। वह बेहद परेशान थी। उसे भय था कि उन्हीं तांत्रिक महोदय ने उस पर कोई प्रयोग किया है, जिसके कारण वह विक्षिप्त-सी हो गयी और आग से जल गयी। यह भी पता चला कि विवाह के बाद उसका अपने पति से किसी अन्य स्त्री के कारण विवाद हो गया था। पति ने उसे छोड़ दिया था। अपनी इसी समस्या के निराकरण के लिए वह अपने पिता के साथ उन तांत्रिक के शहर गयी थी। तांत्रिक ने उससे कहा कि एक अनुष्ठान करना पड़ेगा और उसमें पच्चीस हजार रुपये लगेंगे। वे लोग इतने रुपए नहीं ले गये थे। तांत्रिक महोदय ने कहा, 'उनके पास जितने रुपये हैं, उतने ही दे दें।' शेष बाद में भिजवा दें। पिता-पुत्री आतंकित तो थे ही उन्होंने अपने पास की सारी रकम, जो शायद दस हजार रुपये थी, तांत्रिक को दे दी। फिर वे अपने होटल लौट आये।

होटल लौटकर उन्हें लगा कि वे शायद ठगे जा रहे हैं। दूसरे दिन सुबह ही वे उन तांत्रिक महोदय के घर पहुँचे और उनसे कहा कि वे अनुष्ठान नहीं करवाना चाहते। वे उनके रुपये लौटा दें। रुपये वापस करने की बात सुनते ही तांत्रिक आग बबूला हो उठे। उन्होंने पिता-पुत्री को धमकाया कि वे उनका सर्वनाश कर देंगे। रुपये वापस करने का तो कोई सवाल ही नही था।

भयभीत पिता-पुत्री अपने शहर लौट आये। पति से तलाक की नौबत आ गयी। निराश-हताश युवती ने जलकर मर जाने का प्रयत्न किया। वह मरी तो नहीं, लेकिन बुरी तरह जल गयी। उस युवती के मन में यह भय और बैठ गया कि यह सब उन्हीं तांत्रिक महोदय के शाप का फल था। वह चाहती थी कि संपादक जी अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर उन तांत्रिक महोदय को रोकें।

उसकी पूरी कहानी सुनकर हम लोगों को क्षोभ भी हुआ और क्रोध भी

आया। मैंने उस युवती को समझाया कि उन तांत्रिक महोदय की तो मृत्यु हो चुकी है। 'कादम्बिनी' में उस विषय में समाचार भी छपा है। पर उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था। वह जोर-जोर से रोने लगी। हारकर मैं उसके पिता को अपने केबिन में ले आया। उन्हें बताया कि सचमुच वे तांत्रिक इस संसार में नहीं हैं। वे अपनी बेटी को समझाएं। उसके मन से भय को निकालें। वे बोले, "मैं आपकी बात समझ गया हूँ। उसे समझाया भी है कि तांत्रिकों पर इतना भरोसा करना ठीक नहीं है। पर वह मानती ही नहीं। हम लोग बड़ी आशा से आपके कार्यालाय आये थे कि आप उन तांत्रिक पर दबाव डालेंगे लेकिन आप तो बता रहे हैं कि वे अब इस संसार में ही नहीं हैं।"

दोनों पिता-पुत्री को किसी तरह बहुत समझा-बुझाकर कार्यालय से विदा किया। मन में एक पश्चाताप भी हो रहा था कि क्यों ऐसे तांत्रिकों के बारे में छापते हैं हम! यह युवती हमारे कार्यालय आ भी गई। लेकिन जाने कितने लोग होंगे, जो ऐसे किसी हादसे के शिकार हुए होंगे।

ऐसे बहुत-से तांत्रिक हैं, जिनके बारे में काफी कुछ लिखा जा सकता है।

एक बार छुट्टियों में मैं अपने गृह नगर नागपुर गया हुआ था। एक शाम मेरे एक मित्र श्री उमेश चौबे ने कहा कि, "पंडितजी, आज रात एक अनुष्ठान में चलना है। एक परिचित के दो बेटे हैं, लेकिन दोनों जन्म से ही नेत्र-ज्योतिहीन हैं। एक मुस्लिम तांत्रिक ने दावा किया है कि एक अनुष्ठान के जरिए वह दोनों बच्चों को ठीक कर देगा क्योंकि वे दोनों एक 'ऊपरी हवा' के कारण अंधे हैं।"

मैंने उत्सुकतावश हामी भर दी।

श्री उमेश चौबे नागपुर के 'वन मैन इंस्टीट्यूशन' कहे जा सकते हैं। मेरा उनका परिचय बहुत पुराना है। एक समय नागपुर के अग्रणी निर्भीक, निस्वार्थ पत्रकारों में उनकी संख्या होती थी। बाद में वे निगम के सदस्य भी बने। उसकी स्टेडिंग कमेटी के चेयरमैन भी रहे। नागपुर की 'अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति' के वे सूत्रधार ही हैं।

रात को हम चार-पाँच मित्र उन सज्जन के घर गये। वह तांत्रिक महोदय अपने कुछ साथियों सहित पहले से ही मौजूद थे। थोड़ी देर बाद अनुष्ठान शुरू हुआ। नींबू काटे गये तो उनसे खून टपकने लगा। और भी ऐसी ही कुछ बातें। अंत में एक हट्टा-कट्टा मुर्गा लाया गया। तांत्रिक ने कहा कि मैं इल्म चलाऊंगा तो यह मुरगा यदि अपने आप मर गया तो समझिएगा कि ऊपरी हवा निकल गई हैं। खुदा ने चाहा तो बच्चों की आँखों की रोशनी लौट आएगी।

इसके बाद एक सुई से मुर्गे की आँखें में काजल लगाया गया। तांत्रिक

महोदय ने कुछ बुदबुदाना शुरू किया। उनकी नजर उस मुर्गे पर थी। देखते-देखते मुर्गा तड़पने लगा और कुछ देर बाद मर गया।

तांत्रिक ने विजेता की मुस्कान में हम लोगों की ओर देखा फिर अपने एक चेले से कहा, "जाओ इसे एक पेड़ के नीचे गाड़ आओ।"

एक कपड़े में मृत मुर्गे को लपेटकर चेला चला गया।

कुछ देर बाद हम लोग भी इस अनुष्ठान पर चर्चा करते हुए घर लौट पड़े। हमें वह सब नाटक ही लग रहा था। नींबू से 'खून' टपकना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। हां, हट्टे-कट्टे मुर्गे का तड़प-तड़प कर मरना जरूर अस्वाभाविक लग रहा था। मेरे मित्र ने कहा, "मुर्गे को जहर दिया गया था।"

"कैसे?" उसे कुछ खिलाया भी नहीं गया था" किसी ने शंका जाहिर की।

पं. उमेश चौबे ने कहा, "तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया। दरअसल जिस सुई से मुर्गे को काजल लगाया गया, वह जरूर जहरबुझी रही होगी। वरना मुर्गे को काजल!" कहते हुए हँस पड़े।

बाद में पता चला कि इस अनुष्ठान का कोई लाभ नहीं हुआ। बच्चों की आँखें पूर्ववत रहीं। पिता पर जरूर कुछ आर्थिक चोट पड़ी थी।

यह कोई अकेली घटना नहीं है। देश के हर छोटे-बड़े शहर में ऐसे तांत्रिक, ओझा या 'इल्म के जादूगर' मिल जाएंगे।

प्रेत के 'काम' की शिकार सुशिक्षिता

'कादम्बिनी' कार्यालय में एक सुंदर सुशिक्षिता युवती आया करती थी। उसकी एक निजी पीड़ा थी। वह यह कि उसे लगता था कि रात्रि को कोई प्रेत उसके साथ सहवास करता है। युवती के साथ उसकी माँ भी थी, जिसे पति ने किसी अन्य स्त्री के कारण त्याग दिया था। उसकी यह आपबीती हम लोगों को, मुझे भी और संपादक जी को भी, मनोवैज्ञानिक समस्या लग रही थी। पर युवती उसे अपनी मनोवैज्ञानिक व्याधि स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी। उसने कई तांत्रिकों से संपर्क किया था, पर निराशा ही हाथ लगी थी। वह हमारे पास किसी सिद्ध तांत्रिक का ही पता पूछने आयी थी। 'कादम्बिनी' के एक अंक में उसकी आपबीती भी प्रकाशित हुई तो कई लोगों ने उसे 'व्याधिमुक्त' कर देने का प्रस्ताव किया। बाद में मुझे पता चला कि वह एक शवसाधक तांत्रिक के पास गयी

थी। उन्होंने उसे पूजाकक्ष में अकेले बुलवाया और निर्वस्त्र हो जाने के लिए कहा, वह युवती तत्काल वहां से चली आयी।

एक बार कार्यालय में मेरे पास एक भाई-बहन आये। बहन जब किसी कार्य से केबिन से बाहर गयी तो भाई ने बतलाया, वे 'कादम्बिनी' में एक तांत्रिक महोदय के बारे में पढ़कर उनके पास गये थे। तांत्रिक महोदय ने अकेले ही उसकी बहन की व्यथा सुनी और फिर उसे कहा कि वह सिर से लेकर पैर तक उनके 'प्रत्येक' अंग का स्पर्श करे। युवति हिचकिचा गयी और बाहर आ गयी। वे हम लोगों के कार्यालय में यही 'शिकायत' लेकर आये थे। उन तांत्रिक महोदय से मैं भी कई बार मिला था। कई लोगों ने उनके चमत्कारिक होने का स्वानुभव भी बताया था। लेकिन 'उपचार' की उनकी यह विधि आज तक मेरी समझ में नहीं आयी। अपनी आदत के अनुसार मैं यही सोचता रहा कि हो सकता है ऐसी कोई तांत्रिक विधि भी हो। अपने ज्ञान के अल्प होने के कारण किसी विद्या को झुठलाना गलत है। हां, जिज्ञासा तो जरूरी है।

क्या इन सबका तंत्र साधना से कोई संबंध है?

क्या तंत्र-शास्त्र मात्र ऐसे ही अभिचार कार्यों तक सीमित है?

तंत्र विषयक साहित्य के अध्ययन से चला चलता है कि इन सबको तंत्र मानना शायद अल्पज्ञता ही है।

तंत्र-शास्त्र पर अनेक तरह की पुस्तकें उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ 'पाकेट बुक' नुमा होती हैं, जिनमें तरह-तरह के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तंत्र-मंत्र के उपयोगों का विवरण होता है। इन्हें पढ़कर कोई तंत्र-मंत्र में सिद्ध हो सकता है, इसमें संदेह है।

तंत्र-शास्त्र को समझने के लिए तद्विषयक गंभीर पुस्तकों का अध्ययन आवश्यक है। और यदि इन विषयों में निष्णात होना है तो योग्य गुरु के सानिध्य और मार्गदर्शन में कठोर साधना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

तंत्र के संबंध में मेरा अधिकांश ज्ञान पुस्तक-प्रदत्त ही है। सर जॉन वुडरोफ की 'शक्ति एंड शाक्त', 'ए गारलैंड ऑफ लैटर्स', 'कश्मीरी शैवज़्म', फिलिप रॉसन की 'दि आर्ट आफ तंत्र', डॉ. सिन्हा की 'साइन्स एंड तंत्र' तथा श्री देवदत शास्त्री की 'तंत्र साधना और सिद्धांत', श्री गोविन्द शास्त्री का 'तंत्र दर्शन' तथा 'साधना एवं संस्कार', कुंवर नरेन्द्र सिंह की 'तंत्र सिंधु', आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की 'तंत्र विज्ञान और साधना', डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी की 'तंत्र शक्ति' तथा बौद्ध तंत्र विषयक पुस्तकों एवं तत्सम्बन्धी अनेक लेखादि पढ़कर तंत्र के विषय में मुझे पर्याप्त जानकारी मिली। श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय की 'लोकायत' एवं 'व्हाट

इज लिविंग एंड व्हाट इज डेड इन इंडियन कल्चर' पढ़कर मुझे तंत्र को एक सर्वथा भिन्न दृष्टि से भी देखने का अवसर।

सेवा निवृत्ति के बाद भाई अशोक सहजानन्द के कारण ज्योतिष संबंधी कुछ परिचयात्मक पुस्तकें भी लिखीं। इधर समाचार पत्रों में रोजाना तांत्रिकों के विज्ञापनों और उनके पर्चों को पढ़कर लगा कि तंत्र की वास्तविकता को स्पष्ट करने के लिए एक पुस्तक लिखना एक कर्त्तव्य ही है।

तंत्र की साधनाओं की वास्तविकता के संबंध में कुछ प्रत्यक्ष जान पाने का 'सुअसवर' या 'सौभाग्य' मुझे नहीं मिला। जो भी तांत्रिक मिले, वे सब 'दुकानदार' ही लगे, सिवाय हस्वावाले बाबा को छोड़कर। पर जब मैं उनसे मिला तब वे भी स्वयं को तांत्रिक मानने से इंकार ही करते रहे। उन्होंने इस विषय में कोई चर्चा ही नहीं की, पर आसपास के लोग उन्हें एक परोपकारी सिद्ध तांत्रिक के रूप में ही पूजते थे।

प्रस्तुत कृति में अनेक दोष या त्रुटियां हो सकती हैं, खासकर तंत्र मर्मज्ञों की दृष्टि से। यह कृति तंत्र की 'प्रामाणिक' कृति है, ऐसा कोई आग्रह भी नहीं है। उद्देश्य यही है कि पाठक को तंत्र के संबंध में अधिकाधिक जानकारी दी जा सके। तंत्र साहित्य बहुत विशाल है और कभी-कभी अंतर्विरोध से पूर्ण भी। जिज्ञासु पाठकों के मन में तंत्र की वास्तविकता को समझने का भाव भी यह कृति जागृत कर सकी तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

–दुर्गाप्रसाद शुक्ल

तंत्र : अर्थ एवं उद्देश्य

तंत्र : अर्थ और अनेक परिभाषाएँ

बहुमुखी एवं व्यापक अर्थ का बोधक : 'तंत्र' शब्द संस्कृत धातु 'तन्' से बना है जिसका अर्थ है बढ़ाना, विस्तार करना, तानना। कुछ विद्वानों के मत से तंत्र शब्द का मूल ततृ या तंतृ धातु है, जिसका अर्थ है 'व्युत्पादन'। इसमें 'त्र' प्रत्यय त्राण का बोधक है। शैव सिद्धांत के कामिका आगम में कहा गया है,

तनोति विपुलानर्थान् तत्व मंत्र समन्वितान्।
त्राणं च कुरुते यस्मात तंत्रमित्यभिधीयते॥

भावार्थ : इसे तंत्र इसलिए कहा गया है कि वह तत्व एवं मंत्र से संबंधित महान ज्ञान का प्रतिपादन करता और बचाता (त्राण करता) है।

संस्कृत धातु 'तन्' में 'स्त्राण' शब्द लगाने से 'तंत्र' शब्द की व्युत्पति भी मानी जाती है–**तानोती तन्यते वा इति तान +स्त्राण।**

एक ही शब्द कालांतर में अनेकार्थी हो जाता है उसका अर्थ विशेष उसके प्रयोग पर निर्भर करता है जैसे 'तंत्र' का एक अर्थ 'व्यवस्था' भी लगाया जाता है, जैसे राज्य-तंत्र, शासन-तंत्र, प्रजातंत्र, लोकतंत्र, इत्यादि। शाब्दिक दृष्टि से तंत्र का अर्थ है–सिद्धांत, व्यवस्था, मीमांसा, विचार, दृढ़ प्रमाण, औषधि, झाड़ने-फूँकने का मंत्र, उपाय, अधिकार, शासन, धर्म, कर्त्तव्य, संप्रदाय आदि।

आधुनिक विद्वानों ने 'तंत्र' शब्द के अर्थ की विस्तृत व्याख्याएँ की हैं। मानियर विलियम्स ने हरिवंश एवं भागवत पुराण के हवाले से 'तन्' शब्द का अर्थ 'प्रतिपादित', 'प्रसार' करना लगाया है। इस धातु 'तन्' से निर्मित 'तंतु' शब्द का अर्थ 'नियमित रूप से परिवार में वृद्धि' से है। मानियर विलिम्स का कहना है, कात्यायन श्रौत सूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र एवं तैत्तरीय उपनिषद् जैसे प्राचीन ग्रंथों

में 'तंतु' का इसी आशय में प्रयोग हुआ है। ऐत्तरेय ब्राह्मण में इस 'तंतु' शब्द का प्रयोग 'वंशक्रम' के अर्थ में हुआ है। महाभारत में 'कुलस्य तंत्र' का अर्थ है 'परिवार संरक्षण के लिए किया गया मुख्य कार्य-कलाप।'

संगीत के क्षेत्र में 'तंत्र' का उपयोग वाद्यों के वर्गीकरण के लिए किया गया है, यथा तंत्रवाद्य या तंतुवाद्य अर्थात् ऐसे वाद्य जिनमें तारों या तंतुओं का प्रयोग होता है, जैसे सितार, सरोद, इसराज, संतूर, इकतारा, स्वरमंडल आदि।

आध्यात्मिक क्षेत्र में 'तंत्र' शब्द का प्रयोग एक ऐसी कठोर साधना के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिसका उद्देश्य व्यक्ति को सांसारिक मायाजाल से मुक्त कर परमानंद अर्थात् ईश्वर से मिलन की प्राप्ति कराना है। जिस तरह ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग का उद्देश्य मनुष्य को आध्यात्मिकता के उच्चतम शिखर पर ले जाना है, इसी प्रकार तंत्रयोग या तंत्र-साधना का अर्थ भी स्वयं को सांसारिक धरातल से ऊपर उठाकर विश्वमय, ईश्वरमय कर लेना है।

आजकल आमतौर पर, (और अध्ययन से पता चलता है कि प्राचीन काल में भी) तंत्र को ऐसी साधना, ऐसा शास्त्र माना जाता है, (या माना जाता था) जिसकी सहायता से प्रेत-साधना, वेताल-साधना की जा सकती है, अर्थात् भूत-प्रेतों, वेताल आदि को वश में कर उनसे हर प्रकार के काम कराये जा सकते हैं। तंत्र-शास्त्र को षटकर्मों में सिद्धि दिलाने वाला भी माना जाता है। लोगों के मन में यह विश्वास घर कर गया है कि तांत्रिक त्रिकालज्ञ, भूत-वर्तमान-भविष्य जानने वाला, वशीकरण, सम्मोहन, मारण, उच्चाटन आदि में प्रवीण और हर मनोरथ को पूर्ण कर देने की क्षमता रखता है। वह शत्रुओं का नाश कर सकता है। बिगड़े काम बना सकता है, भूत-प्रेत आदि से न केवल मुक्ति दिला सकता है, वरन वह किसी पर उन्हें 'छोड़' भी सकता है, अर्थात् उनके जरिए वह व्यक्ति विशेष को प्रताड़ित भी कर सकता है। तंत्र के इस अर्थ के कारण उसका संबंध अथर्ववेद से भी जोड़ा जाता है, क्योंकि उसमें ऐसे अभिचारों का उल्लेख है।

कुछ साधकों और विद्वानों के अनुसार इस तरह 'तंत्र' शब्द का अर्थ करने से 'तंत्र-शास्त्र' का न केवल मूल रूप, वरन उसका मूल उद्देश्य, उसकी उपयोगिता भी नजरों से तिरोहित हो जाती है। वे उसके आध्यात्मिक पक्ष को ही स्वीकार करते हैं।

'तंत्र' और तंत्र-शास्त्र, साधना या योग के वास्तविक अर्थ, रूप, उद्देश्य से अपरिचित लोग या तो उसके प्रति अंध श्रद्धा का भाव रखकर भयभीत और आंतकित होते रहते हैं, अथवा उसे पाखंड, दुराचार, समाज के लिए घातक सिद्ध किया करते हैं। ये दोनों दृष्टिकोण अतिरंजित हैं।

तंत्र का उद्देश्य

तंत्र बिंदु को सृष्टि का मूल मानता है, जो परमशक्ति, जिसे परमशिव, सदाशिव, महाशक्ति आदि भिन्न नामों से भी संबोधित किया गया है, के स्वातंत्र्य से उद्भूत स्पंदन के परस से रेखा बन जाता है। पहले दो बिंदुओं में बनी छोटी या लघु रेखा, तदंतर तीन रेखाएं जो त्रिकोण का सृजन करती हैं। हम आगे देखेंगे कि संसार के अनेकानेक देशों में त्रिकोण को योनि का प्रतीक माना गया है। तंत्र भी बिंदु एवं त्रिकोण को सृष्टि का मूल घोषित करता है। इस बिंदु को शिव और शक्ति का निर्विकार सामरस्य भी कहा गया है।

तंत्र एवं वेदांत में इसी मूल के भिन्न-भिन्न नाम मिलते हैं। वेदों का परम ब्रह्म तंत्रागम में विश्वजननी, परमशिव हो जाता है। सतत् प्रकाशमान, स्वयं सिद्ध, स्वयं में परिपूर्ण यही परंब्रह्म परमशिव या आद्याशक्ति चैतन्य स्वरूप पूर्ण अंह भी है।

शैवागम में यही अहम् है। यह अहम् अहंकार का पर्याय नहीं है। उसकी द्वद्वंता स्फुरित हो प्रथम परमाकाश को और बाद में महा सृष्टि को प्रकट करती है। तंत्र काल रहित उस महासृष्टि को महाकाल नाम से पुकारता है।

तंत्र को आध्यात्मिकता से महिमा-मंडित करने वाले विद्वानों का मत है कि सभी आध्यात्मिक साधनाओं की तरह तंत्र की साधना का भी एक ही उद्देश्य है, परम सत्य की प्रतीति, उससे एकाकार। तंत्र साधना एक जीवन शैली है, जिसे अपनाकर साधक विभिन्न अभ्यासों एवं क्रियाओं द्वारा अपनी चेतना को उच्चतम शिखर पर ले जाता है ताकि वह शुद्ध चैतन्य, जिसे 'सदाशिव' 'परमशिव' आदि नामों से पुकारा गया है, से एकाकार हो सके। तंत्र योग साधक को उसके अपने मूल स्वरूप से परिचित कराता है।

'मैं कौन हूँ', 'मैं कहां से आया हूँ?', 'मेरी नियति क्या है?', 'मानव एवं संपूर्ण प्राणीजगत तथा ब्रह्मांड के अस्तित्व का क्या रहस्य है?' आदि प्रश्नों के उत्तर तंत्र साधक को अपनी साधना के दौरान सहज ही मिल जाते हैं। तंत्र का आध्यात्मिक उद्देश्य जाति, धर्म, उम्र, लिंग आदि के भेदभाव से परे साधक अथवा साधिका को कलुष-शून्य बना, उसके तन-मन का शुद्धिकरण कर उसे आध्यात्मिकीकरण की ओर ले जाना है। ऐसी स्थिति में साधक सांसारिक राग-द्वेष, माया-मोह आदि से मुक्त हो, सभी में आदिशक्ति का प्रतिबिंब देखता है। सभी लोग उसके अपने हो जाते हैं। परोपकार की भावना और इस भावना के कारण उसके विकार भी दूर हो जाते हैं।

ऐसा साधक चित्तशक्ति के जागृत होते ही समूचे चराचर जगत को अपने में समाहित देखता है। माहेश्वर आगम में कहा गया है कि 'जब जागृत चित्तशक्ति काल को ग्रस लेती है तो उस समय जीव को समूचा विश्व अपने भीतर ही समाया जान पड़ता है। उसे परम स्वरूप का बोध हो जाता है।' इस दृष्टि से तंत्र-शास्त्र आज अत्यन्त आवश्यक 'विश्वबंधुत्व' की भावना के प्रचार-प्रसार में भी सहायक होता है। सच्चा तांत्रिक समस्त प्राणीजगत के हित की कामना करता है, इसके लिए अपना जीवन अर्पित कर देता है। तंत्र का उद्देश्य अल्पकाल में ही व्यक्ति को अहं शून्य करना है ताकि वह शुद्ध परम चैतन्य अथवा परमशिव की अनुभूति कर सके।

तंत्र के संबंध में पाश्चात्य जगत तथा उसकी भाषा-संस्कृति से प्रभावित भारतीयों के भ्रम को दूर करने वाले प्रसिद्ध पाश्चात्य तंत्र विशारद सर जॉन वुडरोफ (छद्म नाम आर्थर एवलॉन) ने तंत्र पर काफी कुछ लिखा है। 'शक्ति एंड शाक्त' में उन्होंने लिखा है कि, "तंत्र-शास्त्र का महत्व इस दावे में है कि वह जाति, लिंग, भेद के परे सबको वह साधन उपलब्ध कराता है, जिनके माध्यम से सिखाये गये सत्यों को व्यावहारिक रूप से साकार किया जा सकता है। भारत और तिब्बत के तंत्र ऐसे सिद्धांतों की अभिव्यक्ति है, जो सार्वजनिक रूप से लागू किये जा सकते हैं। धार्मिक सत्यों का कथन मात्र उपयोगी नहीं होता। जरूरत है इन्हें साकार करने के व्यावहारिक उपाय की। तंत्र शास्त्र एक उच्चतर मूल्य का प्रतिपादन करता है।"

सुप्रसिद्ध बंगाली लेखक पी. बंद्योपाध्याय ने आर्थर एवलॉन (सर जॉन वुडरोफ का छद्म नाम) के 'महानिर्वाण तंत्र' के परिचय एवं उसके अंग्रेजी अनुवाद की प्रशंसा करते हुए 'साहित्य' (जुलाई-अगस्त, 1913) में एक लेख लिखा था। जिसमें उन्होंने तंत्र के उद्देश्य एवं महत्त्व पर भी प्रकाश डाला था। वे लिखते हैं :

तंत्र का विशेष गुण उसकी साधना में निहित है। वह न उपासना है, न प्रार्थना। वह देवी के समक्ष निवेदन, याचना या पश्चाताप भी नहीं है। वह साधना पुरुष एवं प्रकृति का मिलन है, ऐसी साधना जो देह में पुरुष तत्व को मातृतत्व से मिलाती है। तंत्र साधना का उद्देश्य स्वत्व को विराट में समाहित कर देने का है। यह साधना देह में स्थित शक्तियों को जागृत कर की जाती है। जब कोई व्यक्ति कुंडलिनी को जागृत करने और षट्चक्रों को भेदन करने में समर्थ होता है तो वह इस साधना में सिद्ध हो जाता है।

तंत्र बारम्बार कहता है कि स्वयं देवता बनकर देवता की पूजा करो। इष्ट देवता अपना आत्मन् ही है, उससे पृथक नहीं। सच्ची तांत्रिक साधना मानसिक

साधना है। तांत्रिक साधना का अल्प सूक्ष्म रूप यंत्र है। यह रूप जप द्वारा प्रकट होता है, मंत्र शक्ति द्वारा जागृत किया जाता है। सिद्ध पुरुष के हृदय कानन में मां के लक्ष-लक्ष सुंदर रूप खिलते हैं। तंत्र की दृष्टि में साधक की देह ही ब्रह्मांड है। आत्मशक्ति इष्ट और साध्य है साधक का देवता। आत्म-दर्शन से ही आत्मशक्ति उपलब्धि होती है और यह साधना से प्राप्त की जा सकती है। जो अपने आत्मन् को जान लेता है, वह मुक्ति पा जाता है।

तंत्र : अनुभूति, कला और धर्म की अभिव्यक्ति

'द् आर्ट ऑव तंत्र' में फिलिप रॉसन ने इसे और सरलता से स्पष्ट किया है। वे लिखते हैं कि तंत्र भारतीय अनुभूति, कला और धर्म की अभिव्यक्ति है। उसे ध्यान की क्रिया द्वारा ही समझा जा सकता है। तंत्र संबंधी अनेक विश्वास और पद्धतियाँ हैं। लेकिन एक सूत्र है जो माला के धागे की तरह सबको जोड़े हुए है। और यह सूत्र है, यह विश्वास कि तंत्र आनंद का संप्रदाय है, जिसका ध्यान 'ब्रह्मांडीय कामभाव' (कॉस्मिक सेक्स्युलिटी) पर केंद्रित है। सारी जीवन शैली, कर्मकांड, जादू, विश्वास, दर्शन और जटिल प्रतीक इसी कल्पना से जुड़े हुए हैं।

योग एवं तंत्र : साम्य एवं विरोध

भारतीय दर्शन की एक धारा हमारे वास्तविक संसार को भ्रम, अर्थहीन मानती है। उसके अनुसार, जीवन और संसार के हमारे सारे अनुभव नितांत मूल्यहीन हैं। प्रेम, आसक्ति, भावनात्मक आनंद, संगीत, कला, यहां तक कि अपने निजी ईश्वर के प्रति हमारा उपासना भाव, सभी एक बंधन, एक फंदा, एक जाल हैं। हम संसार और सांसारिक वस्तुओं में अपनी सारी आसक्ति, सारा लगाव त्याग कर एक अमूर्त 'ब्रह्म', जो परम सत्य भी है, की ओर अपना संपूर्ण ध्यान और चेतना केंद्रित करें। वेदांत के अनुसार, जब हम माया-मोह, आसक्ति हीन होकर परम सत्ता के ध्यान में स्वयं को पूर्णतः विस्मृत कर देते हैं, तो ध्यान-ज्ञान की यह अवस्था ही मोक्ष की ओर ले जाती है। आसक्ति हीनता उत्पन्न करने का एक मार्ग यह हं कि हम सांसारिक यातना, पीड़ा, पाप पर ध्यान केंद्रित कर ऐसे संसार से विरत होने की कोशिश करें। निज देह को हेय समझें। सांसारिक आनंद

को तिलांजलि दे दें। संसार को, उसके सारे सुखों को क्षणभंगुर समझें। उपवास, ईश्वर-निष्ठा, कठोर साधना के द्वारा मन की सारी ग्रंथियां काट दें और ब्रह्म में उसी तरह समाहित हो जाएँ जैसे जल की एक बूँद सरोवर की सतह पर तिरोहित हो जाती है। इस परम स्थिति को प्राप्त करने वाला व्यक्ति, फिर वह नहीं होता जो दूसरों को चलता-फिरता दिखायी देता है।

पातंजलि के योग-सूत्र में भी 'चित्त वृत्ति निरोध' को योग बतलाया गया है, जिसका उद्देश्य कैवल्य पद की प्राप्ति है। इसके लिए योग के आठ नियम हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। 'चित्त वृत्ति निरोध' का अर्थ है चित्त की बहिर्मुखी वृत्तियों को अंतर्मुखी करना, अपने कारण चित्त में लीन कर देना। कैवल्य का अर्थ है, 'पुरुषार्थ से शून्य हुए गुणों' का अपने कारण में लीन हो जाना।

तंत्र का इस मूल सत्य से कोई विरोध नहीं, पर वह ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए दर्शाये गये उपरोक्त मार्गों को मूर्खतापूर्ण मानता है। कुछ आधुनिक युग के तांत्रिकों के अनुसार, भारत की अनेकानेक समकालीन समस्याओं की जड़ संसार को 'तृणवत्', 'निस्सार', 'बंधन' मानने की मानसिकता ही है। सदियों से इसी मानसिकता ने उसे जकड़ रखा है। उसके अनुसार तट तक पहुँचने के लिए ऐसे कठोर संघर्ष की जरूरत ही नहीं। ब्राह्मण ग्रंथों की परंपरा के सर्वथा विपरीत तंत्र की मान्यता है कि आनंद, स्वप्न का दमन करने की बजाए उनका पोषण कर उपयोग करना चाहिए। सही दिशा में प्रवाहित होने से ये सब अनंत ऊर्जा का स्रोत बन सकते हैं। वे व्यक्ति के आनंद को तो दिनों-दिन बढ़ाते ही हैं, संसार का भी हित कर सकते हैं। तंत्र का संबंध प्रेम से है, प्रेम को एक आश्रय चाहिए। कोई शून्य में प्रेम नहीं कर सकता। प्रेम का अर्थ देखभाल भी है। और उसे चरम तक ले जाना एक सामाजिक गुण ही है।

तंत्र-शास्त्र : उद्‍भव और विकास

तंत्र-शास्त्र की उत्पत्ति कब हुई? क्या तंत्र-शास्त्र वेद सम्मत है या वेद विरुद्ध? तंत्र-शास्त्र के उद्‍भव और विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है? ये प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर विद्वान मतैक्य नहीं।

'हिन्दू धर्म-कोश' के अनुसार, "तंत्र-शास्त्र की उत्पत्ति कब से हुई इसका निर्णय नहीं हो सकता। प्राचीन स्मृतियों में चौदह विद्याओं का उल्लेख है, किंतु उनमें तंत्र गृहीत नहीं हुआ है। इनके अनुसार किसी महापुराण में भी तंत्र-शास्त्र का उल्लेख नहीं है। इसी तरह के कारणों से तंत्र-शास्त्र को प्राचीनकाल में विकसित शास्त्र नहीं माना जा सकता। अथर्ववेदीय नृसिंह तापनीयोपनिषद में सबसे पहले तंत्र का लक्षण देखने में आता है। इस उपनिषद में मंत्रराज नरसिंह अनुष्टप प्रसंग में तांत्रिक महामंत्र का स्पष्ट आभास सूचित हुआ है। शंकराचार्य ने भी जब उक्त उपनिषद के भाष्य की रचना की है, तब निस्संदेह वह विक्रम की आठवीं शताब्दी से पहले की है।"

यदि तंत्र-शास्त्र की उत्पत्ति का वेदों के आधार पर काल-निर्णय किया जाए तो सबसे पहले हम यह देखें कि वेदों का काल क्या है? लेकिन वेदों के कालनिर्णय के संबंध में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है। लोकमान्य तिलक वेदों को ईसा से चार हजार वर्ष पूर्व का मानते हैं, जबकि मैक्समूलर ने इसे 1200 वर्ष ईसापूर्व माना है। पहले वेदत्रयी के नाम से ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद का ही बोध होता था। अथर्ववेद को इनका परवर्ती माना गया था। लेकिन इस दृष्टिकोण को भी गलत माना गया है। अनेक आधुनिक प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि अथर्ववेद के बहुसंख्यक मंत्र ऋग्वेद से भी प्राचीन हैं। यथार्थ तो यह है कि मूल वेद का ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं सामवेद तथा अथर्ववेद में वर्गीकरण किया गया।

वेदों का आर्यों से गहरा संबंध है। पहले पाश्चात्य एवं कुछ भारतीय विद्वान

भी मानते हैं कि आर्य इस देश में बाहर से आये और उनके आक्रमणों के फलस्वरूप ही सिंधु सभ्यता नष्ट हुई लेकिन अब इस विचार का पूर्णतः खंडन किया जा चुका है। गुजरात (जलमग्न द्वारका तथा लोथल) एवं अन्य स्थलों के उत्खनन से सिद्ध हो गया है कि सिंधु घाटी की सभ्यता और वैदिक सभ्यता में पूर्णतः अभिन्नता थी अर्थात् वे एक ही थीं।

वैदिक जीवन में तंत्र

'इज़ वेद डिवाइन ।रेविलेशन? : 'इंडस वैली एंड द् वेद' में एम. सुंदरराज ने लिखा है कि 'वेद में प्राप्त धर्म सिंधु सभ्यता में पुष्पित-पल्लवित अवधारणाओं का ही एक और विकसित रूप है, और उसमें वैदिक धर्म का पूर्ण इतिहास उद्घाटित हुआ है।' उनके अनुसार तत्कालीन वैदिक धर्म को दो खंडों में बाँटा जा सकता है। एक खंड, जिसे उन्होंने 'हाइअर' (अर्थात् ऊँचा) नाम दिया है, उसका आधार ऋग्वेद एवं सामवेद थे। इन्हें ही 'निगम' भी कहा जाता है। दूसरे खंड को उन्होंने 'लोअर' नाम दिया है। इसमें अथर्ववेद एवं अन्य स्रोतों से उपलब्ध सिद्धांतों, आचारों, व्यवहारों का समावेश है। 'लेकिन जब हम इस पर ध्यान देते हैं तो यह 'विचित्र से विचित्रमय' होता जाता है। विचित्रता यह है कि स्वयं अवैदिक धर्म को भी कई उपखंडों यथा योग, आगम, तंत्र, जनजातीय, जाति से परे आदि में बाँटा गया है। तथापि यदि हम उच्चतर वेद का सावधानी और आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करें तो 'लोअर' तत्व (अर्थात् अथर्ववेद आदि के) 'हाइअर' (अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) खंड में भी प्राप्त होते हैं।

इसे अन्य शब्दों में ऐसा कहा जा सकता है कि अन्य वेद यथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अभिजात वर्ग की निधि थे, वहां अथर्ववेद जनसाधारण से संबद्ध था। संहिताकरण के समय अथर्ववेद को इसलिए अलग करना पड़ा क्योंकि यह आर्यों की यागात्मक संरचना के अनुरूप नहीं था। ऋग्वेद याग सोम प्रधान है जबकि अथर्ववेद याग होम प्रधान। अथर्ववेद में हमें रोगों एवं दानवों से मुक्ति, दीर्घायु एव स्वास्थ्य के लिए प्रार्थनाएँ, सृष्टि विषयक, आध्यात्मिक विषयक, याज्ञिक एवं सामान्य विषयक सूक्त तथा अनेक अभिचार कर्म प्राप्त होते हैं। इसमें राक्षसों, अभिचारकों एवं शत्रुओं के प्रतिकूल अभिचार कर्मों, स्त्री विषयक, सामंजस्य विषयक, राज विषयक, संपन्नता की प्राप्ति एवं भय से मुक्ति के अभिचार कर्मों का समावेश है।

अथर्ववेद में अभिचार कर्म के दो उद्देश्य हैं। एक घोर, दूसरा यातु। 'घोर' को कालाजादू या 'ब्लैक मैजिक' कह सकते हैं। इनका प्रयोजन दूसरे को हानि पहुँचाना है। 'यातु' को 'सफेद जादू' या 'व्हाइट मैजिक' कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य अपने को लाभ पहुँचाना है।

आज भी सामान्य जन इन्ही सब बातों को 'तंत्र' के अंतर्गत रखते हैं। प्रतीत होता है कि आज तंत्र-मंत्र-यंत्र का यही उद्देश्य रह गया है। लेकिन कुछ विद्वानों का तो यह मत है कि तंत्र का प्रचलन वेदों से पूर्व से भी था। सिंधु सभ्यता में शिव लिंग, योनि, स्त्री की मूर्तियों की पूजा प्रचलित थी। शैव एवं शाक्त तंत्र के बीज इनमें खोजे जा सकते हैं। कुछ मार्क्सवादी अध्येताओं का मत है कि तंत्र का मूल मातृप्रधान समाज एवं आदिम कृषि की उन अवस्थाओं में है, जब कृषि कार्य पर स्त्रियों का ही एकल वर्चस्व था और कृषि उत्पादन एवं मानव प्रजनन में अद्‌भुत साम्य देखकर आदिम कबीले संतानोत्पत्ति एवं कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए जादू-टोने का आश्रय लेते थे। प्रमाण में वे भारत तथा अन्य अफ्रीकी, अमेरिकी, आस्ट्रेलियाई आदिम जनजाति के कृषि संबंधी रीतिरिवाजों का उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार आज भी कृषि कर्म में ये जन जातियाँ जादू-टोने का आश्रय लेती हैं और इसमें स्त्रियों की प्रमुख भूमिका पूर्ववत् बनी हुई है।

लोकायत : परम ब्रह्म विरोधी

वैदिक काल में लोकायत या चार्वाक नामक एक बहुजन समाज था, जो वेदों में वर्णित परम ब्रह्म, ईश्वर आदि की सत्ता में विश्वास नहीं करता था। यह समाज आत्मा के अस्तित्व को नकारता था तथा मनुष्य की देह को ही सब कुछ मानता था। उनका कहना था कि देह के साथ ही सब-कुछ समाप्त हो जाता है। न आत्मा का अस्तित्व है, और न किसी परलोक का। यह समाज लोकजीवन से जुड़ा हुआ था। उनके विश्वासों में तंत्र की भी प्रमुख भूमिका थी। कुछ विद्वानों के अनुसार दरअसल तंत्र का इसी संप्रदाय या समाज से गहरा संबंध है। लेकिन बाद में उसमें आत्मा-परमात्मा का समावेश हो गया।

वैदिक काल में दो तरह की संस्कृतियाँ प्रचलित थीं। एक वैदिक एवं दूसरी अवैदिक। अवैदिक संस्कृति के लोगों को ही असुर, दैत्य, राक्षस आदि नामों से संबोधित किया जाता था। हालाँकि कुछ विद्वान वैदिक-अवैदिक के भेद को नहीं मानते। उनके अनुसार, जिसे अवैदिक कहा जाता है, वह वैदिक संस्कृति की

आरंभिक स्थिति ही है।

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि जब दो संस्कृतियां, धर्म या भाषाएँ साथ-साथ प्रचलित रहती हैं तो वे एक दूसरे का प्रभाव ग्रहण करती हैं। अतः वैदिक संस्कृति में भी इस तथाकथित अवैदिक संस्कृति के प्रभाव ढूँढ़े जा सकते हैं। जादू-टोने में विश्वास केवल अवैदिक लोगों तक ही सीमित नही रहा। उसने वैदिक जन को भी प्रभावित किया। अथर्ववेद इसका एक अच्छा प्रमाण है। वैदिक-अवैदिक का भेद न मानने वाले भी इसे अपने कथन के प्रमाण के रूप में उपस्थित करते हैं कि अथर्ववेद में जो अभिचार आदि कर्म हैं, वे आरंभिक वैदिक संस्कृति (अथर्ववेद) का ही विकसित रूप है।

तंत्र में छिपे आदिम तत्व

तंत्र में अनेक आदिम तत्व मौजूद हैं। इनमें से कुछ तो यूरोप की प्राचीन प्रस्तर युगीन गुफाओं जितने प्राचीन हैं। उदाहरण के लिए फ्रॉंस की पेच मरले गुफा में एक कक्ष है, जिसमें स्थित नारी के प्रतीक त्रिकोणों को हमारे मंदिरों में उत्कीर्ण त्रिकोणों के समतुल्य ही माना जा सकता है। भारत अपनी अत्यन्त प्राचीन धरोहरों को अखंडित रूप से संजोये रखने के लिए विख्यात है। तंत्र के मूल तत्व भी इनमें से एक हैं। इस तरह वे भारत में प्रचलित धर्मों, वैदिक, जैन, बौद्ध आदि से निस्संदेह प्राचीन होते हैं। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कालांतर में प्रत्येक धर्म में इन्हीं तत्वों को अपनी-अपनी सोच के अनुसार विकसित किया गया। यही कारण है कि हम तंत्रागम की विभिन्न पद्धतियों में कुछ तत्वों और प्रतीकों को समान रूप से पाते हैं। यद्यपि यह अवश्य है कि उनकी व्याख्याएँ भिन्न प्रतीत होती हैं, लेकिन वे भी सतही ही कही जा सकती हैं।

तंत्र का संबंध साधना से है। तंत्र साधना की भी विभिन्न पद्धतियाँ विकसित हुई हैं, लेकिन साधना की विभिन्न पद्धतियों के बावजूद उनके साधक मूल रूप से एक समान अनुभव से ही गुजरते हैं। उदाहरण के लिए कुंडलिनी शक्ति को ले सकते हैं। पातंजलि के योग प्रदीप में भी उसका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है, और तंत्रागम की विभिन्न पद्धतियों में भी सारा जोर उसी पर है। यह जरूर है कि उनके नाम एवं उससे जुड़े चक्रों के स्वरूप एवं उनकी संख्या के संबंध में भिन्नता है, तथापि कुंडलिनी-जागरण का उद्देश्य कुल मिलाकर एक ही है।

भोग : तंत्र का सार ?

तंत्र के कुछ अध्येता उसे मूल रूप से देहवादी मानते हैं इसलिए कि भोग ही तंत्र का सार है और भोग के लिए इच्छा होना जरूरी है। बिना आनंद एवं इच्छा के कोई तांत्रिक साधना पूरी नहीं होती। उसे मात्र कर्त्तव्य समझकर पूरा किया ही नहीं जा सकता। तांत्रिक सहवास क्रियाओं को बिना आनंद एवं इच्छा के पूरा करने की बात ही मिथ्या लगती है क्योंकि सहवास क्रियाओं के लिए आवश्यक अंग-उत्तेजना बिना आनंदोन्मुख इच्छा या भावना के उत्पन्न हो ही नहीं सकती। स्वयं अनुभवी तांत्रिकों का मत है कि अत्यंत सघन एवं प्रत्यक्ष मनोवैज्ञानिक आवेग की तीव्रता पर ही साधना या तांत्रिक कर्मकांडों की सफलता निर्भर करती है। प्रतीत होता है कि तंत्र ने सभ्यता के विकास के दौरान मनुष्य की आदिम कामभावना का परिष्करण ही किया है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि तंत्र जनता के लोकाचार और रीति-रीवाजों से, जिसे एम. सुंदरराज ने वैदिक युग का 'लोअर' अथवा निम्न-धर्म कहा है, संबंधित है। प्राचीन काल के अनेक जन विश्वास आज भी किसी-न-किसी रूप में वर्तमान हैं, चाहे वह विवाह प्रथा हो या मृतक-संस्कार अथवा पर्व एवं त्यौहार।

'हिन्दू विवाह : संस्कार एवं पद्धति' में महाराष्ट्र के प्रख्यात चिंतक लेखक स्व. श्री राजवाड़े ने इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिए विवाह में सप्तपदी के दौरान वधू के भाई द्वारा उसे लाई प्रदान करने एवं बाद में वर-वधू द्वारा उसे वेदी पर अर्पित कर देने की प्रथा आज भी जारी है। इसी तरह वधू को पैर से एक पत्थर के बट्टे को भी स्पर्श करने की रीति है।

स्व. राजवाड़े ने इस प्रथा का जो मूल कारण बताया है–इसकी संक्षिप्त चर्चा ज्ञानवर्द्धक होगी। उन्होंने लिखा है कि प्राचीन काल में विवाह के बाद वधू को पहले देवताओं के भोग के लिए भेजा जाता था। उनके 'भोग' के बाद ही वह पति के पास आती थी। (सामंती युग में भी यह प्रथा विद्यमान थी, जब गाँव की नववधू पहले हवेली भेजी जाती थी।) एक बार एक वधू के पति ने इस नीति को मानने से इंकार कर दिया। उसके समर्थन में और लोग भी आ खड़े हुए। बात देवों तक पहुँची। यह उनके अधिकार का मामला था। वे इसे सहज छोड़ने को तैयार नहीं हुए। संघर्ष की नौबत आ गयी। अंततः वधू के भाई ने समझदारी दिखायी। उसने देवों को इस बात के लिए राजी किया कि वे वधू, उसकी बहन, के एवज में या उसके प्रतीक स्वरूप अन्न ले लें। देव भी कई कारणों से यह संघर्ष टालना चाहते थे। युद्ध में पराजय उनके खिलाफ स्थायी

विद्रोह को जन्म दे सकती थी। अब तक प्राप्त अधिकार भी जाते, सो अलग। अतः वे उस समझदार भाई की बात मान गये और भाई ने देवों को अन्न देकर अपनी बहन को 'मुक्त' कराया। इसके बाद यही नियम भी बन गया, जो आज तक प्रतीक रूप में विद्यमान है। पत्थर के बट्टे के चरणों से स्पर्श का कारण यह है कि उस पति ने अपनी नवविवाहिता से शिला पर खड़े होने तथा उसी शिला के समान सदैव दृढ़ रहने का वचन लिया था।

लोक पर्वों में तंत्र के तत्व

मुझे अपने गृह नगर नागपुर की बचपन की होली याद आती है। यह आजादी के पूर्व सन् 39-40 की बात है। उन दिनों हमारे मोहल्ले में, जो लोहारों का था, और आसपास भी लोधी, पासी, भोइयों के मोहल्ले थे, होली पर एक शव-यात्रा निकलती थी। इस शवयात्रा में एक व्यक्ति शव बनकर अर्थी पर लेट जाता था। उसे शव की भाँति वस्त्र, हार आदि भी पहना दिये जाते थे। इस अर्थी में व्यक्ति के शिश्न स्थान की जगह एक काष्ठ शिश्न खड़ा कर दिया जाता था। उस पर भी सिंदूर, पुष्प आदि चढ़ाये जाते थे। और फिर गाते-बजाते यह जुलूस मोहल्ले की गलियों से निकलता था। संभ्रान्त कहे जाने वाले परिवारों के लोग भी हेय दृष्टि रखने का 'नाटक' कर उसका पूरा-पूरा आनंद लेते थे।

तंत्र संबंधी साहित्य को पढ़ते समय अनेक स्थलों पर 'भगपूजा' का भी उल्लेख पढ़ा। उसे तंत्रागम पद्धति का अनिवार्य अंग बताया गया था। तो होली के अवसर पर निम्न समझे जाने वाले लोगों द्वारा शवयात्रा में शिश्न की पूजा भी आदिम प्रथा का ही विकसित रूप ही है। यों, आध्यात्मिकता के चश्मे से इस प्रथा का भी आध्यात्मिक सूत्र खोजा जा सकता है। यह भी अर्थ निकाला जा सकता है, यह 'शवयात्रा' मृत्यु पर विजय का प्रतीक है। 'शिश्न' लौकिक शिश्न नहीं, 'परमशिव', 'सदाशिव' का ही प्रतीक है। क्योंकि कुंडलिनी की चर्चा में हम पाते हैं कि मूलाधार के पास अधोमुखी कुंडलिनी भी एक स्वयंभू लिंग को ही साढ़े तीन आवृत्तियों के साथ आबद्ध किये हुए है, और वही जब ऊर्ध्वमुखी होती है तो षट्चक्रों या द्वादश अथवा चतुर्दश चक्रों को भेद सहस्त्रार स्थित परमशिव से जा मिलती है, जो लिंग रूप में विद्यमान हैं। यही शक्ति और शिव का मिलन है, तंत्र के पंचमकारों में से एक 'मैथुन' है।

लौकिक जन के रीति-रीवाजों और विश्वासों को संस्कृत में लिपिबद्ध करने

वाले ब्राह्मण विद्वानों ने इन लौकिक रीतियों पर आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ाकर उन्हें आत्मसात कर लिया और यत्र-तत्र संपादन कर उनका परिष्करण भी किया। यद्यपि उन्होंने उसे निम्न समाज की धर्म के नाम पर की जाने वाली इन क्रियाओं से बचने की चेतावनी भी दी। भारत में लौकिक अर्थात् आम जनता मुक्तभाव से खुले में व्यवहार की आदी थी। तंत्रागम की विभिन्न पद्धतियों में हमें उन्हीं की अनुगूँज सुनायी पड़ती है।

तंत्र : बुद्ध की दृष्टि में हेय

बुद्ध के समय अर्थात् ईसा की पाँच शती पूर्व भी तंत्र का पर्याप्त प्रचलन था। यद्यपि बुद्ध उसे हेय मानते थे, तथापि बाद में उनके अनुयायी भी इसके आकर्षण से न बच सके। मध्ययुग में बौद्ध तंत्र के आवरण में तंत्र चीन, जापान, तिब्बत, दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों और मंगोलिया तक पहुँचा। इसी काल में अपनी तंत्र पद्धति को दूसरी तंत्र पद्धति से श्रेष्ठ दशनि के भी प्रयत्न आरंभ हुए।

वशिष्ठ-प्रसंग

रुद्रयामल तंत्र एवं ब्रह्मयामल तंत्र में एक ही कथा भिन्न रूपों में मिलती है। लेकिन वह तंत्र के मुख्य तत्वों को दशनि के साथ-साथ यह भी प्रतिपादित करती हैं कि 'तंत्र' श्रेष्ठ है। तथापि वह पारंपरिक रीतियों से जो सभी संप्रदायों के गुणों का समुच्चय है, अविच्छिन्न नहीं है।

कथा नायक हैं, वशिष्ठ, ब्रह्मा के पुत्र, राम के गुरु। कथा दर्शाती है कि किस तरह वशिष्ठ ने छह हजार वर्षों तक परंपरागत ध्यान एवं कठोर तपस्या की। उनका उद्देश्य था कि महाशक्ति-देवी-उन्हें स्वयं प्रत्यक्ष दर्शन दें। तपस्या में निराश होकर वशिष्ठ देवी को शाप देने ही जा रहे थे कि उनके पिता ने उन्हें समझाया कि देवी के संबंध में उनकी अवधारणा ही गलत है। वह असीमित, सहस्रों सूर्यों की आभा वाली हैं और उनसे ही समूची सृष्टि, समूचे ब्रह्मांड की रचना हुई है। वे स्वयं बुद्ध के ज्ञान का सार हैं, वे करुणामयी, स्नेहमयी और सुंदर हैं। वशिष्ठ ने पुनः इसी भावना से तपस्या की और देवी उनके समक्ष सरस्वती के रूप में प्रकट हुईं। उन्होंने वशिष्ठ से कहा कि अभी भी वे सही मार्ग पर नहीं हैं और तथा उन्हें धर्म का 'कुल' मार्ग (अर्थात् तंत्रमार्ग) अपनाना पड़ेगा।

मात्र योग एवं तपस्या से उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होगा, उन्हें देवी के चरणों की झलक तक नहीं दिख पाएगी। उन्होंने कहा, "मेरी पूजा-उपासना पीड़ा और त्याग रहित है।" वे महाचीन जाएँ। वहीं उन्हें सही मार्ग प्राप्त होगा। यह कहकर वे अंतर्ध्यान हो गयीं।

वशिष्ठ ने सरस्वती की आज्ञा मानकर महाचीन के लिए प्रस्थान किया और वहां पहुँचकर उन्होंने जो दृश्य देखा, उससे वे स्तब्ध रह गये। उन्होंने देखा कि स्वयं विष्णु बुद्ध का रूप धरकर नशे में रक्तिम नेत्र लिये, साथियों से घिरे नग्न बैठे हैं। यही नहीं, वे सुंदर, आभूषण जटित सुंदरियों से घिरे उनके साथ सहवास का आनंद ले रहे और दे रहे हैं। वशिष्ठ ने तत्काल इस सबका विरोध किया और कहा कि यह सब पवित्र शिक्षाओं के विरुद्ध है। बुद्ध ने कहा कि वे गलती कर रहे हैं। वहां उपस्थित सारे स्त्री-पुरुष लंबे कर्मकांड और साधना के बाद ही यह सब कर रहे हैं और उनका बाह्याचार उनके गहन अंतर्दर्शन का माध्यम मात्र है। वहां उपस्थित स्त्रियाँ स्वयं महादेवी का ही रूप हैं। इसके बाद बुद्ध ने वशिष्ठ को विशेष कुल योग की दीक्षा दी, जिसे ऋषि ने समझ लिया और उनका लक्ष्य सिद्ध हो गया।

तंत्र संबंधी संपूर्ण बौद्ध ग्रंथ 600 ईस्वी के हैं। मध्य युग तक तंत्र का बंगाल, असम, कश्मीर और दक्षिण भारत के केरल सहित अन्य प्रदेशों के हिंदू समाज में व्यापक प्रचार हुआ। आठवीं शती में वह चीन पहुँचा। वहां की ताँग राजधानी के दो मुख्य मंदिरों में बौद्ध चीनी धर्म ताओ की काम विधियों का पालन करते थे। चीन से तंत्र जापान पहुँचा। बाद में कन्फ्यूशियस धर्म ने तंत्र की काम संबंधी बातों को बहिष्कृत कर दिया। तिब्बत में सातवीं शती से तंत्र का प्रारंभ हुआ जो उत्तरोत्तर लोकप्रिय होता गया। तिब्बत से ही तंत्र मंगोलिया और चीन के कुछ प्रदेशों में पहुँचा। नेपाल में प्रारंभ से ही बौद्ध तंत्र काफी फला-फूला और बाद में वह हिंदू तंत्र से भी घुल-मिल गया। आठवी शती में कम्बोडिया और जावा में तथा दक्षिणपूर्वी एशिया के कुछ हिस्सों में हिंदू तंत्र का प्रचार-प्रसार हुआ। भारत में असम एवं बंगाल में शाक्त एवं कश्मीर में शैव तंत्र का वर्चस्व रहा।

आदिम विश्वासों का परिष्करण

तंत्र को देहवादी मानने वाले लोगों का विश्वास है कि कालांतर में ही उस पर आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ता चला गया। आदिम जन-जातियों के विश्वासों

का परिष्करण हुआ। लेकिन उनका मूल तत्व ज्यों-का-त्यों बरकरार रहा। चूँकि ये कबीले मातृसत्तात्मक थे अत: उनमें नारी को अत्यन्त उच्च स्थान दिया गया था। वैदिक धर्म पशुचारण संस्कृति के लोगों का धर्म था, जिसमें पुरुष देवताओं का प्राधान्य था। पशुचारण संस्कृति पुरुष प्रधान थी, जबकि कृषि संस्कृति स्त्री प्रधान। प्रारंभिक वेदों में हमें पुरुष देवताओं की स्तुतियाँ मिलती हैं। रात्रिदेवी, ऊषादेवी के रूप में स्त्री देवियों की भी कुछ स्तुतियाँ हैं, लेकिन अल्प। लेकिन नारी को शक्ति मान उसकी पूजा न केवल सिंधु सभ्यता में प्रचलित थी, वरन् भारत के पश्चिम गांधार, काबुल, ईरान, एवं पूर्व में मलाया, जावा, बाली तथा उत्तर पूर्व में तिब्बत, चीन, जापान आदि में शक्ति की पूजा का प्रचलन था।

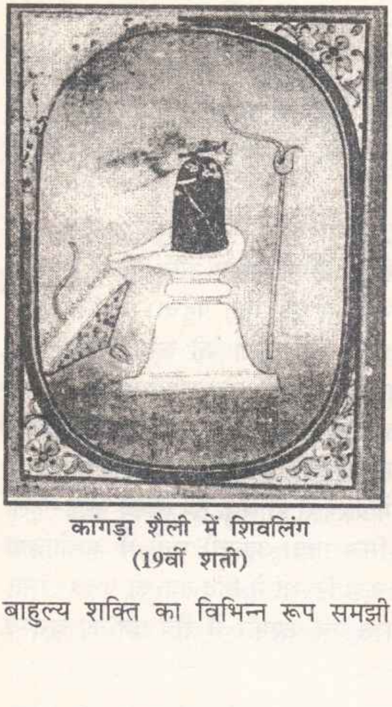

कांगड़ा शैली में शिवलिंग
(19वीं शती)

शक्ति के साथ-साथ शिव की पूजा भी की जाती थी। कुछ लोगों के अनुसार वेदों में कुछ लोगों को, जो आदिम जन-जाति के थे, 'शिश्न पूजक' कहकर उनकी भर्त्सना की गयी है। जबकि कुछ लोगों का कहना है कि लिंग (शिश्न देव) को शिव से जोड़ना भ्रमपूर्ण है। वे उसे अग्नि का प्रतीक मानते हैं। कालांतर में शक्ति के उपासक शाक्त, शिव के उपासक शैव और वेदों के, विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाये। तंत्र के मूल रूप में भी समय के साथ-साथ बदलाव आता गया और उसमें शिव, शक्ति और विष्णु का भी समन्वय कर लिया गया। तथापि इसमें बाहुल्य शक्ति का विभिन्न रूप समझी जानी वाली देवियों का ही रहा।

तंत्र-साहित्य

तंत्र संबंधी विपुल साहित्य उपलब्ध है। तंत्रागम की एक नहीं अनेक पद्धतियाँ हैं, और उतने ही उनसे संबंधित ग्रंथ हैं। आगम तत्व विलास में निम्नलिखित तंत्रागम पद्धतियों का उल्लेख है :

स्वतंत्र तंत्र, फेत्कारी तंत्र, उत्तर तंत्र, नील तंत्र, वीर तंत्र, कुमारी तंत्र, काली तंत्र, नारायणी तंत्र, तारणी तंत्र, बाला तंत्र, समयाचार तंत्र, भैरव तंत्र, भैरवी तंत्र, त्रिपुरा तंत्र, वामकेश्वर तंत्र, कुक्कुटेश्वर तंत्र, मातृका तंत्र, संत कुमार तंत्र, विशुद्धेश्वर तंत्र, सम्मोहन तंत्र, गौतमी तंत्र, बृहद् गौतमी तंत्र, भूत भैरव तंत्र, चामुंडा तंत्र, पिंगला तंत्र, वाराही तंत्र, मुंड माला तंत्र, योगिनी तंत्र, मालिनी विजय तंत्र, स्वच्छंद भैरव तंत्र, महातंत्र, शक्तितंत्र, चिंतामणि तंत्र, उत्तमत्त भैरव तंत्र, त्रैलोक्यसार तंत्र, विश्वसार तंत्र, तंत्रामृत, महाफेत्कारी तंत्र, वारवीय तंत्र, तोडल तंत्र, मालिनी तंत्र, ललिता तंत्र, त्रिशक्ति तंत्र, राजराजेश्वरी तंत्र, महामाहेश्वर तंत्र, गवाक्ष तंत्र, गांधर्व तंत्र, त्रैलोक्यमोहन तंत्र, हंस परमेश्वर तंत्र, हंस माहेश्वर तंत्र, कामधेनु तंत्र, वर्ण विलास तंत्र, मायातंत्र, मंत्रराज, कुब्जिका तंत्र, विज्ञान लतिका, लिंगागम, कालोत्तर, ब्रह्मयामल, आदियामल, रुद्रयामल, वृहज्जामल, सिद्धजामल एवं कल्प-सूत्र।

इसी तरह तांत्रिकों ग्रंथों की भी एक लंबी सूची है। यथा : मतस्य सूक्त, कुल सूक्त, कामराज, शिवागम, उड्डीश, कुलोड्डीश, भूत डामर, डामर, यक्ष डामर, कालिका कुल सर्वस्व, कुलार्णव, काली कुलार्णव, लक्ष्मी कुलार्णव, आगम दीपिका, तंत्र चूड़ामणि, तंत्र कौमुदी, तारा रहस्य, श्यामा रहस्य, तंत्र सार, शक्ति संगम तंत्र, सरस्वती तंत्र, पिच्छिला तंत्र, लिंगार्चन तंत्र, कैवल्य तंत्र, कौलिकार्चन दीपिका, मातृकाभेद तंत्र, महानिर्वाण तंत्र, निर्वाण तंत्र, मणि तंत्र, आदि-आदि।

कपिल, जैमिनी, वशिष्ठ, नारद, गर्ग, पुलस्त्य, भार्गव, याज्ञवलक्य, भृगु, शुक्राचार्य, बृहस्पति आदि रचित तंत्रों के अलावा बौद्ध तंत्र भी उपलब्ध हैं। महासिद्धि सारस्वत में कामाख्या तंत्र, राधा तंत्र, महाकाल तंत्र के अलावा और अनेक ग्रंथों

का उल्लेख है।

हिंदू तांत्रिक साहित्य की मान्यता है कि यह शास्त्र स्वयं शिव ने पार्वती को उद्घाटित किया। बौद्ध तंत्र साहित्य स्वयं बुद्ध को उसका उपदेष्टा मानता है। अपने सिद्धांत, मत या विचार को अपने इष्ट द्वारा उपदेशित करने की परंपरा प्राचीन है। फल यह होता है कि उसे ईश्वरीय मान लिया जाता है। वेद इसके उदाहरण हैं। उन्हें अपौरुषेय कहा जाता है। वेदादि निगम कहे जाते हैं और उनकी तरह ही तंत्र आगम माना जाता है।

महानिर्वाण तंत्र में शिव पार्वती से कहते हैं–

"प्रिये, मैं तुमसे यह बात सत्य कहता हूँ कि कलियुग में आगम मार्ग के अतिरिक्त मनुष्यों का कल्याण किसी प्रकार से संभव नहीं।"

यथा : **"विना ह्यागम मार्गेन कलौ नास्ति गतिः प्रिये"**

वे आगे कहते हैं,

कलावगममुल्लंध्य योटन्य मार्गे प्रवर्त्तते।
न तस्य गतिरस्तीति सत्यं सत्य न संशय॥

भावार्थ यह है कि जो व्यक्ति कलियुग में आगम को छोड़कर किसी अन्य मार्ग का अवलंवन करेगा, उसकी सद्गति नहीं होगी।

क्योंकि विधिपूर्वक अध्ययन न करने से अब सारे वैदिक मंत्र विषहीन सर्प की भांति अशक्त हो गये हैं–

'निर्वीर्याः श्रौत जातीया विषहीनोरगा इव'

कलियुग में जब वैदिक मंत्र निष्फल सिद्ध हों तो केवल तंत्र में बताये गये मंत्र ही शीघ्र फल देते हैं। और उनका प्रयोग जप, यज्ञ आदि सभी कार्यों में उचित हैं–

कलौ तंत्रोदिता मंत्राः सिद्धास्तुर्ण फलप्रदाः
शस्ताः कर्मष सर्वेषु जपयज्ञ क्रियादषु।

तंत्र-शास्त्र के साथ-साथ दो शब्द और जुड़े हैं। वे है आगम और यामल। अर्थात् तंत्र में तीन शास्त्र जुड़े हैं–स्वयं **तंत्र एवं आगम तथा यामल।**

वाराही तंत्र के अनुसार आगम के लक्षण हैं :

सृष्टिश्च प्रलयश्चैव देवतानां यथार्चनं
साधन चैव सर्वेषां पुरश्चरणमेव च।
षटकर्म साघनं चैव ध्यानयोगश्चतुर्विधः
सप्तभिर्तक्षैणर्युक्त मागमं तद्धिदुर्वधाः

अर्थात् सृष्टि, प्रलय, देवपूजन, सर्वकल्याण, पुरश्चरण, षट्कर्म साधन (यथा

वेद पठन-अध्यापन, दान देना, लेना तथा यज्ञ स्वयं करना, दूसरों को कराना।) और चतुर्विध ध्यान यथा प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि के ये सातों लक्षण जिस ग्रंथ या पद्धति में हों, उसे आगम कहते हैं।

आगम का एक और अर्थ है–**'आ समन्तात् भावेन गमयतीति आगमः'** अर्थात् जो विधि हमें पूर्ण रूप से ले जाती है, वह आगम कहलाती है।

एक परिभाषा और है :

आगतं शिव वक्त्राब्जात् गतं च गिरजामुखे
मतं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते।

अर्थात् 'आ' से शिव के मुखकमल से आना, 'ग' से गौरी के मुख में जाना और 'म' से वासुदेव का मत सम्मत होना सूचित होता है।

इस श्लोक में शैव एवं वैष्णव के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न है यथा पार्वती द्वारा सुने गये शिव के कथन की विष्णु द्वारा पुष्टि।

यामल शब्द का व्युत्पत्ति यमल से हुई है। इसका अर्थ है युगल अर्थात् जोड़ा। दूसरे शब्दों में यामल है देवता एवं उनकी शक्ति का परस्पर रहस्य-संवाद। इसे ही शिव और शक्ति के मध्य संवाद माना गया है। यामल तंत्र आठ हैं–जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, लक्ष्मी, उमा, स्कंद, गणेश तथा ग्रह परक हैं।

निम्नलिखित श्लोक यामल के लक्षणों का अच्छा परिचय देता है :

सृष्टिश्च ज्योतिषाख्यानं नित्यकृत्य प्रदीपनम्।
कल्पसूत्रं वर्णभेदो जातिभेदस्तथैव च॥
युगधर्मश्च संख्यातो यामलचाष्ट लक्षणम्।

भावार्थ यह है कि यामल के आठ लक्षण हैं, वह शास्त्र जिसमें सृष्टि-उत्पत्ति कैसे हुई, किस तरह हो सकती है, उस पर विचार हो, जिसमें आकाश में दैदीप्यमान ज्योतिष पिंडों का वर्णन हो, नित्यकर्म, कल्पसूत्र अर्थात् यज्ञ-विधान, वर्ण भेद जाति भेद और युगधर्म का प्रतिपादन हो, वह यामल कहलाता है

शास्त्रीय दृष्टि से यामल का अर्थ कहा गया है–युगल से संबंधित अथवा उद्गत। युगलावस्था को शिव एवं शक्ति के परस्पर अभिमुख होने की अवस्था भी कहा जाता है। यह मत प्रतिपादित किया गया है कि अपने स्वभाव में अवस्थित होने की अवस्था में शिव निष्फल माने जाते हैं। शिव की सक्रियता शक्ति भी सुप्तावस्था में रहती है। शिव के सहज विक्षोभ होने पर शक्ति का प्रगटीकरण होता है। तथा दोनों अर्थात् शिव, शक्ति परस्पर अभिमुख होते हैं और उनकी कला का विकासमय विकास आरंभ होता है। यही सृष्टि का कारण है।

तंत्र की भी विशद् व्याख्या है। जिस शास्त्र में सृष्टि, प्रलय, मंत्र विधान

कि कौन-सा मंत्र किस कार्य के लिए जपा जाए, देव संस्थानों, तीर्थों, आश्रम धर्म, वेदपाठी विप्रों के संस्थान, प्राणियों के संस्थान, ग्रह, नक्षत्र तारों के संस्थान, इतिहास, पुराण, देव उत्पत्ति, कल्प विवेचन, शब्द कोष विवेचन, व्रत विधान, शौच-अशौच की व्याख्या, स्त्री-पुरुष के लक्षणों, राजा, दानदाता के धर्म, युगधर्म, व्यक्तिगत, सामाजिक व्यवहार का विवेचन हो, किस कार्य के लिए किस प्रकार के तंत्र का उपयोग किया जाए, इसका निर्देश हो, साथ ही आध्यात्मिक विषयों का भी निरूपण हो, वह तंत्र शास्त्र कहलाता है।

यथा :

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मंत्रं निर्णय एव च।
देवतानांच संस्थानं तीर्थनांचैव वर्णनम् ॥
तर्थेवाश्रमधर्मश्य विप्रसंस्थानंमेव च।
संस्थानंचैव भूतानां यंत्राणांचैव निर्णयः ॥
उत्पत्तिर्विबुधानांच तरुणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिष्यांचैव पुराणाख्यानमेव च ॥
कोषस्य कथनंचैव व्रतानां परिभाषणम् ।
शौचाशौचस्य चाख्यानं नरकाणांच वर्णनम् ॥
हरचक्रस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्।
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च ॥
कथ्यते व्यवहारश्च तथा चाध्यात्मवर्णनम्।
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तंत्रमित्यभिधीयर्त ॥

इस व्याख्या के आलोक में तंत्र का प्रचलित अर्थ घोर संकीर्ण ही प्रतीत होता है। तंत्र के अंतर्गत ऊपर जिन विषयों का समावेश किया गया है, उन पर तंत्र शास्त्र से पृथक भी अनेक ग्रंथ मिलते हैं। और आचार्यों ने उन पर पृथक-पृथक रूप से भी विचार किया है, अतः उन पद्धतियों-विशेष को, जिनकी पृथक में कहीं चर्चा नहीं मिलती, तंत्र के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

कालांतर में तंत्र में भी पृथक-पृथक संप्रदायों का विकास हुआ और प्रत्येक संप्रदाय में अपने मत की व्याख्या और स्थापना के लिए ग्रंथों की रचना की गयी। इस तरह तंत्र संबंधी साहित्य विशाल है। इतना विशाल कि उनका नामोल्लेख अवश्य ही नीरस लगने लगता है। स्थानाभाव के कारण भी इस विशाल साहित्य का सामान्य परिचय देना भी कठिन ही सिद्ध होगा। फिर भी आगे हम विभिन्न तंत्रात्मक पद्धतियों की चर्चा में यथा-संभव उनका उल्लेख करने का प्रयत्न करेंगे।

तंत्र : सिद्धांत और साधना

सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में मनुष्य की जिज्ञासा आदिम काल से ही चली आ रही है। आज भी इस जिज्ञासा के अंतिम समाधान की खोज जारी है। ऋषियों, योगियों, दार्शनिकों, चिंतकों और वैज्ञानिकों ने सदियों से इस जिज्ञासा का अपने-अपने ढंग से समाधान ढूँढ़ा है। संसार के प्रायः सभी प्रमुख धर्मों में भी सबसे पहले इसी जिज्ञासा को शांत करने का प्रयत्न किया गया है।

सृष्टि की रचना : भिन्न मान्यताएँ

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के अनुसार, परम पुरुष परमेश्वर हजारों सिर, हजारों आंखों और हजारों पैरों वाला है...संपूर्ण प्राणी अर्थात् यह समग्र जगत तो इसका केवल एक पाद है...उस आदि पुरुष से ब्रह्मांड देह, व्यक्त जगत उत्पन्न हुआ। ब्रह्मांड देह का आश्रय लेकर उससे पुरुष उत्पन्न हुआ...आदि-आदि। सांख्य दर्शन जल से ब्रह्मांड की और उससे स्वयंभू प्रजापति ब्रह्मा का प्राकट्य मानता है। ब्रह्मांड के दो भाग-पृथ्वी और आकाश हो गये और ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न मनु और शतरूपा से विश्व की रचना हुई।

ब्रह्मांड की रचना के पूर्व मात्र परब्रह्म था और उसके संकल्प से हुए महा विस्फोट के पश्चात सृष्टि की रचना हुई। ईसाई धर्म एवं इस्लाम भी विश्व को 'गॉड' या अल्लाह की सृष्टि मानता है। जैन धर्म की मान्यता है कि विश्व है, वह सनातन एवं जीव और अजीव, एक चेतन, दूसरा जड़ में विभक्त है। चीन के प्राचीनतम धर्म ताओ में ताओ को एक सर्वदा विद्यमान, पूर्ण एवं अगोचर सत्ता माना गया है। उसी से संसार की समस्त वस्तुओं का विकास हुआ है। जापान का प्राचीनतम धर्म शिंतो है—जिसमें सात दैवी शक्तियों की आराधना प्रचलित

है। इसमें धन एवं भाग्य के देवता देयिकोकुटन महाकाल शिव के समरूप हैं। इसी तरह बेंजेटइन भाग्य की देवी हैं, जिनकी सरस्वती से तुलना की गयी है।

तंत्र : विसर्ग से सृष्टि उत्पत्ति

तंत्र-शास्त्र विसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। 'तंत्र दर्शन' में श्री गोविन्द शास्त्री लिखते हैं–

"शिव की बिंदुमय अवस्था विक्षुब्ध होने पर विसर्ग की उत्कट आकांक्षा से प्रेरित होती है–जिसे भाषा में उपर्यध : दो बिंदु के चिह्न से लिखा करते हैं। मूलतः वे दो बिंदु शिव और शक्ति के मिथक को, उनके साम्मुख्य को संकेतित करते हैं। बिंदु का विकास त्रिकोणमय हुआ करता है और त्रिकोण के कोण बिंदुमयता का आभास देते हैं। शिव और शक्ति के द्वित्व पर आधारित बिंदु द्वय में सम्मुखासीन क्रिया होने पर दोनों में भेद, विशिष्ट अभेद प्रकट होता है और दोनों की एकरूपता किंवा परस्पर आबद्ध हो जाने पर शिवांश प्रधान और शक्तयंश प्रधान त्रिकोण व्यक्त होता है।"

ईश्वर : जगदम्बा

तंत्र का शाक्त संप्रदाय ईश्वर को मां के रूप में देखता है, जिसके गर्भ से ही समस्त ब्रह्मांड की उत्पत्ति हुई है। शैव संप्रदाय के इष्ट शिव हैं और क्रियात्मक शक्ति देवी अथवा 'शक्ति' है। योगिनी हृदय तंत्र में शिव कहते हैं, 'एक नारी हृदय को कौन जान सकता है? केवल शिव ही योगिनी (अर्थात् महाशक्ति) के हृदय को जानते हैं"।

शिव और शक्ति पृथक दो प्रतीत होते हुए भी एक हैं। शाक्त तंत्र में शिव-शक्ति को कनक अर्थात् गेहूं के दाने की भांति कहा गया है। दाने में दो बीज हैं तथापि वे एक आवरण से ढंके होने के कारण एक प्रतीत होते हैं। बीज शिव और शक्ति है, जबकि आवरण या छिलका माया।

शिव को विशुद्ध चैतन्य भी कहा है। अपनी क्रीड़ा या विलास के लिए ही यह विशुद्ध चैतन्य स्वयं को शुद्ध चैतन्य एवं शुद्ध ऊर्जा में विभाजित करता है। तंत्र में इसे ही ब्रह्मांडीय मैथुन या 'ब्रह्म मैथुन' भी कहा गया है।

विशुद्ध चैतन्य : शिव ऊर्जा शक्ति

विशुद्ध चैतन्य ही सत्य का अंतिम आधार है। वह सतत स्पंदनशील है। विशुद्ध चैतन्य ऊर्जा का आलोड़न ही ब्रह्मांड की उत्पत्ति, पालन एवं संहार का कारण है। केवल क्रीड़ा अथवा विलास के लिए ही विशुद्ध चैतन्य ऊर्जा स्वयं को शुद्ध चैतन्य एवं शुद्ध ऊर्जा में विभाजित करती है। शुद्ध चैतन्य स्वयं को सीमित कर सीमित ज्ञान अथवा अज्ञान के साथ नश्वर व्यक्ति में परिवर्तित कर लेती है। शुद्ध ऊर्जा नश्वर देहधारी के अनुभव एवं संतोष के लिए रहस्यमय ब्रह्मांड की रचना करती है। व्यक्ति में बंदी चैतन्य स्वयं आरोपित सीमित ज्ञान या अज्ञान को तिलांजलि दे अपनी मूल शुद्धता को प्राप्त करना चाहता है। तथापि शुद्ध ऊर्जा व्यक्ति को मायाजाल में फंसा देती है। जब तक शुद्ध ऊर्जा शक्ति स्वयं व्यक्ति की सहायता के लिए आगे नहीं आती, तब तक व्यक्ति के लिए सांसारिक अनुभवों या बंधनों से मुक्ति असंभव होती है। शुद्ध शक्ति का शुद्ध चैतन्य से अस्थायी अलगाव परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों की दो धाराओं को जन्म देता है। शुद्ध शक्ति की लय प्रकृति की जटिल प्रक्रियाओं में स्वयं को प्रस्फुटित करती है तथा शुद्ध चैतन्य व्यक्ति को ज्ञान प्रदान कर उसे सीमित ज्ञान या अज्ञान के बंधन से मुक्त करता है।

यह शुद्ध चैतन्य ही शिव है। वही आदि गुरु भी है। वह बिना किसी भेदभाव के अपने भक्तों पर कृपा की वर्षा करते हैं। वे त्याग के भी प्रतीक हैं। भय के कारण जिस वस्तु को देवता ग्रहण नहीं करते, शिव सहर्ष उसे अपना लेते हैं। शिव का जो रूप वर्णन किया गया है, वह महत्त्वपूर्ण एवं प्रतीकात्मक है। शरीर पर श्मशान की चिता भस्म, गले में एवं जटाओं पर विषधरों के आभूषण। अधोवस्त्र के रूप में बाघम्बर या हस्ति-चर्म। सवारी के लिए नंदी। एक हाथ में डमरू एवं त्रिशूल, दूसरे में अग्नि। शीश पर अर्धचंद्र एवं गंगा। वे त्रिनेत्रधारी भी हैं। इनका इस तरह अर्थ लगाया गया है :

चिताभस्म अपरिग्रह की सूचक। उलझी जटाएँ ब्रह्मांड की जटिलताओं की प्रतीक। गंगा अजस्र जीवनधारा की। दायां नेत्र सूर्य एवं बायां नेत्र चंद्र का प्रतीक। एक नेत्र अर्थात् दायां नेत्र ऊर्जा विकीर्ण करता है तो बायां प्रज्ञा-प्रकाश। उनका तीसरा नेत्र विशुद्ध चैतन्य का द्योतक है। वह शुद्ध ज्ञान का भी प्रतीक है। इसी नेत्र से शिव ने कामदेव को भस्म किया था। काम, योग मार्ग का बाधक है जिसे शिव ने अपनी योगशक्ति से राख कर दिया। शिव योगेश्वर हैं, कैलाश वासी। कैलाश चेतना के उच्चतम स्तर का प्रतीक है, जहां वे उमा के साथ विराजते

हैं। शिव मृत्युंजय भी हैं और नटराज भी। उनका नृत्यलास अग्नि, वायु और आकाश की अभिव्यक्ति है।

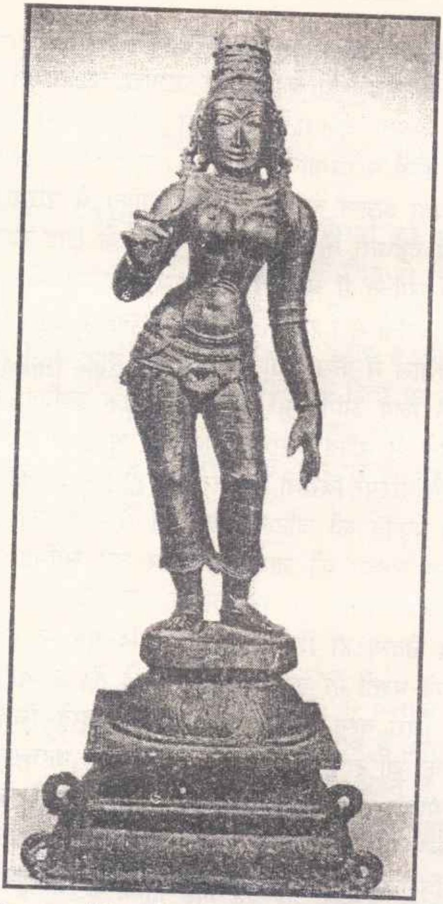

शिव की शक्ति : पार्वती (कांस्य प्रतिमा, 16वीं शती, दक्षिण भारत)

एक ध्यानमग्न तांत्रिक प्रकृति में सर्वत्र शिव के इसी नृत्य के दर्शन करता है। शक्ति को विशुद्ध चैतन्य की विशुद्ध ऊर्जा या शक्ति माना गया है। वह चैतन्य ऊर्जा है। शिव के वक्षस्थल पर काली का नृत्य यही दर्शाता है कि विशुद्ध चैतन्य ही प्रकृति का आधार है। विशुद्ध शक्ति सृष्टि की रचना, उसका पालन और संहार करती है। विशद्ध शक्ति आदि-शक्ति, जगदम्बा है। वही परम सत्य भी हैं। शाक्त संप्रदाय में भैरवी ही अपने पुरुष शिष्य को तंत्र योग के

रहस्य उद्घाटित करती हैं।

यद्यपि कश्मीरी शैवागम एवं वेदांत का मुख्य सिद्धांत अद्वैत है तथापि वेदांत जहां निष्काम कर्मयोग पर जोर-देता है, वहीं कश्मीरी शैवागम में स्वयं ही एकाग्रचित्तता का प्रतिपादन है। यह एकाग्रता परावाक् की स्थिति में उत्पन्न होती है। परावाक्, मध्यमा एवं वैखरी, ये तीन स्थितियां मानी गयी हैं। कश्मीरी शैवागम मध्यमा वाक् से शुरूआत करता है। कारण, वार्ता के दौरान योग संभव नहीं, अतः चलते-फिरते, कार्य करते मौन रहकर शिव का ध्यान करना चाहिए। मौन रहकर सक्रिय होते हुए भी शिव का ध्यान एकांत में किये गये ध्यान की भांति ही लाभप्रद होता है। मध्यमा वाक् के ध्यान में अभ्यस्त हो जाने के बाद साधक शिव की परस्थिति को प्राप्त कर सकता है। कश्मीरी शैवागम की मान्यता है कि सक्रिय रहकर मौन ध्यान के बाद जब आप अपने घर में ध्यान के लिए आसीन होते हैं तो शीघ्र ही परावस्था को प्राप्त कर भावातीत लोक में पहुंच जाते हैं। परावाक् में सक्रिय योग उपलब्ध कर लेने के बाद वैखरी वाक् में योगाभ्यास किया जाता है। लेकिन वैखरी वाक् में योगाभ्यास मध्यमा वाक् एवं परावाक् में योगाभ्यास किये बिना संभव नहीं।

कश्मीरी शैवागम एवं वेदांत में प्रथम अंतर कर्मयोग की व्याख्या को लेकर है। वेदांत निष्काम कर्मयोग पर जोर देता है, अर्थात् बिना फल की आशा रखे कर्म, जबकि कश्मीरी शैवागम शिव के सतत् ध्यान में रत कर्म करने की आवश्यकता प्रतिपादित करता है। दूसरा अंतर परम्ब्रह्म एवं जीव की स्थिति को लेकर है। वेदांत जीव की बुद्धि में परम्ब्रह्म को प्रतिबिंबित मानता है, जबकि कश्मीरी शैवागम मानता है कि शिव अपने स्वयं रूप में अपनी शुद्ध इच्छा से प्रतिबिंबित होते हैं। वेदांत जगत को माया मानता है, जबकि कश्मीरी शैवागम यथार्थ, सत्य। उसके अनुसार शिव की रचना माया कैसे हो सकती है? वेदांत कुंडलिनी योग नहीं मानता। कश्मीरी शैवागम में उसकी स्वीकृति है। वेदांत कुछ विशिष्ट लोगों को योगाभ्यास का अधिकारी मानता है, जबकि कश्मीरी शैवागम की मान्यता है कि उसका अभ्यास सभी लोग बिना भेदभाव के कर सकते हैं।

तंत्र : विभिन्न साधना पद्धतियाँ

तंत्र के अनुयायियों को पाँच विभागों में बाँटा गया है, पंचोपासना के अनुसार ये हैं, सौर, गाणपत्य, वैष्णव, शैव एवं शाक्त। जिनके इष्ट हैं क्रमशः सूर्य, गणपति, विष्णु, शिव एवं शक्ति। वर्तमान में तीन वैष्णव, शैव एवं शाक्त, का ही प्रचलन है। शेष दो के अनुयायी सीमित हैं, यथा पश्चिमी भारत अर्थात् महाराष्ट्र आदि में गणेश की पूजा आज भी लोकप्रिय है तथा सौर सिंध प्रदेश तक सीमित था।

विष्णु का उपासक वैष्णव तंत्र

वैष्णव तंत्र में विष्णु की प्रमुख उपासना होती है। इसे ही वैष्णवाचार भी कहा गया है। पाँचवी से सोलहवीं शती के मध्य रचित इस तंत्र के ग्रंथों में 'पांचरात्र' का सिद्धांत प्रतिपादित है। यह एक पंच दिवसीय अनुष्ठान का भी द्योतक है, जिसे सभी प्राणियों पर आधिपत्य की भावना से सम्पन्न किया जाता है। पांचरात्र की कुछ प्रमुख संहिताएँ हैं–ईश्वर संहिता, पौष्कर संहिता, तम संहिता, सात्त्वत संहिता, वृहदभ्रम संहिता आदि। ग्रंथकारों ने शिव–नारद संवाद के माध्यम से अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। शैव एवं शाक्त तंत्र की तरह वैष्णव तंत्र में भी वर्णाक्षरों की दार्शनिक अभिव्यक्ति मंत्र, यंत्र, चंड, योग आदि का प्राधान्य है। कुछ अभिचार कर्मों का भी समावेश है। वैष्णव तंत्र में शाक्त मत के पंचमकारों का पूर्णतः निषेध है। रात्रि में माला या यंत्र का प्रयोग भी वर्जित है।

गाणपत्य तंत्र : गणपति परब्रह्म

गाणपत्य तंत्र, गणपति की उपासना पर जोर देता है। महाराष्ट्र एवं दक्षिण भारत के कुछ भागों में इस तंत्र का विशेष प्रचार था। उसमें गणपति के अनेक रूप

मिलते हैं, जैसे गिरिगणपति, क्षिप्र गणपति, सिद्धि गणपति, नवनीत गणपति, शक्ति गणपति, उच्छिष्ट गणपति, एकाक्षरी गणपति। पूर्वाम्नाय के गणपति हैं–विरंचि गणपति, दक्षिणाम्नाय के लक्ष्मी गणपति और पश्चिमाम्नाय के विघ्नहरण गणेश। तंत्र में उच्छिष्ट गणपति की चर्चा विशेष मिलती है। कुल चूड़ामणि तंत्र में गणेशयामल तंत्र का भी उल्लेख मिलता है। गाणपत्य तंत्र गणपति को परब्रह्म परमात्मा मानता है।

शैवागम : परमशिव ही सृष्टिकर्त्ता

शैवागम का साहित्य विशाल है। इसका एक प्रमुख कारण इस संप्रदाय का अनेक शाखा-प्रशाखाओं में विभाजित हो जाना है। शैवमत परम शिव की पांच शक्तियों का उल्लेख करता है–चित्त, आनंद, ज्ञान, इच्छा एवं क्रिया। इन्हें ही 'पंच वक्त्र' भी कहा जाता है। शिव के पांच मुखों के नाम हैं–ईशान, तत्पुरुष, सद्योजात, वामदेव, एवं अघोर। उनके अलावा एक और मुख का भी उल्लेख मिलता है। इन पाँच मुखों से ही 10 सात्विक आगमों, 18 रौद्रागमों एवं 64 भैरवागमों का आविर्भाव हुआ। इन आगमों के वर्ण्य विषय हैं–सृष्टि, प्रलय, देवपूजा, मंत्र साधन, पुरश्चरण, षट्कर्म एवं ध्यान-योग।

शैव मत शिव को ही ईश्वर, सृष्टिकर्ता मानता है। शिव का शाब्दिक अर्थ है, 'शुभ', 'कल्याण', 'मंगल', 'श्रेयस्कर'। लेकिन सनातन धर्म की त्रिमूर्ति–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, में शिव को संहारकर्ता माना गया है। शिव के तीन नाम प्रसिद्ध हैं–शंभु, शंकर और शिव। उन्हें भयंकर रुद्र का सौम्य स्वरूप भी माना गया, अतः वे रुद्र भी हैं। रामायण–महाभारत में उल्लिखित माहेश्वर मत ही शैव मत है।

महाभारत में माहेश्वरों के चार संप्रदाय बतलाये गये हैं : शैव, पाशुपत, कालदमन, कापालिक। इनका धार्मिक साहित्य शैवागम कहा जाता है। पाशुपत मत के संस्थापक आचार्य लकुलेश थे, जिन्होंने लकुल (लकुट) धारी शिव की उपासना का प्रचार किया। इस मत की प्रतिक्रिया में अद्वैत दर्शन के आधार पर शैव मत का संगठन संप्रदाय के रूप में हुआ। यह संप्रदाय शिव के सौम्य स्वरूप की उपासना करता था। इस अद्वैत शैव संप्रदाय की प्रतिक्रिया स्वरूप ग्यारहवीं शती में वीर शैव अथवा लिंगायत संप्रदाय का जन्म हुआ। शक्ति विशिष्ट अद्वैतवाद उनका दार्शनिक आधार था।

कापालिक संप्रदाय

कापालिकों ने शिव के घोर रूप की उपासना के आधार पर एक स्वतंत्र संप्रदाय स्थापित किया। इनके आचार को वीभत्स माना गया है। कपालपात्र में भोजन, शव के भस्म का शरीर पर लेपन, भस्म भक्षण, यष्टि धारण, मदिरा पात्र का आसन बनाकर पूजा करना आदि। 'काल दमन' संप्रदाय के एक अन्य नाम 'कालमुख' (काल दमन को यह नाम वैष्णवाचार्य यमुनाचार्य ने दिया था) के साहित्य में कहा गया है कि इस प्रकार के आचार से समस्त लौकिक एवं पारलौकिक कामनाएं पूरी होती हैं। (कापालिक क्रियाएँ वाममार्गी शाक्तों की क्रियाओं से मिलती-जुलती हैं।)

पाशुपत एवं आगमिक

विद्वानों के मतानुसार, पूर्व में शैवमत के मुख्यतः दो ही संप्रदाय थे—पाशुपत एवं आगमिक। बाद में ये ही दो मुख्य संप्रदाय इन उप संप्रदायों में बँट गये। पाशुपत शैवमत के 6 उप संप्रदायों के नाम हैं : 1 पाशुपत, 2. लकुलीश पाशुपत 3. कापालिक 4. नाथ 5. गोरखपंथ 6. रसेश्वर। आगमिक शैवमत के 4 उप-संप्रदायों के नाम हैं—1. शैव सिद्धांत, 2. तमिल शैव, 3. कश्मीर शैव, 4. वीर शैव। कुछ विद्वान स्त्रोत विभाग, पीठ विभाग, आम्नाय विभाग में भी इस तंत्र को विभाजित करते हैं। स्त्रोत विभाग के भी तीन भाग कहे गये हैं—वाम, दक्षिण एवं सिद्धांत। एक मिश्र शैव का भी उल्लेख मिलता है।

महेश्वर द्वारा रचित 'पाशुपत सूत्र' पाशुपत संप्रदाय का आधार ग्रंथ है। एक समय पश्चिम भारत में इस मत का अत्यधिक प्रचार था। दक्षिण भारत के कौण्डिन्य रचित इसके 'पंचार्थी भाष्य के अनुसार, पदार्थों की संख्या पाँच है— 1. कर्म, 2. करण, 3. योग, 4. विधि एवं 5 दुखांत। इनमें जीव (जीवात्मा) तथा जड़ (जगत) कार्य के बोधक हैं, जिनका कारण है शिव अर्थात् परमात्मा। जीव को पशु एवं जड़ को पाश कहा जाता है। मानसिक क्रियाओं द्वारा पशु (जीव) एवं पति (शिव) के संयोग को योग कहते हैं। इस योग की प्राप्ति का मार्ग विधि कहलाता है। इस मत की पूजाविधि में इन क्रियाओं को आवश्यक माना गया है। 1. हास्य, 2. गान, 3. नृत्य, 4. हुंकारना एवं 5. नमस्कार। दुःखों से आत्यंतिक निवृत्ति ही दुखांत है।

आगमिक शैव

आगमिक शैव के ग्रंथ संस्कृत एवं तमिल दोनों में उपलब्ध हैं। इन ग्रंथों में पशु (जीव), पाश (जड़-जगत) एवं पति का विवेचन है। इस मत के अनुसार पशु अर्थात् जीव अज्ञ और अणु तथा मल, कर्म, माया एवं रोध शक्ति के पाशों में बंधा हुआ है। साधना की अवस्था में साधक पर पति (शिव-परमात्मा) का अनुग्रह होता है। इसे ही शक्तिपात कहते हैं। शक्तिपात के बाद साधक को मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

कश्मीरी शैवमत

कश्मीर का शैवमत अद्वैतवादी है। वेदांत के अद्वैतवाद का ब्रह्म निष्क्रिय है, जबकि कश्मीरी शैव मत का ब्रह्म कर्त्तव्य संपन्न है। दूसरे, कश्मीर शैवमत में ज्ञान एवं भक्ति का सुंदर समन्वय है। अद्वैत वेदांत जगत को ब्रह्म का विवर्त अर्थात् भ्रम मानता है, जबकि कश्मीर शैवमत में जगत ब्रह्म का स्वातंत्र्य एवं आभास है। कश्मीरी शैव मत की भी दो शाखाएँ हैं–स्पंद शास्त्र एवं प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। इन दोनों में कोई भी तात्विक मतभेद नहीं है। अभिनव गुप्त रचित तंत्रालोक स्पंद शास्त्र का एक मुख्य ग्रंथ है।

वीर शैवमत

वीर शैवमत के संस्थापक महात्मा वसव थे। इस मत के मुख्य ग्रंथ 'ब्रह्मसूत्र' के अनुसार अद्वैत नहीं विशिष्टाद्वैत अंतिम तत्व है। वीर शैवमत को लिंगायत भी कहा जाता है। शैव मत के और भी अनेक उप-संप्रदाय हैं, तथापि सबका मूल स्वर एक ही है।

तंत्र साधना में कौल मत

तंत्र साधना में कौल मत या कौल संप्रदाय को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। कश्मीर के शैवमत के आचार्य अभिनव गुप्त ने अपनी कृति तंत्रालोक में कौल परम्परा का श्री गणेश भैरव से बताया है। उसके बाद यह परम्परा यों बढ़ी : भैरव→भैरवी→स्वच्छंद→नाकुल या नकुलेश→अनंत→गहनेश। परशुराम को इस साधना का प्राचीन आचार्य माना गया है। एक मत मत्स्येन्द्र नाथ को कौल साधना का प्रवर्तक मानता है।

स्व. महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज कौल मत की परिभाषा करते हुए लिखते हैं : "नाद एवं कला एक होने से परमेश्वर के नव व्यूह रूप हैं, अतः भैरव–भैरवी के मध्य नौ प्रकार का एकाकार माना गया है। यही कौलमत है।" स्व. कविराज जी द्वारा वर्णित नौ व्यूह इस प्रकार हैं : काल व्यूह, कुल व्यूह, नाम व्यूह, ज्ञान व्यूह, चित्त व्यूह, नाद व्यूह, बिंदु व्यूह, कला व्यूह एवं जीव व्यूह। स्व. कविराज जी कौल मत को दो भागों में बाँटते हैं–पूर्व कौल मत एवं उत्तर कौल मत।

कौल-साधना कुल-साधना भी कहलाती है। अभिनव गुप्त ने कश्मीर से असम जाकर इस साधना की दीक्षा ली थी। 'कुल' का अर्थ है, नारी अतः एक प्रकार से कुल-साधना नारी साधना भी हुई। इस साधना में नारी की प्रधानता है। वही उसकी शक्तियाँ हैं। कुल शक्ति अर्थात् नारी के बिना कुल-साधना संभव नहीं। कुल कन्याओं की संख्या आठ हैं। ये हैं–रजकी, योगिनी, नटी, वेश्या, कापालिका, शराबी की बेटी, चाण्डाली, रतिचतुरा, निम्नजातीय कन्या। इनमें वेश्या के भी सात भेद हैं। गुप्त वेश्या, महावेश्या, कुल वेश्या, महोदया वेश्या, राजवेश्या, देव वेश्या एवं ब्रह्म वेश्या। कुल मार्ग से प्रवृत्त वेश्या को मोक्षदात्री कहा गया है।

कुल मार्ग की साधना की व्याख्या करते हुए कहा गया है :

संक्षेपयजनं वक्ष्ये तथा तंत्रानुसारतः
आलिंगनं भवेन्न्यासश्चुम्बनं ध्यान मीरितम॥

शीतकारं यजनं प्रोक्त नेवेद्य नखलेखनम्
पानं जिह्वामृतं ज्ञेयं रमणञ्च जयो भवेत
आनंद स्तवनं विद्धिरेतः पातो विसर्जन
अद्वैत ज्ञानमाश्रित्य सदा देव समचर्येत॥

संक्षेप में यजन है आलिंगन, न्यास चुंबन, ध्यान, शीत्कार यजन, नखों से लेखन नैवेद्य, जिह्वा पान अमृत और रमन जप है। इसमें प्राप्त आनंद ही स्तवन तथा बिंदु विसर्जन (वीर्यपात) ही यजन विजर्सन है। अद्वैत ज्ञान का आश्रय ले सदैव देवी का समर्चन करना चाहिए।

भौतिक आनंद का इतना विस्तार वर्णन करने के बाद तंत्र-शास्त्र साधक से कहता है कि वह इन बातों का स्थूल अर्थ ग्रहण न करे, उनके वास्तविक अर्थ को जाने। और यह अर्थ उसे गुरु से कुल दीक्षा के बाद ही समझ में आता है।

लेकिन 'कुल' शब्द की एक और व्याख्या की गयी है। 'कुल' का अर्थ शरीर स्थित मूलाधार चक्र है। 'कु' शब्द पृथ्वी तत्व का बोधक है। मूलाधार चक्र में भी पृथ्वी तत्व की ही स्थिति मानी गयी है। इस तत्व में लीन होने का अर्थ ही 'कुल' है। जो साधक मूलाधार से कुंडलिनी को शेष चक्रों का भेदन करते हुए सहस्रार तक पहुँचने की प्रक्रिया में प्रत्येक चक्र में कुंडलिनी के साथ जीवात्मा को समरस कर आनंदित होता है, वही 'कौल' है और उसकी यह साधना पद्धति ही कौलाचार है।

भाव रहस्य में कहा गया है कि जो साधक मां का स्तन पान करते हुए शिशु की भांति सतोगुण से युक्त ज्ञानमार्ग में प्रविष्ट होता है, ब्रह्मभाव में लीन रहता है, तब पूर्णानन्द उपलब्ध कराने वाली यह साधना पद्धति कौलाचार कहलाती है। श्यामा रहस्य एवं भाव चूड़ामणि में कौल साधक के लक्षणों का उल्लेख है। श्यामा रहस्य के अनुसार "अंतर में शाक्त, बाह्य रूप से शैव तथा समाज में वैष्णव की तरह आचरण करने वाला साधक 'कौल' है।" भाव चूड़ामणि कहती है, "पंक एवं चंदन में, पुत्र एवं शत्रु में, श्मशान एवं देवगृह में, कंकड़ और कंचन में समान भाव रखने वाला कौल है।"

ऐसी मनःस्थिति पाना सबके बस की बात नहीं। यह अत्यन्त दुरूह है। मनुष्य मन सहज ही इस स्थिति को प्राप्त नहीं कर सकता। मन को साधने के लिए कठोर साधना करनी पड़ती है। शायद इसलिए यह मार्ग अत्यंत कठिन भी है और साथ ही दिव्य भी। इस स्थिति पर पहुँचने वाले व्यक्ति के लिए सारा संसार समान हो जाता है। न कोई अपना, न पराया, न कोई छोटा, न बड़ा, न राग, न द्वेष।

शैव मत : मातृका चक्र

संस्कृत वर्णमाला के पचास अक्षरों या वर्णों को तंत्र में मातृका नाम दिया गया है। कामधेनु तंत्र एवं वर्णभिधान तंत्र में हमें प्रत्येक अक्षर के धार्मिक प्रतीकत्व का वर्णन मिलता है। जैसे 'अ' वर्ण के संबंध में कामधेनु तंत्र में शिव के मुख से यह व्याख्या कहलायी गयी है। 'अ' वर्ण बिंदुतत्वमय एवं स्वयं प्रकृति रूपिणी शक्ति है। वर्णोद्धार तंत्र के अनुसार इस वर्ण के आकार संयोजन में कई देवताओं का वास है।

शैवमत का मातृका चक्र का सिद्धांत सृष्टि रचना का मूल शिव को मानता है। यह ब्रह्मांड शिव की ही सृष्टि है। उन्होंने अपनी इच्छा शक्ति में अपने 'स्व' के स्वरूप में इस ब्रह्मांड की रचना की है। (बाइबिल में भी कहा गया है कि परमात्मा ने अपने ही स्वरूप में मनुष्य की रचना की। सप्ताह के छह दिनों में उसने एक-एक कर प्रकृति के तत्वों की, आकाश, सूर्य, चंद्र, तारों, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं की रचना की और अंत में मनुष्य को अपने ही स्वरूप में गढ़ उसमें अपनी साँस से प्राण फूँके। इसके बाद सातवें दिन उसने विश्राम किया।)

वेदांत में वर्णित पच्चीस तत्वों के विपरीत शैवमत छत्तीस तत्वों को मानता है। शैव मत को समझने के लिए इनका ज्ञान आवश्यक है। ये हैं–

पंच महाभूत : पृथ्वी, जल, तेजस, वायु और आकाश।
पंच तन्मात्रा : गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द।
पंच कर्मेन्द्रिय : उपस्थ, वायु, पाद, पाणि, वाक्।
पंच ज्ञानेन्द्रिय : घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक (त्वचा), श्रोत (कर्ण)।
पंच अंतकरण : मानस, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष।
षट् कंचुक : नियति, काल, राग, विद्या, कला, माया।
शुद्ध विद्या : ईश्वर, सदाशिव, शक्ति, शिव।

यह ब्रह्मांड इन्हीं छत्तीस तत्वों से बना है। यद्यपि शिव संकल्प में यह

ब्रह्मांड शक्ति से प्रसूत होकर अवरोहण करता है तथापि वह हमें सर्वप्रथम पृथ्वी तत्व में प्रतिबिंबित नजर आता है। इसके बाद शेष अन्य महाभूतों अर्थात् जल, अग्नि, वायु और आकाश के बाद शक्ति तत्व तक। जबकि वास्तव में इस ब्रह्मांड का शिव से शक्ति और फिर क्रमशः अन्य पंच महाभूतों–पृथ्वी, जल, अग्नि, और आकाश–में विस्तार होता है।

शिव में पंच ऊर्जा की पंच शक्तियां हैं : चित्त शक्ति, आनंद शक्ति, इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति एवं क्रिया शक्ति। ये पाँचों शक्तियां संस्कृत वर्णमाला के सोलह अक्षरों या स्वरों में अ, आ आदि में व्यक्त हैं। (जॉन वुडरोफ ने अपनी कृति 'द गारलैंड ऑव लैटर्स' में शाक्त मतानुसार, इनका प्रतिपादन किया है।)

'अ' शिव की इच्छा शक्ति का प्रतीक है, 'आ' आनंद का। चित्त और आनंद अविभाज्य हैं। जहां चित्त है, वहां आनंद है, और जहां आनंद है, वहां चित्त है। चित्त एवं आनंद शक्ति के बाद इच्छा शक्ति वर्णमाला के तृतीय एवं चतुर्थ अक्षरों 'इ' एवं 'ई' द्वारा व्यक्त होती है। इस इच्छा शक्ति के दो रूप हैं, सुप्त अथवा निष्क्रिय एवं जागृत या सक्रिय। ये दोनों क्रमशः 'इ' और 'ई' द्वारा प्रकट होते हैं। जागृत इच्छा शक्ति यद्यपि विक्षुब्ध अथवा सक्रिय होती है तथापि वह शिव की चित्त एवं आनंद शक्ति से ही संबद्ध होती है, पृथक नहीं होती। इस अवस्था में शिव का मन ऊहापोह में रहता है, अर्थात् यह आशंका बलवती रह होती है कि कहीं आगे बढ़ने पर वे अपना स्वभाव, प्रकृति न खो बैठें। यह ऊहापोह ज्ञान शक्ति में होता है और 'उ' तथा 'ऊ' अक्षरों द्वारा व्यक्त होता है। इनमें से 'उ' उन्मेष का प्रतीक है। अर्थात् आरंभ की, प्राकट्य की आसन्नता का। दूसरे शब्दों में ब्रह्मांडीय अस्तित्व अपने प्रारंभ होने की स्थिति में है। शिव द्वारा ब्रह्मांड की सृजनावस्था में भी उनके मन में ऊहापोह, आशंका बनी रहती है। यह 'ऊ' द्वारा व्यक्त होती है–'उनत' अर्थात् शिथिलीकरण। ब्रह्मांड सृजन के लिए आवश्यक विस्तार में कहीं चित्त और आनंद शक्ति में न्यूनता न आ जाए, यह विचार या आशंका शिव को स्थिर या जड़ रखती है।

अंत में वे ब्रह्मांड को अपने स्वरूप से त्यागकर अपनी चित्त एवं आनंद शक्ति में ही रमे रहते हैं। उनकी यह अवस्था 'ऋ', 'ॠ', 'ऌ', 'ॡ' में व्यक्त होती है। इन्हें अमृत बीज कहा जाता है, जिसका तात्पर्य है कि परमशिव अपनी ही चित्त एवं आनंद शक्ति में स्थिर हैं–इस अवस्था में ब्रह्मांड सृजन का कोई विचार ही नहीं है। ये चारों वर्ण, 'अनाश्रित शिव' के सूचक हैं अर्थात् शिव ने अपने स्वभाव, अपनी प्रकृति में ब्रह्मांड के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया है।

शिव की इच्छा शक्ति की विक्षुब्धता चित्त एवं आनंद शक्ति स्वीकार नहीं

करती। उनके लिए ब्रह्मांड तो शिव की ही गरिमा है। यह ऊहापोह क्यों? शिव के लिए तो आगमन-प्रस्थान, आना-जाना-एक समान है। अतः चित्त एवं आनंद शक्ति पुनः ब्रह्मांड का सृजन शुरू करती है। चित्त शक्ति (अ), आनंद शक्ति (आ) का इच्छा शक्ति (इ, ई) से संपर्क 'ए' की रचना करता है। जब चित्त शक्ति (अ), आनंद शक्ति ज्ञान शक्ति (उ, ऊ) से संबंध स्थापित करती है तो 'ओ' की रचना होती है। 'इ, ऐ' 'ओ, औ', परिणाम हैं-चित्त शक्ति एवं आनंद शक्ति के इच्छा शक्ति एवं ज्ञान शक्ति से संपर्क, मिलन का। ये चार वर्ण अर्थात् 'इ, ऐ, ओ, औ' शिव की क्रिया शक्ति के प्रतीक हैं। इनमें 'ई' वर्ण क्रिया शक्ति की 'अस्फुट' अवस्था का द्योतक है, जब क्रिया शक्ति अस्पष्ट है, स्पष्ट नहीं। स्पष्टता की अगली अवस्था 'स्फुट' की है, जिसका प्रतिनिधि वर्ण है 'ऐ'। जब क्रिया शक्ति अधिक 'स्पष्टतर' हो जाती है तो उसका प्रतीक अक्षर 'ओ' होता है। यह तीसरी अवस्था है। चतुर्थ अवस्था है क्रिया शक्ति का 'स्फुटतम' स्वरूप है जिसका प्रतीक 'औ' अक्षर है।

लेकिन ब्रह्मांड की रचना के बावजूद शिव की चित्त एवं आनंद शक्ति में कोई न्यूनता नहीं आती। वे अपने बिंदु में स्थिर रहते हैं। शिव की यह अवस्था अनुस्वार 'ँ' द्वारा व्यक्त होती है। अनुस्वार इस तथ्य का बोधक है कि यद्यपि यह सम्पूर्ण ब्रह्मांड शिव से ही प्रकट है, तथापि वह अपने ही स्वरूप में स्थिर है। ब्रह्मांड का प्रतिबिंब सोहलवें अक्षर ह में प्रकट होता है। इसे विसर्ग के रूप में भी लिखते हैं अर्थात् : इस तरह। विसर्ग के दो बिंदु वे दो दर्पण पात्र हैं, जिनमें ब्रह्मांड का प्रतिबिंब पड़ता है। इन दोनों बिंदुओं को शिव-बिंदु एवं शक्ति बिंदु कहा जाता है। 'अ' वर्ण से 'ह' अर्थात् विसर्ग (:) तक के स्वर शिवतत्व के प्रतीक है और इसके बाद के शक्ति तत्व के। शैव मत ब्रह्मांड को शिव की रचना की बजाए उनका प्रतिबिंब मानता है। पंच शक्तियों यथा चित्त, आनंद, इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति में उनका स्वातंत्र्य ही प्रतिबिंबित होता है। सारे तत्व शिव की इन्हीं पंच शक्तियों का प्रतिबिंब हैं। इनमें क्रमशः पंच महाभूत, पंच तन्मात्राएं, पंच कर्मेन्द्रियां, पंच ज्ञानेन्द्रियां एवं पंच अंतकरण उद्‌भूत होते हैं।

पंच महाभूतों की जनक शक्तियों एवं उनके वर्णों का परिचय :

चित्त शक्ति की प्रभुखता वाला तत्व	आकाश वर्ण 'ण'
आनंद शक्ति का प्रतिबिंब तत्व	वायु वर्ण 'घ'
इच्छा शक्ति का प्रतिबिंब तत्व	अग्नि वर्ण 'ग'
ज्ञान शक्ति का प्रतिबिंब तत्व	जल वर्ण 'ख'
क्रिया शक्ति का प्रतिबिंब तत्व	पृथ्वी वर्ण 'क'

इसी तरह पंच तन्मात्राओं, पंच कर्मेन्द्रियों—पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच अंतकरणों एवं षट् कंचुकों के लिए भी वर्ण नियत हैं। षट् कंचुक पुरुष की अंतस्थ सीमाओं के प्रतिनिधि हैं। शुद्ध विद्या, ईश्वर, सदाशिव और शक्ति शिव की शक्तियों की रचना नहीं उनके स्वभाव के ताप का विस्तार है।

शुद्ध विद्या : अहम्-अहम्। इदम्-इदम्
ईश्वर : इदम्-अहम्।
सदाशिव : अहम्-इदम्
शक्ति : अहम्

मातृका चक्र का उद्देश्य शिव या शक्ति दोनों के मार्गों से कार्य करना है। शिव मार्ग में शिव के सृजनात्मक क्षेत्र में प्रथम चरण की अवस्था के प्रतीक वर्ण अ और उनके विश्राम स्थल तथा मातृका चक्र के अंतिम वर्ण 'ह' को संयुक्त किया जाता है इसमें ह पर अनुस्वार लगाने से शिव का मंत्र 'अहं' बन जाता है। इस तरीके को शिव प्रत्याहार कहा जाता है। शक्ति प्रत्याहार में दो शक्तियाँ अपने एक स्वतंत्र विश्व का निर्माण करना चाहती हैं। शिव पृथक रहते हैं। शक्तियों का यह मिलन क और स व्यंजनों से प्रकट होता है। इससे शक्ति का मंत्र 'क्ष' बनता है।

मातृका चक्र में तीन विसर्गों का भी उल्लेख है। संभव विसर्ग, शाक्त विसर्ग एवं आणव विसर्ग। प्रथम विसर्ग—आनंद शक्ति की स्थिति है और प्रतीक वर्ण है 'अ'। संभव विसर्ग को चित्त प्रलय भी कहा जाता है, अर्थात् विचार शून्यता की स्थिति में।

शाक्त विसर्ग परापर विसर्ग या चित्त संबोध कहा जाता है अर्थात् एकाग्रता की स्थिति।

आणव विसर्ग अपरा विसर्ग या चित्त विश्रांति कहा जाता है, जिसमें चित्त ध्यानावस्था में मग्न होता है।

कश्मीरी शैव मत में व्यक्ति चेतना को परम पिता की चेतना में विलीन करने के लिए उपाय निर्दिष्ट है :

संभवोपाय—जो मातृका चक्र, प्रत्याहार और प्रतिबिंब वाद में कार्य करता है। मालिनीविजयोत्तर तंत्र के अनुसार विचार शून्यता को सतत बनाये रखना संभवोपाय है। इसे इच्छोपाय भी कहा जाता है।

शाक्तोपाय को भेदाभेदोपाय या ज्ञानोपाय भी कहा गया है, यह ज्ञान शक्ति से प्रकट होता है। इसमें साधक न प्राणायाम करता है, न किसी बिंदु पर ध्यान। वह परमात्मा में चित्त एकाग्र करता है।

आणवोपाय में साधक उच्चार (श्वास), करण (संवेदनान्द्रियों), ध्यान तथा स्थान प्रकल्पना पर ध्यान एकाग्र करता है। ये जीव के उपाय कहे गये हैं। आणवोपाय में जागरूकता बनाये रखने के लिए अर्थात् एकाग्रता के लिए अन्य बातों का आश्रय ले सकते हैं। आणवोपाय में चक्रोदय का अभ्यास किया जाता है। साधक गहन श्वास लेते हुए, श्वास लेने और छोड़ने के मध्य के बिंदु पर ध्यान एकाग्र करता है। ध्यान की अवधि में साधक हृदय कमल या 'सोहं' अथवा शिव के किसी मंत्र पर ध्यान लगाता है।

स्थान प्रकल्पना में साधक अपनी श्वास अवधि में देवों, लोकपालों, प्रातः, संध्या, मध्यरात्रि, सूर्य की भ्रमण दिशा आदि को जानने की कोशिश करता है। वह एक श्वास की अवधि में समूचे ब्रह्मांड को देखने के प्रयत्न में जुटता है।

शाक्तोपाय में साधक बिंदु पर चित्त एकाग्र कर उसमें स्थिर हो जाता है। संभवोपाय में साधक को किसी बाह्य आश्रय की आवश्यकता नहीं होती। वह अपने में स्थिर रहता है। ये तीनों उपाय साधक को भावातीत चेतना में ले जाते हैं। इनके अलावा एक और उपाय का उल्लेख है–अनुपाय का जिसमें साधक को कुछ नहीं करना पड़ता। सिर्फ अपने में ही रहने की जरूरत होती है। इनके अलावा पाँच अवस्थाओं की भी चर्चा है। ये हैं– जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत।

शैवमत के महान आचार्य एवं प्रख्यात दार्शनिक अभिनव गुप्त ने इन अवस्थाओं की सुंदर, सरल, बोधगम्य व्याख्या की है। जब वस्तुगतता स्पष्ट होती है तो जागृत अवस्था और जब वह अस्थिर होती है तो स्वप्न। वस्तुगतता का पूर्ण लोप सुषुप्ति। तुरीयावस्था में किसी सर्वोच्च निरीक्षण की भावना होती है, लेकिन जब वस्तुगतता पूर्णतः नष्ट हो जाती है और जीवन की समग्रता मिल जाती है तो वह है तुरीयातीत अवस्था।

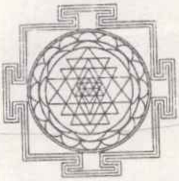

आम्नाय का सिद्धांत

तंत्र में षडाम्नाय अर्थात् छह आम्नायों की चर्चा है। ये आम्नाय शिव के ही छह मुख माने गये हैं। इनमें से प्रत्येक मुख ने तंत्र की जो शिक्षा दी, विधि निर्देशित की, वही आम्नाय कहलायी।

शिव के छह मुख एवं उससे निसृत आम्नाय इस प्रकार हैं–

पूर्व मुख : (पूर्व आम्नाय) 'तंत्र रहस्य' के अनुसार शिव का यह मुख मोतियों–सा दीप्तमान है। नेत्र तीन हैं तथा मस्तक पर चंद्र सुशोभित है। शिव स्वयं कहते हैं–"इस मुख से मैं (अर्थात् शिव) श्री भुवनेश्वरी, त्रिपुरा, ललिता, पद्मा, सुलिनी, सरस्वती, त्वरिता, नित्या, वज प्रस्तरणी, अन्नपूर्णा, लक्ष्मी, वाग्वादिनी की उपासना एवं मंत्रों को उद्घाटित करता हूँ।"

दक्षिण मुख्य : (दक्षिण आम्नाय) यह मुख पीताभा एवं त्रिनेत्र से युक्त है। शिव कहते हैं–"इस मुख से मैं (शिव) प्रसाद सदाशिव, महाप्रसाद मंत्र, दक्षिणामूर्ति, वाटुका, मंजुघोष, भैरव, मृत संजीवनी विद्या एवं मृत्यंजय की उपासना विधि एवं मंत्रों को उद्घाटित करता हूँ।"

पश्चिम मुख : (पश्चिम आम्नाय) "इस सद्यजात मेघवर्णी मुख से मैं (शिव) गोपाल, कृष्ण, नारायण, वासुदेव, नृसिंह, वामन, वाराह, रामचन्द्र, विष्णु, हरिहर, गणेश, अग्नि, यम, सूर्य, विधु (चंद्र) एवं अन्य ग्रहों, गरुड़ दिक्पालों, हनुमान एवं अन्य सुरों की उपासना–विधि एवं मंत्रों का उद्घाटन करता हूँ।"

उत्तर मुख : (उत्तर आम्नाय) "इस नीलवर्णी त्रिनेत्र युक्त मुख से मैं (शिव) देवियों दक्षिणाकाली, महाकाली, गुह्यकाली, श्मशान कालिका, भद्रकाली, एकजटा, उग्रतारा, तारित्णी, कात्यायनी, छिन्नमस्ता, नील सरस्वती, दुर्गा, जय दुर्गा, नव दुर्गा, वासुली, धूमावती, विशालाक्षी, गौरी, बगलामुखी, प्रत्यांगिरा, मातंगी, महिषमर्दिनी की उपासना-विधि एवं मंत्रों को उद्घाटित करता हूँ।"

ऊर्ध्व मुख : (ऊर्ध्व आम्नाय) "अपने इस श्वेतवर्णी मुख से मैं (शिव) श्रीमत् त्रिपुर सुन्दरी, त्रिपुरी, भैरवी, त्रिपुर भैरवी, श्मशान भैरवी, भुवनेश्वरी भैरवी, सत्कुट

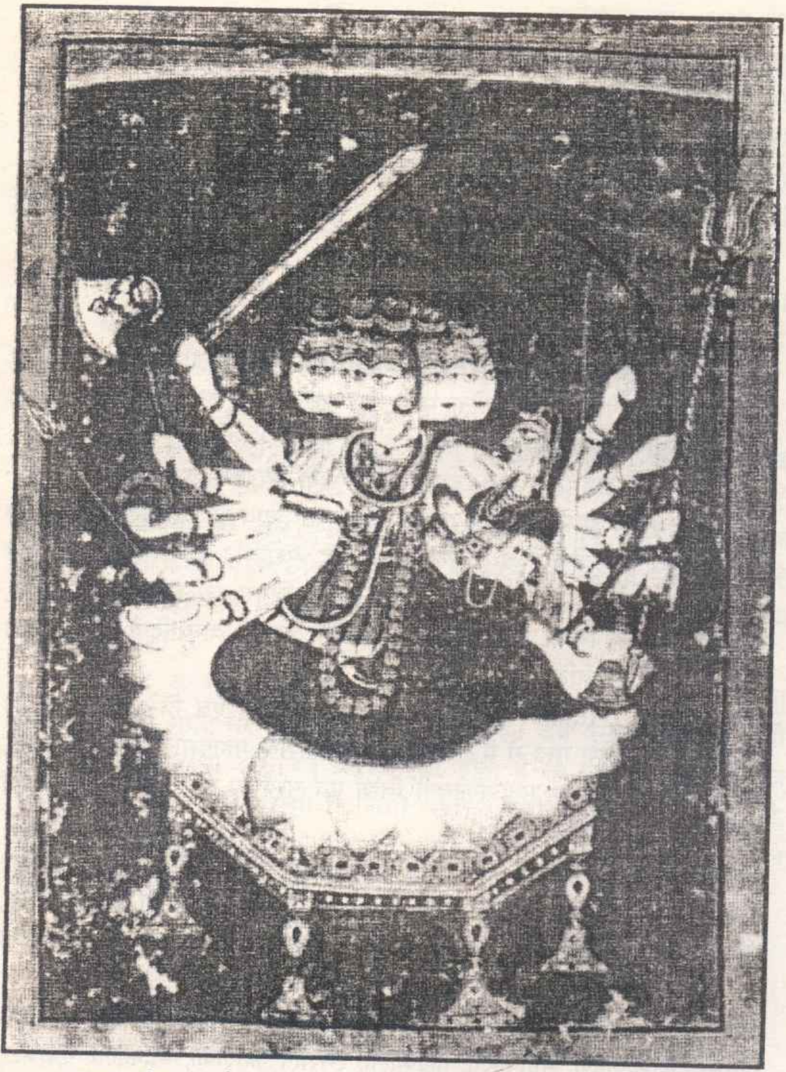

भगवान शिव-पार्वती के साथ (पेंटिंग, 17वीं शताब्दी, वसोही शैली)

भैरवी, अन्नपूर्णा भैरवी, पंचमी, षोडशी, मालिनी, वाल्वला की उपासना-विधियों एवं मंत्रों का उद्घाटन करता हूँ।"

अधोमुख : (अधोमाम्नाय या ईशानाम्नाय) यह मुख विविधवर्णी आभा से युक्त, गोपनीय है। "इसमें मैं (शिव) देवस्थानों, आसन, यंत्र, माला, नैवेद्य, बलिदान,

साधना, पुरश्चरण, मंत्र सिद्धि उद्घाटित करता हूँ।"

समयाचार तंत्र के अनुसार इनमें से प्रथम चार आम्नाय चतुर्वर्गों या चार पुरुषार्थों यथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिए हैं, जबकि ऊर्ध्व आम्नाय एवं ईशानाम्नाय पूर्ण मुक्ति प्रदाता हैं। निरुत्तर तंत्र के अनुसार प्रथम दो आम्नाय अर्थात् पूर्व एवं दक्षिण आम्नाय पशु साधक के लिए, पश्चिमाम्नाय पशु एवं वीर साधक, उत्तर आम्नाय वीर एवं दिव्य साधक के लिए हैं। उर्ध्व आम्नाय दिव्य साधक के लिए है। वह श्मशान में वीर भाव से साधनारत होता है। सम्मोहन तंत्र में चीनागम (शाक्त तंत्र का एक रूप,) पाशुपत (शिव), पंचरात्र (वैष्णव), कापालिक, भैरव, अघोर, जैन एवं बौद्ध सहित 22 आगमों का उल्लेख है। काल पर्याय के अनुसार 64 शाक्त, 32 शैव, 75 वैष्णव, 30 गाणपत्य तंत्र हैं। इनके साथ उपतंत्र यामल, डामर, कल्प, चूड़ामणि, उपवेद आदि भी हैं। विषय अथवा इष्ट के आधार पर तंत्र को कादि, हादि, कहादि में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विभाग में पृथक-पृथक मंत्रों, यंत्रों एवं साधना पद्धतियों को निर्धारित किया गया है। कादि तंत्र में महाशक्ति-महाकाली की उपासना-विधि का वर्णन है। आदितंत्र श्रीविधा को समर्पित है। कहादि में तारा रहस्य का प्रतिपादन है।

आचार भेद : कुलार्णव एवं ज्ञान दीप तंत्र के अनुसार आचार भेद के आधार पर तांत्रिकों को सात प्रकार के आचारों में विभक्त किया गया है। ये हैं, वेदाचार वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार, वामाचार, सिद्धांताचार एवं कौलाचार। कुलार्णव तंत्र इनमें कौलाचार को सबसे उत्तम मानता है। सबसे निम्न माने जाने वाले वेदाचार में साधक के लिए ब्राह्म मुहुर्त्त में उठकर गुरु नाम का स्मरण कर एवं नामांत में आनंद नाथ बोलकर उन्हें प्रणाम करने तथा बाद में सहस्रदल पद्म (अर्थात् सहस्रार) में ध्यान कर गंध, अक्षत, पुष्प, दीप से पूजा और वाग्भव बीज का जप करते हुए परम कला शक्ति पर चित्त एकाग्र करने का विधान है। वह वेदों का अनुगामी होता है।

वैष्णवाचार, शैवाचार, दक्षिणाचार में भी वेदाचार की भाँति पूजा का विधान है। वैष्णवाचार में हिंसा, निंदा, कुटिलता मांस-भक्षण एवं मैथुन की चर्चा तक का निषेध है। शैवाचार में शिव के ध्यान सहित पशुबलि का भी विधान है। वैष्णवाचार में विष्णु आराध्य हैं। दक्षिणाचार में आद्याशक्ति की पूजा की जाती है। भांग पीकर ईश्वर के ध्यान एवं जप का विधान है। वामाचार में पंच मकार, ख पुष्प अर्थात् रजस्वला स्त्री के रज और कुल स्त्री की पूजा एवं स्वयं वामा अर्थात् स्त्री भाव रखकर परा शक्ति की पूजा का नियम है। यह वीर एवं दिव्य साधकों के लिए है। सिद्धांताचार में सर्वदा देवपूजा करने, दिन में विष्णु परायण हो रात्रि में भक्तिभाव से मद्यपान एवं मद्यदान को सभी फलों की प्राप्ति का

साधन बताया गया है।

कौलाचार में साधक अपने-पराये, शुभ-अशुभ आदि के सारे भेद मिटाकर सर्वत्र स्वयं को ही देखता है। कहा गया है कि जो न दिशा का, न काल का, न किसी तिथि का, न महामंत्र साधन का भेद मानता है, न कभी शिष्ट, भद्र और भूत-पिशाच की भाँति रहता है जो कर्दम और चंदन में, मित्र और शत्रु में, श्मशान और गृह में, स्वर्ण और तृण में कभी कोई भेद नहीं करता, वह कौल साधक होता है। भाव चूड़ामणि के अनुसार, 'पंक अर्थात् कीचड़ एवं चंदन, पुत्र एवं शत्रु, श्मशान एवं देवगृह तथा कंचन एवं कंकड़ में जो समान भाव रखता है, वह कौल है।' इस आचार का ज्ञान साधक को शिव बना देता है। स्पष्ट है कि यह एक अत्यन्त कठोर साधना है। परमहंस की स्थिति भी कुछ ऐसी ही होती है। इसलिए उसे श्रेष्ठ आचार माना गया है।

वेदाचार क्रिया मार्ग है, जबकि वैष्णवाचार-भक्तिमार्ग। सर जॉन वुडरोफ ने शैवाचार को क्षत्रिय स्वरूप माना है, जिसमें शक्ति अर्जन के साथ-साथ प्रेम और दया का भी पुट होता है। यह आचार ज्ञानमार्गी कहा गया है। दक्षिणाचार में साधक ब्रह्म की तीन शक्तियों–इच्छा, क्रिया एवं ज्ञान का ध्यान एवं धारणा करता है। पुनर्भिषिक के बाद साधक दक्षिण कालिका के रूप में आद्या शक्ति को पूजता है। यह आस्था, समर्पण एवं संकल्प का साधना–चरण है। इस चरण तक साधक प्रवृत्ति मार्ग का अनुसरण करता है। इसके बाद वह निवृत्ति मार्ग अपनाता है। यह वामाचार है, जिसमें साधक वामादेवी की पूजा करता हुआ गुरु की सहायता से सारी प्रवृत्तियों को नष्ट करता है। बिना गुरु के वामाचार साधक के लिए घातक हो सकता है। दक्षिणाचार तक साधक (पशु) पाशबद्ध होता है। वामाचार निवृत्तिमार्गी है और वह साधक को सांसारिक बंधनों से मुक्ति दिलाता है। सात्विकता का भाव इसमें पनपता है तथा सिद्धांताचार एवं कौलाचार उसे 'अवधूत' बना देते हैं, अवधूत अर्थात् वह साधक जिसने सारी वस्तुएँ बहा दी है, संसार त्याग दिया है। वह श्मशान में विचरण करता हुआ वहीं समाधि लगा निर्विकल्प प्राप्त कर सकता है। इसके हृदय में महाशक्ति विराजती हैं तथा वह परमहंस पद प्राप्त कर लेता है।

शाक्तमत और शक्ति

शाक्त संप्रदाय के अनुसार, समूची सृष्टि, प्रकृति आद्याशक्ति का ही प्रस्फुटन है। वह उसे सच्चिदानंदा-ब्रह्म स्वरूपा मानता है। उसकी पूजा वस्तुतः परमेश्वर की ही पूजा है। वह स्वयं परमेश्वर है। एक शाक्त साधक के लिए सृष्टि की प्रत्येक वस्तु पूजा-उपासना के योग्य है, क्योंकि उसमें शक्ति का ही वास है। सर जॉन वुडरोफ के अनुसार शाक्त तंत्र अद्वैतवाद का साधना शास्त्र है। कैवल्य पद या निर्वाण मुक्ति प्राप्त करने के साधन शाक्त तंत्र में अद्वैतवाद पर जोर दिया गया है। गंधर्व तंत्र का निर्देश है, साधक को, गुरु को प्रणाम एवं 'सोहम्' का विचार कर जीव एवं ब्रह्म की एकता पर ध्यान एकाग्र करना चाहिए।

पूजा उपासना का क्रमबद्ध विधान क्यों?

प्राण प्रतिष्ठा–साधक सर्वत्र आद्याशक्ति को ही व्याप्त कैसे देखे? इसके लिए पूजा-उपासना का एक क्रमबद्ध विधान है, जो कमोबेश हिंदू घरों की सभी उपासनाओं का अंग है। अन्य धर्मों में भी किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है।

एक हिंदू प्रतिमा या विग्रह में देवता-या देवी विशेष अथवा अपने इष्ट का वास मानता है। 'प्राण-प्रतिष्ठा' के माध्यम से साधक अपने इष्ट के सानिध्य का अनुभव करता है। यों तो परमेश्वर सर्वत्र है, फिर मूर्ति या विग्रह या चित्र क्यों? इसलिए कि सामान्य मनुष्य को एक आलम्बन चाहिए। प्रतिमा एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालती है। यद्यपि परमेश्वर को एक ही माना गया है तथा विभिन्न देवी-देवताओं को उसी की शक्तियों का एक रूप भी। यह इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार उस देवी या देवता को अपना इष्ट बना ले, जिसमें उसका मन अधिक रमता है। एक हिंदू राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा

यहां तक कि ईसा को मानकर भी किसी एक की पूजा में ही स्वयं को ज्यादा निरापद, ज्यादा आनंदित पाता है। इसलिए हिंदू घरों में तमाम देवी-देवताओं की पूजा के साथ-साथ किसी एक विग्रह या देवी-देवता को प्रमुख माना जाता है। कोई शिव भक्त है तो कोई राम, कोई कृष्ण तो कोई देवी का उपासक। कोई पवनपुत्र हनुमान की ही शरण में स्वयं को सुरक्षित पाता है। ऐसा क्यों होता है? इसके कई कारण हो सकते हैं। सर्वप्रथम, परिवार के संस्कार, घर में बच्चा जिस इष्ट की पूजा को देखता आता है, अक्सर वह बड़ा होकर स्वयं भी उसे अपना लेता है।

हिंदू जन्मकुंडलियों में बच्चे के जन्म का नक्षत्र, अर्थात् जन्म के समय जिस नक्षत्र में चन्द्रमा होगा, वह महत्वपूर्ण माना जाता है। 27 नक्षत्रों में से प्रत्येक के एक देवता एवं स्वामी ग्रह होते हैं। नक्षत्रों एवं ग्रहों के मानव जीवन पर प्रभाव को स्वीकार करने वाले लोग मानते हैं कि एक ही परिवार में भिन्न-भिन्न नक्षत्रों में जन्मे बच्चों का स्वभाव, चरित्र, कैरियर, भविष्य भी भिन्न-भिन्न होता है। इसीलिए पुराने जानकार लोग नामकरण करते समय बच्चे का नाम रखते समय नक्षत्रों द्वारा संकेतित देवता के आधार पर नाम रखने का प्रयास करते थे। राशि नाम तो नक्षत्रों के चरणों के लिए नियत अक्षरों के आधार पर होता ही था। अतः प्राण-प्रतिष्ठा साधक के मन को परिपक्व और उपासना-साधना के अनुकूल बनाने के लिए होती है, दरअसल वह मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा कम, साधक की अपनी 'प्राण-प्रतिष्ठा' अधिक होती है। मूर्ति तो एक माध्यम है।

सोलह उपचार

मन को प्रशिक्षित करने के लिए ही पूजा का इतना विस्तृत विधान किया गया है। पूजा के मुख्यतः सोलह उपचार हैं। ये हैं : 1. आसन, 2. स्वागत (इष्ट का) 3. पाद्य (चरण धोने के लिए जल), 4. अर्घ्य, 5. अर्घ्य पात्र, 6. आचमन, 7. मधुपर्क (शहद, घी, दूध, दही), 8. स्नान, 9. वसन, 10. आभरण (आभूषण), 11. गंध, 12. पुष्प, 13. धूप, 14. दीप, 15. नैवेद्य, 16. प्रार्थना।

विष्णु पूजा में तुलसी, शिव पूजा में विल्व तथा देवी पूजा में जवा पुष्प चढ़ाने का विधान है। तंत्र साधना में मंत्र-पूजा का नियम है लेकिन वह साधक के लिए स्तर-विशेष पर पहुँचने के बाद। यंत्र की भी देव-विग्रह की तरह पूजा की जाती है। यंत्र-पूजा में साधक सर्वप्रथम देवता का ध्यान एवं उनका आह्वान करता है। देवता के आह्वान के पश्चात् यंत्र में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है।

मुद्रा

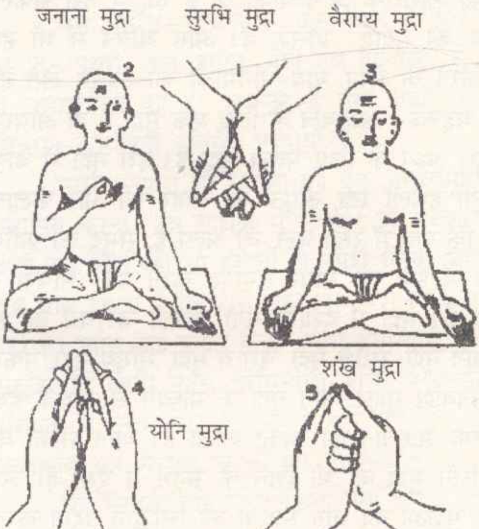
जनाना मुद्रा
सुरभि मुद्रा
वैराग्य मुद्रा
2
1
3
4
योनि मुद्रा
शंख मुद्रा
5
6
पंकज मुद्रा
7
लिंग मुद्रा
8
निर्वाण मुद्रा

तंत्र पूजा में शरीर एवं मन दोनों सक्रिय होते हैं, शरीर मन का अनुसरण करता है। तंत्र पूजा में मुद्राओं का भी अतिशय महत्त्व है। मुद्रा अँगुलियों, हाथ, शरीर की गति अथवा भंगिमा द्वारा भाव व्यक्त करने का एक माध्यम है। विभिन्न संदर्भों में मुद्रा के अर्थ भी भिन्न हो जाते हैं। योग में मुद्रा में आसन का समावेश है। पंच तत्व से की जाने वाली गोपनीय तंत्र-पूजा में मुद्रा का अर्थ पका अन्न होता है।

मुद्रा 'मुद' से बना है, जिसका अर्थ है 'प्रसन्न करना', 'प्रसन्न होना'। तंत्रशास्त्र में मुद्रा साधक के व्यक्तित्व के स्तर का प्रतीक होती है। आसनों को सिद्ध करने के बाद ही 'मुद्रा' बनानी चाहिए। वह 'प्राण' एवं 'अपान' वायु को स्थिर करने वाली भी मानी गयी है। कहा गया है कि मुद्राओं के अभ्यास से साधक शरीर क्षय एवं मृत्यु को रोक सकता है। मुद्राएं उसके चित्त को स्थिर रखती हैं। शाक्त साधक किसी प्रतीक आधार अर्थात् पात्र में देवी के आह्वान के लिए पात्र के ऊपर यंत्र मंडल के साथ पूजा विषयक मुद्राएं अंकित करते हैं।

मुद्राओं के 108 प्रकार बताये गये हैं, जिनमें 55 विशेष प्रचलित हैं। घेरंड-संहिता में 25, हठयोग प्रदीपिका में 10 मुद्राओं का उल्लेख मिलता है।

शिव-संहिता में महा मुद्रा, महाबंध, महाभेद, खेचरी, जलंधर, मूल बंध, विपरीतकरण, उड्डीयान, वज्रौली एवं शक्ति चालन मुद्राओं का बर्णन है। मुद्राएँ उपासना में व्यक्ति के आंतरिक संकल्प की बाह्य शारीरिक अभिव्यक्ति तो हैं ही, वे उस संकल्प को पुष्ट भी करती हैं। नृत्य की मुद्राएँ प्रसिद्ध हैं। आम जीवन में भी हम अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए भाव-भंगिमाओं का आश्रय लेते हैं।

विभिन्न मुद्राओं का महत्त्व– आह्वान के लिए एक मुद्रा है तो आवरण दर्शानि के लिए अवगुंठन मुद्रा। अर्ध्य के लिए मत्स्य मुद्रा है। इस मुद्रा में बायीं हथेली के पृष्ठ भाग पर दायीं हथेली रख, अँगूठों को बाहर की ओर फैलाया जाता है। इसका भाव यह है कि पात्र में रखा जल, जो अल्प है, समुद्र का प्रतीक है और साधक वस्तुतः अंतर में इष्ट को सागर समर्पित करने की भावना सें इस जल को अर्पित कर रहा है। मुद्रा में दर्शायी गयी मछली जलचरों का ही प्रतीक है। मुख्य मुद्राएँ हैं- ज्ञान मुद्रा, सुरभि मुद्रा, वैराग्य मुद्रा, सांख्य मुद्रा, पंकज मुद्रा, लिंग मुद्रा, योनि मुद्रा, निर्वाण मुद्रा। योनि मुद्रा के माध्यम से साधक देवी को विराजने के अपने आंतरिक आह्वान को व्यक्त करता है। योनि शक्ति का पीठ या यंत्र मानी गई है। लिंग मुद्रा का भी शिव के संदर्भ में ऐसा ही अर्थ है। घेरंड संहिता के अनुसार, मुद्राओं का ज्ञान साधक को सिद्धियां प्रदान करता है। उनमें से रोग निवारण होता है तथा शरीर में स्थिरता और दृढ़ता आती है। बौद्ध तंत्र में मुद्राओं का समावेश है।

देवता की उपासना के लिए भी विभिन्न मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। जैसे आवाहन के लिए दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियों के मूल में अंगूठा मिलाकार अंजलि को दो बार ऊंचा करने का विधान है। इसे आवाहनी मुद्रा कहा जाता है।

आवाहन के बाद स्थापना के लिए आवाहनी मुद्रा की अंजलि को उलटा कर दिया जाता है, इसे स्थापनी मुद्रा नाम दिया गया है।

सन्निधापन के लिए दोनों की हाथों की मुट्ठियों को मिलाकर अंगूठा सीधा रखा जाता है। यह सन्निधापनी मुद्रा कहलाती है। मुट्ठियों में अंगूठा दबा कर सन्निरोधनी बनायी जाती है। सम्मुख लाने का भाव लाने के लिए दोनों मुट्ठियां ऊंची की जाती हैं। इसे सम्मुखीकरण मुद्रा नाम दिया गया है।

अवगुंठनी मुद्रा का नृत्यों में भी उपयोग किया जाता है। इस मुद्रा में बाएं हाथ की तर्जनी को उल्टी एवं दायं हाथ की तर्जनी को सीधी रखकर अधोमुख रीति से कराया जाता है।

एक धेनु मुद्रा भी है। इसमें दोनों हथेलियों को सटाकर दायीं अनामिका

को बायीं कनिष्ठा से तथा बायीं अनामिका को दायीं कनिष्ठा से, दायीं मध्यमा को बायीं तर्जनी से तथा बायीं मध्यमा को दायीं तर्जनी से उल्टा-पुल्टा किया जाता है।

भूत सिद्धि–साधना का एक चरण है–भूत सिद्धि अर्थात् जिन पंच तत्वों, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश, से शरीर बना है, उनकी शुद्धि। ये आद्याशक्ति का ही प्रस्फुटन है तथा चक्रों में उनका ही वास है। (अधिक विवरण-कुंडलिनी संबंधी अध्यायों में)

न्यास–न्यास भी साधना का एक महत्त्वपूवर्ण अंग है। न्यास का अर्थ है, स्थापित करना। तंत्र साधना में मंत्राक्षर के उच्चारण के साथ शरीर के विभिन्न अंगों का अँगुलियों या हथेली से स्पर्श किया जाता है। ऐसा करते हुए साधक यह भाव रखता है कि शरीर के उस स्पर्श किये गये अंग में दिव्य शक्ति विराज रही है। न्यास कई प्रकार के हैं–यथा, अंगन्यास, हृदयन्यास, महान्यास, जीवन्यास, मातृका या लिपि न्यास, ऋषिन्यास, शरीर पर षडागम न्यास, पीठ न्यास आदि। मुख्यत: ये न्यास चार विभागों में बांटे गये हैं- अंतर, बाह्य, सृष्टि एवं संहार। कुलार्णव तंत्र में छह न्यासों का उल्लेख है।

यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है कि मातृका रूपी ब्रह्म की देह वर्णों से निर्मित है, यथा

अ वर्ग के स्वरों से मुख अर्थात्
अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ,
क वर्ग अर्थात् क, ख, ग, घ से हाथ
च वर्ग अर्थात् च, छ, ज, झ से पैर
ट वर्ग अर्थात् ट ठ ढ घ से कटि प्रदेश-मध्य भाग
त वर्ग अर्थात् त थ द ध से अस्थि, सज्जा सप्त धातुएं
य वर्ग अर्थात् प फ भ ब से हृदय
प वर्ग अर्थात् य र ल व ष स ह से परमात्मा

साधक न्यास विधि द्वारा उन्हीं देव रूपी वर्गों को अपने शरीर में स्थापित करता है।

भूत शुद्धि अर्थात् तन-मन को निर्मल करने के बाद साधक जीव न्यास द्वारा अपनी देह में देवी को जीवंत करता है। 'सोहम्' के उच्चारण द्वारा स्वयं को शिव-शक्ति से तदाकार करने के बाद वह शरीर के विभिन्न अंगों का अँगुलियों में स्पर्श करता है। माना गया है कि देवता का मंत्र-शरीर मातृका या अक्षरों से निर्मित है। साधक सर्वप्रथम अंतरमातृका न्यास के माध्यम से मानसिक तौर पर

षट्चकों के विभिन्न स्थलों पर मातृका या अक्षर प्रतिष्ठित करता है। बाद में वह बाह्य मातृका न्यास द्वारा इसे पुनः दोहराता है। इस तरह वह अपनी देह में देवता को प्रतिष्ठित अनुभव करता है।

मातृका न्यास के भी कई प्रकार वर्णित हैं। अपने लिए नियत विभिन्न न्यासों के बाद साधक व्यापक न्यास करता है। न्यास विशेष जहां अभीष्ट देवता की अंग विशेष में प्रतिष्ठा करता है, वहीं व्यापक न्यास के द्वारा साधक देवता को अपनी संपूर्ण देह में विस्तारित कर देता है। न्यास का शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। न्यास, नाड़ी केंद्रों को उत्तेजित या सक्रिय तथा आवश्यकतानुसार देह में शक्ति का वितरण या संचार करते हैं। यथार्थ तो यह है कि न्यास, आसन, मुद्राएं, भूतसिद्धि आदि साधन उपासना के विभिन्न अंगों का उद्देश्य मात्र चित्त-शुद्धि है। विचारों में परिवर्तन से शरीर का रूपांतरण होता है, और विचार चित्त का (जो सबका मूल है) ही प्रक्षेपण होता है।

मंत्र–साधना में मंत्र का महत्त्व सर्वविदित है। उन्हें अविद्या और दुःख के पाशों में मुक्ति दिलाने वाला, सच्चा ज्ञान प्रदान करने वाला एक आध्यात्मिक प्रकाश भी कहा गया है। वे शिव-शक्ति की एकाकार स्थिति के प्रतीक हैं। वे शब्द ब्रह्म का प्रस्फुटन हैं तथा यह शब्द-ब्रह्म जिन देवी-देवताओं या शक्तियों के माध्यम से प्रकट होता है, वे उनके प्रतिनिधि होते हैं। गुरु द्वारा शिष्य साधक को दीक्षा के समय दिया गया मंत्र, बीज–मंत्र कहा जाता है। यह इसलिए कि गुरु शिष्य के हृदय में उसका रोपण करता है।

गुरु शिष्य के चक्रों की स्थिति का आकलन करने के बाद ही उसे बीज मंत्र प्रदान करता है। इसके लिए मंत्रों के चार भेद बताये गये हैं–सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध एवं अरि। उनका उद्देश्य साधक के चित्त की शुद्धि ही है ताकि मंत्र-जप सफल हो, मंत्र की शक्ति को वाचिका शक्ति कहा गया है, वह शक्ति, जिसके माध्यम से लक्ष्य प्राप्त किया जाता है। मंत्र इसी शक्ति से जीवंत रहता है। साधना द्वारा मंत्र की सगुण शक्ति जागृत की जाती है, जो वह द्वार खोलती है-जिससे आद्य शक्ति या परम लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है। गायत्री मंत्र में सगुण रूप में आद्या शक्ति या जगदम्बा अधिष्ठात्री देवी होती हैं। निर्गुण रूप में वह वाच्य शक्ति होती है। वस्तुतः उनमें कोई भेद नहीं, दोनों एक ही हैं तथापि साधना में साधक को पहले सूक्ष्म एवं उसके उपरांत सूक्ष्म से एकाकार होने के लिए निर्देश दिया जाता है। मंत्र जाप के भी तीन रूप हैं वाचिका जप, उपांशु जप एवं मानस जप, जो उच्चतम श्रेणी का है। इसमें साधक मंत्राक्षरों पर ध्यान केंद्रित करता है।

मानस की भूमिका—तंत्र शास्त्र में 'मानस' का अत्यंत महत्त्व है। उसे द्वारपाल कहा गया है। मानस के लिए एक और संबोधन है—संकल्प विकलात्मक—वह इंद्रियों द्वारा प्रस्तुत कुछ अनुभूतियों को चुनता है तो कुछ को अस्वीकृत करता है। चुनी हुई अनुभूति मानस बुद्धि को अग्रेषित करता है, जो एक वृत्ति का निर्माण करती है। इसलिए साधना में रत साधक अपने इष्ट की उपासना करता है तो उसका मानस देवता के रूप में एक वृत्ति में बदल जाता है। निरंतर उपासना एवं मंत्र जप द्वारा मानस सहज ही शुद्ध हो जाता है।

ध्यान—कुलार्णव तंत्र में एक सागर्भित संकेत है और वह यह कि व्यक्ति जिन कारणों से पतित होता है, उन्हीं कारणों से वह अपना उत्थान करे। भूलुंठित होने पर आपको स्वयं उठना, खड़ा होना चाहिए। मानस नामरूपों (विषयों) से भ्रमित होता है। अत: नामरूपों से मुक्ति के लिए उनका अर्थात् नामरूपों का ही आश्रय लिया जा सकता है। इसीलिए शुद्धभाव की उत्पत्ति के लिए एक विशेष नामरूप ध्यान के लिए दिया जाता है। यही स्थूल धारणा है। इसमें बाह्य उपकरण यथा विग्रह, चित्र, घट, मंडल, यंत्रादि सहायक होते हैं। स्थूल ध्यान के बाद साधक सूक्ष्म ध्यान के योग्य बन जाता है।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि इतने सारे उपक्रमों का लाभ क्या? प्रतिमा या चित्र तो सजीव हो नहीं सकता। प्रश्न गलत भी नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि व्यक्ति अपने इष्ट का ध्यान कर, उसके गुणों या विशेषताओं को अपने में उतार सकता है। इसके लिए जरूरी है कि उसे अपने इष्ट का संपूर्ण स्वरूप हृदयंगम हो। ध्यान के वक्त वह उसी का स्मरण करे। इसी तरह मंत्र का वास्तविक अर्थ जाने बिना उसके जप का कोई लाभ नहीं होता। अर्थहीन समझे जाने वाले बीजाक्षरों के वास्तविक अर्थ का ज्ञान कोई सिद्ध गुरु ही प्रदान कर सकता है। सामान्य गुरु को तो शायद स्वयं भी उस मंत्र के वास्तविक अर्थ का ज्ञान न हो। महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था कि अर्थहीन स्त्रोत पाठ, प्रार्थना नहीं होता। उनका आशय यही था कि स्त्रोत के अर्थ को समझना, आत्मसात करना निहायत आवश्यक है।

दस देवियां : दस महाविद्याएं

तंत्र साधना में कुमारी पूजा का विशेष महत्त्व है। कहा गया है कि पुरुष तांत्रिक के स्वयं को स्त्री समझने का भाव पुष्ट करने से वह पराशक्ति के बहुत निकट पहुँच जाता है। वह एक षोडशी की उसके प्रति रंचमात्र भी काम भाव रखे बिना आदिशक्ति के रूप में पूजा करता है। शक्ति के अनेक रूप हैं। दुर्गा भी शक्ति का ही एक रूप है। वे अपने भक्तों को संकटों से उबारती हैं। उन्हें महिषासुरमर्दिनी भी कहा जाता है। रावण के वध में दुर्गा ने ही राम की सहायता की थी। दुर्गा महाविद्या (सर्वोच्च ज्ञान), महामाया, महामेधा, महास्मृति, महादेवी, महामोहा भी कही जाती हैं। ब्रह्मांड एवं मानव-प्रकृति के समस्त रहस्य दुर्गा की रहस्यमयी शक्ति के ही प्रस्फुटन हैं। वे पंच महाभूतों में, मानव इंद्रियों में व्याप्त हैं। इसीलिए उन्हें व्याप्तिदेवी भी कहा जाता है। दुर्गा असत्य पर सत्य की विजय का प्रतीक हैं। वे जगन्माता है। उन्होंने समूचे ब्रह्मांड को अपनी रहस्यमय शक्ति में पाशबद्ध कर रखा है। वे सर्वोच्च ज्ञान एवं पदार्थ, दैवी एवं आसुरी शक्ति की स्रोत भी हैं। दैवी एवं आसुरी शक्तियों के मध्य सदैव संघर्ष होता रहता है। लेकिन अंततः दुर्गा की कृपा से आसुरी शक्तियों का विनाश होता ही है।

दस देवियां अर्थात् महाविद्याएं

शाक्त तांत्रिक जिन दस देवियों की उपासना-आराधना करते हैं, वे दस महाविद्याएं कहलाती हैं। चामुंडा तंत्र में उनका परिचय देते हुए कहा गया है–

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी।
भैरवी छिन्नमस्ताव च तथा धूम्रावती स्मृता॥

बगला सिद्धविद्या च मातंगी कमलात्मिका।
एवा दशमहाविद्याः सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः॥

काली : महाशून्य की द्योतक

काली को ब्रह्मांडीय माया का सर्जक कहा गया है ताकि लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकें। उनका काला रंग उस महाशून्य का द्योतक है, जिसमें वे विचरती हैं। वस्तुतः काली निराकार है, तथापि भक्तों के लिए ही वे ऐसा रूप धरती हैं। उनके हाथ की तलवार ज्ञान का प्रतीक है, जो भक्त के अज्ञान का नाश करती है। मुंडमाला संस्कृत के पचास अक्षरों की प्रतीक है। हाथ में कटा नरमुंड इस बात का द्योतक है कि भक्त ने अपने समस्त अहं को उन्हें समर्पित कर दिया है। अभय मुद्रा भक्त को आश्वस्त करती है। श्वेत दंत पंक्ति के बाहर निकली जीभ का तात्पर्य है कि भक्त अपनी राजसिक वृत्तियों को नियंत्रण में रखें। वे अपने भक्त को कर्म बंधन से मुक्त करती हैं।

काली को दस महाविद्या में प्रथम महाविद्या माना गया है। मार्कंडेय पुराण के अनुसार, चंड नामक असुर का वध करते हुए जब क्रोध के कारण देवी का मुख कृष्णवर्ण हो गया तो उनके ललाट से कराल वदना, असि, पाश आदि अस्त्र लिए कालिका देवी का अवतरण हुआ। कालिका पुराण में काली के रूप का वर्णन इस भांति है: नील कमल की भांति श्याम वर्ण। चतुर्भुजा-चार हाथ। दोनों दाएं हाथों में खड्ग और चंद्रहास(तलवार), दोनों बाएं हाथों में ढाल तथा पाश। गले में मुंडमाला। अधोवस्त्र के रूप में बाघ-चर्म। कृश शरीर। दीर्घ दंत पंक्ति के मध्य लपलपाती जीभ। नेत्र रक्तिम वर्ण। वाहन कबंध। उनकी आठ योगनियाँ हैं त्रिपुरा, भीषणा, चंडी, कर्जी, हंडी, विधातृका, कराला और सूलिनी,

चंडी पुराण, देवी भागवत के पंचम स्कंध में भी काली का वर्णन प्राप्त होता है। चंडी पुराण में उनका उल्लेख दो स्थानों पर मिलता है, प्रथम तब, जब महिषासुर वध के पश्चात शुभ-निशुंभ से पीड़ित देवगण देवी का स्तवन कर रहे थे तो जाह्नवी-स्नान के लिए जाते वक्त देवी ने उन्हें देखा और उनका मंतव्य पूछा लेकिन देवताओं के उत्तर देने के पूर्व ही उनके शरीर से शिव-अम्बिका का प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने उन्हें बताया कि दैत्यपति शुंभ से तिरस्कृत तथा उसके भाई निशुंभ से पराजित होकर देवता हमारा स्तवन कर रहे हैं। देवी के शरीर कोष से अम्बिका के प्रादुर्भाव के कारण उनका नाम कौषिकी पड़ा और

वे हिमालय पर वास करने लगीं। कौषिकी की उत्पत्ति के बाद देवी ने गौरवर्ण त्याग कृष्णवर्ण धारण कर लिया और वे कालिका नाम से हिमालय पर वास करने लगीं। दूसरा प्रसंग धूम्रलोचन के वध के बाद का है। कौषिकी के हुंकार मात्र से धूम्रलोचन के वध के बाद शुंभ ने चंड-मुंड को उन्हें पकड़ लाने के लिए भेजा। अभिमानी चंड-मुंड जब देवी के पास पहुंचे तो वे हंस पड़ी, जब दोनों उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़े तो क्रोध से देवी का मुख काला पड़ गया और उनकी भृकुटी और ललाट से एक देवी निकलकर चंड-मुंड पर टूट पड़ी। वह काली कहलायी।

तंत्रसार में काली की मूर्ति के ध्यान का चित्रमय वर्णन है। तंत्र साधना में काली का सर्वोच्च महत्त्व है। उनकी उपासना, उन्हें प्रसन्न करना बेहद दुष्कर कार्य है। पूजा में रंचमात्र की त्रुटि उनकी कृपा की बजाय कोपभाजन का शिकार बना सकती है। भद्रकाली भी काली का ही एक रूप है, जो सही आचरण करने वाले अपने भक्तों को अपनी कृपा से कृत-कृत्य करती हैं।

आध्यात्मिक साधना की मार्गदर्शक : तारा

शक्ति के एक अन्य रूप का नाम तारा है। वे आध्यात्मिक साधना में मार्गदर्शन प्रदान करती है। बौद्ध तंत्र में भी तारा की उपासना का विधान है। बौद्ध तिब्बतियों का विश्वास है कि तारा की पूजा में कभी पुरोहित या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं। वे पूर्ण प्रज्ञा का साकार रूप हैं। उन्हें 'प्रज्ञा पारामिता' भी कहा जाता है। श्वेतवर्णी तारा अपने भक्तों को भवसागर से पार कराती हैं। हिंदू तंत्र शास्त्र में तारा को श्यामलवर्णी माना गया है। उन्हें नील सरस्वती भी कहा जाता है। वे ज्ञान की मूर्ति हैं। वे तारिणी हैं–भूत, वर्तमान, भविष्य के भवसागर से पार ले जाती हैं। समस्त मानव तारा की ही संतान हैं। उनकी कृपा से वे समस्त संकटों से पार निकल जाते हैं।

तारा की उपासना की यह विधि प्रचलित है। भक्त रात्रि के अंतिम प्रहर में उठकर, शुद्ध हो अपने सहस्रार के चंद्र मंडल पर ध्यान लगाता है। वह अपनी भृकुटी के मध्य में स्थित श्री पादुका अर्थात् गुरु (शिव)के चरणों को नमन करता है। गुरु अर्थात् शिव उसके अज्ञान का नाश कर उसे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होते हैं। यह मान्यता है कि तारा की उपासना कर तांत्रिक शत्रुओं का नाश करने में सक्षम होता है।

उग्र तारा भी उनका ही एक रूप है। उन्हें उग्रताप का निवारक माना गया है। उग्र तारा की उत्पत्ति की एक कथा भी मिलती है। उसके अनुसार, एक समय शुंभ-निशुंभ दैत्य देवों के यज्ञ का भाग चुराकर स्वयं दिक्पाल बन बैठे। फलतः इंद्र के नेतृत्व में देवताओं ने हिमालय पर तारा देवी का स्तवन किया। उन्होंने मातंगी का का रूप धर कर देवताओं से पूछा कि वे किस स्त्री का स्तवन कर रहे हैं। उनके ऐसा पूछते ही उनके शरीर कोष से एक देवी ने निकलकर उन्हें देवताओं के आगमन का उद्देश्य बताया।

शरीर से इस देवी के प्रार्दुभाव के बाद हिमालयवासिनी, गौरवर्णा मातंगी अतिशय कृष्णवर्ण और मुंडमालाधारिणी बन गयीं। वे चतुर्भुजा थीं। उनके एक हाथ में खड्ग, दूसरे में चामर तथा बाएं एक हाथ में कपाल एवं नीचे वाले बाएँ हाथ में खप्पर था। उनके मस्तक पर आकाशभेदी जटा और गले में मुंडमाला थी। वक्षस्थल पर सर्पहार था। नेत्र रक्तवर्णी थे। वे कृष्णवर्णी वस्त्र पहने हुए थीं। कटि प्रदेश में व्याघ्रचर्म था। बायां पैर शव के वक्षस्थल पर तथा दायां पैर सिंह की पीठ पर था। वे स्वयं शव को चाट रही थीं। उनकी उपासना भी काली की भांति ही की जाती है।

षोडशी : त्रिपुर सुंदरी : परम ज्ञान की प्रतीक

त्रिपुर सुंदरी की प्रकृति में ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री की महत् शक्तियों का सन्निवेश है। वे परम ज्ञान की प्रतीक हैं, अतः श्रीविद्या, परम सौंदर्य वाली हैं। अतः उन्हें 'ललिता' और 'षोडशी' भी कहा जाता है। वे विशुद्ध सृजनात्मकता का प्रस्फुटन हैं, इसलिए उनका एक अन्य नाम 'महाकामेश्वरी' भी है। वे अपने विशुद्ध आनंद एवं स्वेच्छा से ब्रह्मांड की रचना करती हैं तथा स्वयं को भौतिक एवं मानसिक रूप से स्वेच्छा से विभाजित करती हैं। वे नानारूपी ब्रह्मांड एवं व्यक्तियों में स्वयं को प्रस्फुटित भी करती हैं। वह लोगों की इच्छाओं की सृष्टि के लिए माया की सृष्टि कर, उनके दिग्भ्रमित होने पर अस्तित्व के जटिल जाल से भी मुक्ति दिलाती हैं। वे बंधन एवं मुक्ति दोनों हैं। वे प्रत्येक व्यक्ति में मार्गदर्शक के रूप में रहती हैं। वे शून्य से ब्रह्मांड को रचकर, विश्व प्रपंच के पूर्ण होने पर उसे पुनः शून्य में विलीन कर देती हैं।

कालिका पुराण के अनुसार त्रिपुरा देवी कामाख्या की ही एक मूर्ति हैं। वाग्भव, कामबीज और ईश्वर, धर्म, अर्थ तथा कामादि के साधक कुंडलीयुक्त

होकर त्रिपुरा देवी के मूल मंत्र होते हैं। कामरूपिणी कामाख्या तीन प्रकार के पदार्थों का दान करती हैं तथा तीन के आगे पूजी जाती हैं। इसीलिए इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है। त्रिपुरा देवी का मंडल त्रिकोणाकृति है। तीनों रेखाओं पर मंत्र के तीन अक्षर हैं। रूप तीन प्रकार के हैं और त्रिदेव की शक्ति के लिए कुंडली शक्ति भी तीन प्रकार की है। ये सभी वस्तुएँ तीन-तीन की हैं, अतः इनका नाम त्रिपुरा पड़ा है।

त्रिपुरा सुंदरी का रूप सिंदूर की भाँति है। तीन नेत्र और चार भुजाएँ हैं। बायीं ओर के ऊपर वाले हाथ में पांच वाण, नीचे वाले हाथ में अक्षमाला, पीठ पर चार बरछे तथा रक्षा के लिए दंड है। जटाजूट देवी के केश अर्द्धचंद्र द्वारा बद्ध हैं। वे दिगम्बरा हैं। मध्यदेश में त्रिवलि सुशोभित है। वे सभी आभूषणों से युक्त सर्वांग सुंदरी, मंगलमयी, धन-प्रदाता तथा सर्व लक्षण संपन्न हैं। कामरूपिणी त्रिपुरादेवी की नौ प्रकार से पूजा की जाती हैं। विधिवत् पूजन से वे अभीष्ट पूर्ण करती हैं।

भुवनेश्वरी

भैरवी तंत्र में वर्णित भुवनेश्वरी का स्वरूप इस प्रकार है–

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुंगकुचां नयनत्रय युक्ताम्
स्मेरमुखीं वरदांकुशपाशभीतिकरां प्रभजे भुवनशीम!

भुवनेश्वरी को समस्त भुवनों का संचालक कहा गया है।

त्रिपुर भैरवी

त्रिपुरा भैरवी को अपराडाकिनी कहा गया है। त्रिपुर भैरवी त्रिभुवन से विशकलन क्रिया द्वारा पदार्थों को नष्ट करती है।

छिन्नमस्ता : शिव स्वरूप की प्रदाता

छिन्नमस्ता भी शक्ति का ही एक अन्य रूप है। ये प्रचंड चंडिका के नाम में भी ख्यात है तथा उनकी कृपा से भक्त शिव स्वरूप, अपुत्र पुत्रवान,

निर्धन धनवान तथा मूर्ख विद्वान बन जाते हैं। छिन्नमस्ता की छवि का रेखांकन इस प्रकार है। रतिरत एक युगल, जिसमें पुरुष नीलवर्णी तथा स्त्री गौरवर्ण हैं। यह ब्रह्मांडीय प्रजनन शक्ति के प्रतीक हैं। इनके ऊपर एक कमल पर गहरे नीचे-काले वर्ण की छिन्नमस्ता विराजमान हैं। वे चतुर्भुज हैं। उनके एक हाथ में उनका अपना कटा सिर है। दूसरे हाथ में सर्प, तीसरे में तलवार तथा चौथे में एक पात्र है। दोनों ओर दो षोडशियाँ हैं, जिनके एक हाथ में कपाल तथा दूसरे में तलवार है। छिन्नमस्ता देवी के गले से निकली रुधिर की तीन धाराओं में से एक स्वयं उनके मुख में तथा दो अन्य दोनों ओर खड़ी षोडशियाँ के मुंह में जा रही है। छवि में प्रयुक्त तीन रंग इच्छा, क्रिया, ज्ञान और सत, रज, तम इन तीन गुणों के भी प्रतीक कहे गए हैं। छिन्नमस्ता की इस छवि की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है। देवी अपनी जीवनी शक्ति समूचे ब्रह्मांड में वितरित कर रही हैं। यही बात रति मुद्रा से व्यक्त होती है।

त्रिशक्ति तंत्र के अनुसार में साधक को अपनी नाभि में अर्ध विकसित शुक्ल वर्णी कमल का ध्यान करना चाहिए। इस कमल के मध्य में जवा कुसुम की भांति रक्तवर्णा, कोटि-कोटि सूर्यों की भाँति उज्जवल वर्णा महादेवी छिन्नमस्ता की भावना करना चाहिए। देवी बाएँ हाथ में अपना ही मस्तक धारण कर अपनी लपलपाती जिव्हा से अपने गले में निकलती रुधिरधारा का पान करती हैं। उनके केश विविध कुसुमों में शोभित हैं। वे आलुलापित केश तथा दिगंबरी हैं। उनके दाएँ हाथ में कर्तरी है। मुंडमाल विभूषिता, षोडशवर्षीया, पीनोन्मत पयोधरा, रति तथा काम पर प्रत्यालीढ़ पद में आरूढ़ देवी के गले में मुंडमाला है। यज्ञोपवीत के रूप में सर्प है। उनके बायीं ओर डाकिनी तथा दायीं और वर्णिनी हैं।

डाकिनी का वर्णन इस प्रकार है : कल्पान्त सूर्य जैसी उज्जवल, विद्युज्जटा, त्रिनयना, विकटदंता, मुक्तकेशी, दिगंबरी। बाएं हाथ में कृपाल तथा दाएं हाथ में कर्तरी है। वे अपनी लपलपाती जीभ से देवी के गले में निकलती रुधिर धारा का पान करती हैं। वर्णिनी का रूप इस प्रकार है : लोहित वर्ण, मुक्तकेशी, दिगम्बरी। बाएँ हाथ में कपाल तथा दाएँ हाथ में कर्तरी है। गले में मुण्डमाल तथा कांधे पर सर्प का यज्ञोपवीत है। प्रत्यालीढ़ पद में अवनित वर्णिनी भी देवी के कंठ में निकल रही रुधिर धारा का पान करती हैं।

रति और काम की विपरीत रति में आसक्त रूप की भावना का विधान है। भैरवीय तंत्र में उनकी उपासना विधि का वर्णन है।

धूमावती

धूमावती को संसार के दु:खों के मूल कारणों में एक निर्सृति माना गया है। महादु:खों, क्लेशों आदि को धूमावती का साक्षात् रूप कहा गया है। क्लेश इसे आसुरी शक्ति कहा गया है। संसार में रुद्र, यम, वरुण और निर्सृति को समस्त दु:खों का मूल कारण माना गया है। यह भी मान्यता है, संसार में मनुष्य असाध्य रोग, शोक, कलह, दरिद्रता आदि निर्सृति अर्थात् धूमावती से उत्पन्न होते हैं। श्री दुर्गा सप्तशती में देवी की एक स्तुति में कहा गया है कि 'आप दरिद्रता के रूप में लोगों के घरों में वास करती हैं।'

संभवत: यह सनातन धर्म की ही एक विशेषता है, जो दरिद्रता को देवी का पद देकर पूजा करती है, उसका तिरस्कार नहीं करती।

आशय शायद यही है कि घोर दरिद्रता की स्थिति में पहुंचकर व्यक्ति उत्कर्ष के लिए प्राणपण से जुटता है। 'अभिशाप में छिपा वरदान' की उक्ति भी इसी विश्वास की पुष्टि करती है।

बगलामुखी

इस देवी की आराधना से साधक मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण आदि के कार्य संपन्न करता है। दतिया में बगलामुखी देवी का प्रसिद्ध मंदिर है। इसे पीताम्बरा पीठ भी कहा जाता है। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त 'वल्गा' ही व्याकरण की लोपागम वर्ण विकार पद्धति के अनुसार तंत्र में 'बगला' बन गया है।

बगलामुखी तंत्र में इस देवी की एक प्रार्थना इस प्रकार है :

जिव्हाग्रमादाय करेण देवींऽ
वामेन शत्रून परपीड़यंतीम
गहाभिद्यातेन च दक्षिणेन,
पीताम्बराख्यां द्विभुजा नमामि।

मातंगी

श्यामल वर्णी मातंगी को सभी अभीष्ट कार्यों को पूरा करने वाला माना गया है। उनके हाथों में पाश, विद्ग, अंकुश, खेटक एवं कमल की कल्पना की गयी है। मातंगी को मातंग शिव की शक्ति कहा गया है।

कमलात्मिका

कमला लक्ष्मी का ही एक अन्य नाम है। लक्ष्मी के संबंध में विशद् विवेचन की जरूरत इसलिए नहीं कि उनके गुणों-कर्मों को सभी जानते हैं।

भैरवी एवं योगनियां

तंत्रसार में भैरवी के निम्न रूप कहे गये हैं : त्रिपुर भैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेश भैरवी, सकल सिद्धिदा भैरवी, भय विंध्वंसिनी भैरवी, चैतन्य भैरवी, कामेश्वरी भैरवी, षटकुटा भैरवी, रुद्र भैरवी, त्रिपुरबाला भैरवी, नवकुटा भैरवी और अन्नपूर्णा भैरवी। इनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग पूजा विधान है। जिस भाँति महाविद्याएं दिव्य शक्तियां हैं, उसी प्रकार योगिनियां भी दैवी शक्तियां ही हैं। उनकी पूजा-आराधना से साधक को विशेष फलों की प्राप्ति होती है।

बृहनन्दिकेश्वरी पुराण में प्रधान चौंसठ योगिनियों के ये नाम वर्णित हैं: 1. नारायणी, 2. गौरी, 3. शाकम्भरी, 4. भीमा, 5. रक्तदंतिका, 6. भ्रामरी, 7. पार्वती, 8. दुर्गा, 9. कात्यायनी, 10. महादेवी, 11. चंद्रघंटा, 12. महाविद्या, 13. महातपा, 14. सावित्री, 15. ब्रह्मवादिनी, 16. भद्रकाली, 17. विशालाक्षी, 18. रुद्राणी, 19. कृष्ण पिंगला, 20. अग्निज्वाला, 21. रौद्रमुखी, 22. कालरात्रि, 23. तपस्विनी, 24. मेघस्वना, 25. सहस्राक्षी, 26. विष्णुमाया, 27. जलोदरी, 28. महोदरी, 29. मुक्तकेशी, 30. घोररूपा, 31. महाबला, 32. श्रुति, 33. स्मृति, 34. धृति, 35. तुष्टि, 36. पुष्टि, 37. मेधा, 38. विद्या, 39. लक्ष्मी, 40. सरस्वती, 41. अपर्णा, 42. अम्बिका, 43. योगिनी, 44. डाकिनी, 45. शाकिनी, 46. धारिणी, 47. लाकिनी, 48. त्रिदेशेश्वरी, 50. महाषष्ठी, 51. सर्वमंगला, 52. लज्जा, 53. कौशिकी, 54. ब्रह्माणी, 55. माहेश्वरी, 56. कौमारी, 57. वैष्णवी, 58. ऐंद्री, 59. नरसिंही, 60. वाराही, 61. चामुंडा, 62. शिवदूती, 63. विष्णुप्रिया, 64. मातृका। कालिका पुराण में भी चौंसठ योगिनियों का उल्लेख मिलता है। योगिनी तंत्र में योगिनी साधना विधि विस्तार पूर्वक बतलायी गयी है। कहा गया है कि असंख्य योगिनियाँ हैं, जिनमें ऊपर वर्णित योगिनियाँ प्रमुख हैं।

विद्वानों ने दस महाविद्याओं में दस की संख्या का भी विवेचन किया है। उनके अनुसार, प्रारंभ के शून्य से है। बाद की एक से नौ तक की संख्याएं उद्भूत हुईं। नौ में एक जोड़ने से दस की संख्या प्राप्त होती है। इसमें एक का अंक स्वतंत्र सत्ता रखता है। इसे ही बिंदु माना गया है। दो से नौ तक का खंड विराट कहा गया है। यह विराट अर्थात् दो से नौ तक अंश शून्य में समाहित है। यही शून्य पूर्ण पुरुष भी माना गया है।

तीन भावों का महत्त्व

तंत्र शास्त्र में सात आचारों के अतिरिक्त तीन भावों का भी उल्लेख है और उन्हें भी साधना में महत्त्वपूर्ण माना गया है। उन्हें तंत्र-मंत्र में सिद्धि का कारण कहा गया है। भाव के अभाव में सिद्धि की आशा व्यर्थ है। गुण तीन माने गये हैं–सत्, रज और तम। इनमें सतगुण उत्तम, रजोगुण मध्यम तथा तमोगुण अधम-अथवा निकृष्ट माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति की वय विशेष में इन गुणों का सामान्यतः प्राधान्य होता है। इन गुणों को ज्ञानावस्था का भी प्रतीक माना जाता है। इन्हीं के आधार पर तंत्र शास्त्र में दिव्य, वीर एवं पशु भाव की कल्पना की गयी है। सोलह वर्ष की आयु तक व्यक्ति में पशुभाव प्रमुख होता है। प्रौढ़ावस्था वीर भाव की है तथा वृद्धावस्था दिव्य भाव की प्रतीक है। ये भाव साधना की सीढ़ियाँ भी हैं।

कामाख्या तंत्र में पशुभाव की व्याख्या करते हुए कहा गया है, जो न तो पंचतत्व ग्रहण करते हैं, न उनकी निंदा करते हैं, जो शिव प्रणीत कथा को सत्य मान पाप को निदंनीय समझते हैं, वे पशु नाम से प्रसिद्ध होते हैं। कामाख्या तंत्र में ही 'पशु' के आचारों का भी वर्णन है। ऐसे व्यक्ति प्रतिदिन हविष्य आहार करते हैं, पान नहीं छूते, ऋतुस्नाता अपनी पत्नी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री को कामभावना से नहीं देखते, पर-स्त्री के कामभाव को देखकर उसका साथ त्याग देते हैं, मत्स्य-मांस ग्रहण नहीं करते, ऐश्वर्य नहीं चाहते, क्रोध का वर्जन करते हैं और अहंकार व्यक्त नहीं करते हैं। लेकिन ऐसे 'पशुओं' को दीक्षा देने से भी मना किया गया है। आगे यह भी कहा गया है कि बहु-प्रकार के आचार वाले को पशु कहते हैं तथा वह कितना भी पश्चावाचार करे, उसे सिद्धि नहीं मिलती। पिच्छिला तंत्र में वैष्णव को पशुभाव से ही पूजा करने के लिए कहा गया है। साधना में सर्वप्रथम पशुभाव को, बाद में वीर भाव को तथा अंत में दिव्य भाव को अपनाने का विधान बताया गया है। वीर भाव में साधक तमोगुण

त्यागकर संसार के सभी पदार्थों को शिव और शक्ति की विभूति मानता है। इस भाव में साधक के मन में द्वैत भाव रहता है। पिच्छिला तंत्र में वीर भाव को उद्धत कहा गया है एवं दिव्य वीर भाव का वर्णन करते हुए शक्ति या मद्य, मत्स्य, मांस, मुद्रा एवं मैथुन को पूजा के लिए अनिवार्य माना गया है। लेकिन कलियुग में सारी पूजा को मानस रूप से ही करने का भी विधान है।

साधना में पशुभाव से वीर भाव और वीर भाव से दिव्य भाव की प्राप्ति होती है। रुद्रयामल तंत्र के अनुसार जो व्यक्ति दिव्य एवं वीर भाव ग्रहण कर लेते हैं, वे 'निस्संदेह' वांछा कल्पतरु लता के अधिपति हो जाते हैं। वे जो चाहें, वह कर सकते हैं। नित्या तंत्र के अनुसार साधक को भगवती की पूजा करनी चाहिए तथा रात्रि में विजया अर्थात् भांग पीकर मंत्र जाप में तन्मय होना चाहिए। वामाचार के पंचमकार प्रख्यात हैं। पंचमकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन। वामाचार में पंचमकार एवं खपुष्प द्वारा कुल स्त्री की पूजा तथा वामा होकर पराशक्ति की पूजा की जाती है। खपुष्प से तात्पर्य है–रजस्वला स्त्री का रज। पंचमकार को तंत्र का प्रधान अंग कहा गया है। यह भी कहा गया है कि पंचमकार के बिना तांत्रिक को किसी भी कार्य में कोई अधिकार नहीं। पंचमकार तंत्र का प्राण स्वरूप है।

तांत्रिक साधना का क्रम–गौतमीय तंत्र के अनुसार, किसी भी साधक को तंत्र की साधना के पूर्व दीक्षा लेना परम आवश्यक है, क्योंकि दीक्षा से ही दैवी शक्ति प्राप्त होती है। दीक्षा-हीन व्यक्ति कितना ही मंत्र जप क्यों न करे, मंत्र को सिद्ध नहीं कर पाता। दीक्षा एक गोपनीय एवं रहस्यमयी क्रिया मानी गयी है। दीक्षा के साथ ही अभिषेक जुड़ा है। दीक्षा के बाद शाक्ताभिषेक एवं उसके उपरांत पूर्णाभिषेक किया जाता है। गुरु साधक-शिष्य को उसकी पात्रता के अनुसार बीज-मंत्र प्रदान करता है। अर्थात् वह साधक के स्वभाव के अनुकूल ही उसे मंत्र देता है। मंत्र चार प्रकार के कहे गये हैं-सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, एवं अरि (शत्रु)। मंत्र जप के भी तीन प्रकार हैं-वाचिक (बोलकर), उपांशु (बुदबुदाकर), मानसिक (मन ही मन)। तंत्र शास्त्र में इसे ही अर्थात् मानसिक जप को श्रेष्ठ कहा गया है।

दीक्षा के बाद साधक का अभिषेक किया जाता है। भूत शुद्धि, तत्व शुद्धि साधना का अनिवार्य अंग हैं, तंत्र ही क्यों, किसी भी साधना का, क्योंकि ये सब साधक के अंत:करण को निर्मल, सहज बनाती हैं तथा अंत:करण जिन बातों में उलझा रहता है, उसे दूर करती हैं। इन्हीं उलझनों को कहीं बंधन, कहीं पाश, कहीं मल कहा गया है। शैव मत की चर्चा में हुए पंच महाभूतों, पंच तत्वों आदि की चर्चा की ही गयी है।

तंत्र-साधना के पंचमकार

तंत्र साधना के पंचमकार के संबंध में तंत्र शास्त्र के सिद्धांतों से अनभिज्ञ लोगों के मन में अनेक भ्रांतियां हैं। कुछ लोग उसे व्यभिचार अथवा 'स्वछंद सेक्स' का एक लाइसेंस कहकर उसकी भर्त्सना करते हैं। प्रत्यक्षत: तत्संबधी सतही साहित्य पढ़ने पर ऐसा प्रतीत भी होता है, तथापि वास्तविकता उसके सर्वथा विपरीत है।

महानिर्वाण तंत्र में कहा गया है कि पंच तत्व अथवा पंचमकारों के अभाव में शक्ति पूजा हो ही नहीं सकती। इसी तंत्रशास्त्र में पंचतत्वों का अर्थ भी समझाया गया है। जैसे मदिरा का अर्थ है अग्नि, अग्नि ही वह मदिरा है, जो व्यक्ति को आनंद प्रदान करती है, उसके दुःख दूर करती है। मांस का अर्थ है वायु जो मस्तिष्क और तन को बल प्रदान करती है। मत्स्य है जल जो प्रजनन शक्ति बढ़ाता है, मुद्रा है धरती, जिस पर खाद्यान पैदा होते हैं और जो जीवन का आधार हैं। आकाश है, मैथुन, संपूर्ण सृष्टि का जनक।

साधना के स्तर पर भी इन पंचतत्वों के, जिन्हें कुल द्रव्य अथवा कुल तत्व कहा जाता है, अर्थ किये गये हैं। तामसिक, राजसिक, सात्विक साधना में इन पंचतत्वों के अर्थ भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। तामसिक अर्थात् पश्वाचार, राजसिक अर्थात् वीराचार एवं सात्विक अर्थात् दिव्याचार। वीर के लिए मदिरा एवं मैथुन का वही अर्थ है, जिसे लोक में समझा जाता है। 'पशु' के लिए वीराचार का निषेध है, क्योंकि वह इस साधना के उपयुक्त नहीं होता अर्थात् उसमें अभी इस साधना की, वीराचार की, क्षमता नहीं होती। इस तरह 'पशु' कभी मदिरा नहीं ग्रहण करता। वीर मदिरा के साथ पूजा करता है जबकि दिव्याचार के साधक के लिए मदिरा का अर्थ आध्यात्मिक ज्ञान होता है। वीर के भी दो भेद हैं: स्वभाव वीर एवं विभाव वीर। स्वभाव वीर पूजा के समय मदिरा पान करता है, जबकि विभाव वीर आंतरिक पूजा में पांच मानसिक तत्वों से पूजा करता है और बाह्य पूजा में इन पंचतत्वों के विकल्प का प्रयोग करता है।

कौल तंत्र के अनुसार सात्विक अथवा दिव्याचार साधकों के लिए मदिरा योग द्वारा परमब्रह्म का अर्जित ज्ञान है, जो मस्त कर देता है, साधक बाह्य संसार को भूल जाता है। मांस का अर्थ है साधक द्वारा परमब्रह्म की समर्पित अपने सारे कर्म। मत्स्य से तात्पर्य उस ज्ञान से है जिसके द्वारा साधक समूचे प्राणी जगत के आनंद एवं उसकी व्यथा से सहानुभूति रखता है। मुद्रा का अर्थ है बंधन उत्पन्न करने वाले सारे दुष्कर्मों का त्याग। मैथुन का अर्थ है, मूलाधार चक्र स्थित कुंडलिनी शक्ति का सहस्रार स्थित परमशिव में मिलन। योगिनी तंत्र उसे यति के लिए सर्वोत्तम 'मैथुन' कहता है।

आगमसार के अनुसार मदिरा का अर्थ है, सहस्रार से निसृत होने वाली सोमधारा। मांस का अर्थ है जिव्हा। मत्स्य का अर्थ है इड़ा और पिंगला नाड़ी रूपी नदियों में सतत प्रवाहित होने वाली वायु। मुद्रा का अर्थ है, सहस्रदल कमल में ज्ञान की जागृति। मैथुन है, वही मूलाधार चक्र स्थित कुंडलिनी का सहस्रार स्थित परमशिव से मिलन।

पश्वाचार में साधकों के लिए पंचतत्वों के ये विकल्प बताये गये हैं। मदिरा के स्थान पर 'पशु' यदि ब्राह्मण है तो दूध, क्षत्रिय हो तो घी, वैश्य हो तो शहद और शूद्र हो तो चावल से बनी मदिरा ले। साधक नारियल के जल का भी उपयोग कर सकते हैं। मांस के लिए विकल्प हैं–नमक, अदरक, लहसुन आदि। मत्स्य के लिए विकल्प हैं सफेद बैंगन, लाल मसूर, पानी फल-जैसे सिंघाड़ा आदि। मुद्रा के विकल्प हैं–धान, चावल, गेंहू। मैथुन के लिए विकल्प हैं–कच्छप मुद्रा में पुष्पांजलि। अथवा साधक का अपनी पत्नी के साथ, जो उसकी 'शक्ति' या 'भैरवी' है, सहवास।

कौलिकार्चनदीपिका में आद्यतत्वों की व्याख्या इस प्रकार की गयी है–

आद्यमद्यः विजया (भांग), आद्यशुद्धिः मांस (अदरक), आद्यमीन : जंबीरा, आद्यमुद्रा : धान्यज, आद्यशक्ति : साधक की पत्नी।

कुछ विद्वानों ने पंचतत्वों के लौकिक अर्थ को लेते हुए उसकी व्याख्या की है, जैसे मदिरा का अर्थ अँगूर की शराब नहीं, वरन गुड़, चावल या महुआ से बनी शराब। मांस भी तीन प्रकार के जलचर, नभचर और थलचर पशुओं के। लेकिन मादा पशु के वध का निषेध है। मुद्रा से तात्पर्य है मक्खन में तला सेला चावल, जौ या गेहूं का पदार्थ। महानिर्वाण तंत्र की चेतावनी है कि बिना शुद्धि के मदिरा नहीं पीनी चाहिए। बिना शुद्धि के मदिरा विष की भांति होती है। अंतिम तत्व मैथुन के लिए स्त्री को पूजादि से शुद्ध कर देवी के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। स्त्रियों के भी तीन प्रकार हैं-स्वकीया (पत्नी), परकीया (अन्य की

पत्नी) और सधारानी (सबके लिए सामान्य)। शक्तियों के भी दो प्रकार हैं– भोग्य एवं पूज्या। पूज्या के प्रति भोग्या भाव से साधक मातृगमन के पाप का भागी होता है।

कौलिकार्चन दीपिका के अनुसार पूजा साधक को अपनी पत्नी,जो आद्याशक्ति कहलाती है, के साथ करनी चाहिए। परकीया के साथ साधना के लिए भी कुछ नियम हैं। यदि साधक की कोई पत्नी नहीं है, या वह अनाधिकारिणी है तो वह अन्य शक्ति के साथ पूजा कर सकता है। पूजा को छोड़ परकीया के साथ मैथुन का विचार मात्र ही पाप है। पूजा के लिए प्रत्येक तत्व का शोधन या शुद्धि जरूरी है। साधिका को भी साधक की भांति सुयोग्य होना चाहिए। शोधन्यास में शक्ति के पास भी साधक जैसी योग्यता का होना अनिवार्य है। साधना में कामभाव का उदय होते ही साधना के सारे फल निष्फल हो जाते हैं। साधक का शक्ति के साथ स्थायी संबंध भी आवश्यक बताया गया है, अन्यथा वह–अर्थात् शक्ति साधक के सारे पुण्य अपने साथ ले जाती है। इसीलिए शक्ति को शैव संस्कार संपन्न कर अधिकारिणी या सहधर्मिणी बनाने का भी निर्देश है। इसी तरह तंत्र शास्त्रों में सिद्ध वीरों का भी उल्लेख मिलता है। सिद्ध वीर कौन हो सकता है? इसके लिए भी कठोर नियम है। उसे पुरश्चरण करना आवश्यक है अर्थात् वह मंत्र के प्रत्येक अक्षर में एक लाख का गुणा करने के बाद जो संख्या प्राप्त हो, उतनी बार मंत्र का जाप करे।

तंत्र विज्ञान के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री गोविंद शास्त्री ने अपनी अध्ययन-योग्य कृति 'तंत्र दर्शन' में पंचमकार और पंचोपचार पर विशद् प्रकाश डाला है।

वे लिखते हैं: "यह पंचोपचार है क्या और उनका प्रयोग क्यों अनिवार्य है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए हमें तंत्र के सृष्टिक्रम को जानना होगा। आज तक संसार के जितने विकसित सिद्धांत हैं, उन सबमें संसार की उत्पत्ति का इतिहास वर्णित है। तंत्र की यह मान्यता और सिद्धांतों से मेल नहीं खाती, फिर भी इसका अपना महत्त्व है और आधार है।'

तंत्र मानता है कि इस संसार में महाशून्य व्याप्त था। यह महाशून्य शिव के रूप में माना जाता है, जिनमें प्रकृति भी समाविष्ट है। प्रकृति रहित शिव निष्क्रिय, निरानंद, महाशून्य ही होते। प्रकृति के कारण ही उनमें विक्षोभ होता है। इस स्पंदन के कारण ही शववत् शिव क्रियामय हो जाते हैं। तंत्र विज्ञान उन्हें ही परमशिव कहता है। परामाया का यह विक्षोभ इच्छामय होता है, और वही उनका अर्थात् महामाया का विस्तार करता है। वही संसार के विस्तार को सक्रिय एवं नियंत्रित करता है। इस मूल विक्षोभ में माया का स्तर आता है। सत्व, रज,

तम जैसे गुण माया के ही क्षेत्र एवं रूप हैं।

माया के बाद आता है, शक्ति का क्षेत्र, जिसमें हमारी देह में सूक्ष्म रूपेण अवस्थित एवं सक्रिय तेजस शरीर की रचना होती है। देह में इससे ही माया का क्षेत्र एवं रूप होता है। अंतिम एवं स्थूल रूप है तत्व माया का। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश। पांचों तत्व इसी माया में अभिव्यक्त होते हैं। इन्हीं से आ जुड़ते हैं पांच आयाम-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गंध के। ये सर्वथा भिन्न होते हुए भी परस्पर जुड़े रहते हैं।

श्री गोविन्द शास्त्री लिखते हैं–'पंच उपचार से पूजन का तात्पर्य यह है कि हम माया के स्थूल स्तर से ऊपर उठकर सूक्ष्म स्तरों में जाना चाहते हैं।'

भौतिक-देह में विद्युत शक्ति घर्षण से प्राप्त होती है, जबकि मानसिक या गुणात्मक जगत में चुम्बकीय विधि से। आध्यात्मिक साधना में यही मानसिक शक्ति साध्य होती है। पंचमकार से साधना करना ऐसे ही है जैसे अपनी यात्रा में पड़ने वाले हरेक शहर के विस्तार, विविधता और सौंदर्य को देखते-झकोरते हुए जाना। तत्व शब्द यहां एलिमेंट का सूचक नहीं है, बल्कि उस परम सत्ता के अंश भाव का बोधक है। वे पाँचों तत्व उसी पराशक्ति से उत्पन्न हैं, और उसके अंश हैं। प्रत्येक तत्व का अपना संसार है, और विस्तार है। ये गुण अथवा तत्व हमारे शरीर में भी उपस्थित हैं।

मांस को तमोगुण युक्त पृथ्वी और मछली को मिश्र गुण युक्त जल तत्व का प्रतीक माना गया है। वामाचार के अनुसार, मांस और मछली इन तत्वों के प्रतिनिधि अंगों और संवेदनाओं को उत्तेजित करते हैं। इन स्थूल पदार्थों का भौतिक देह पर प्रभाव पड़ता है जिससे हमारा घर्षणिक विद्युत का तंत्र अधिक सक्रिय होता है। मदिरा को तेजस् तत्व माना गया है, जो मन को प्रत्यक्षतः प्रभावित करती है। वह हमारे शरीर की कोशिकाओं को जीवन देती है। मुद्रा को वायु तत्व का प्रतीक कहा गया है। शरीर का स्नायुतंत्र भी वायु तत्व का विस्तार, उसी से सक्रिय है। मैथुन आकाश तत्व का प्रतीक माना गया है। जिस भाँति सारे तत्व आकाश के शून्य में क्रियाशील हैं, उसी तरह उपरोक्त चारों उपचार-मांस, मछली, मदिरा एवं मुद्रा मैथुन में एक रूप हो जाते हैं। वामाचार मैथुन भाव को उस सीमा तक मानता है, जहां द्वित्व-द्वित्व रहकर भी एक हो जाता है।

'तंत्र दर्शन' में भी गोविंद शास्त्री लिखते हैं :

'तंत्र अपने आप में एक जीवन विद्या है। वह विचारों की ऐसी उच्च भूमिका है, जिसमें ज्ञातव्य कुछ बचता नहीं।...नारी और यौन संबंधों को हम एक मरीचिका, माया और अवरोध के रूप में मानकर गुणातीत अवस्था प्राप्त करना चाहते थे।

किन्तु मानव देह में क्रियारत और अभिव्यक्त अतएव प्रेरक शक्ति नारी तथा उसके साथ हमारे संबंध (सेक्स) इसीलिए वर्जित थे। तंत्र ने उन दोनों में सेतुबंध का कार्य किया।

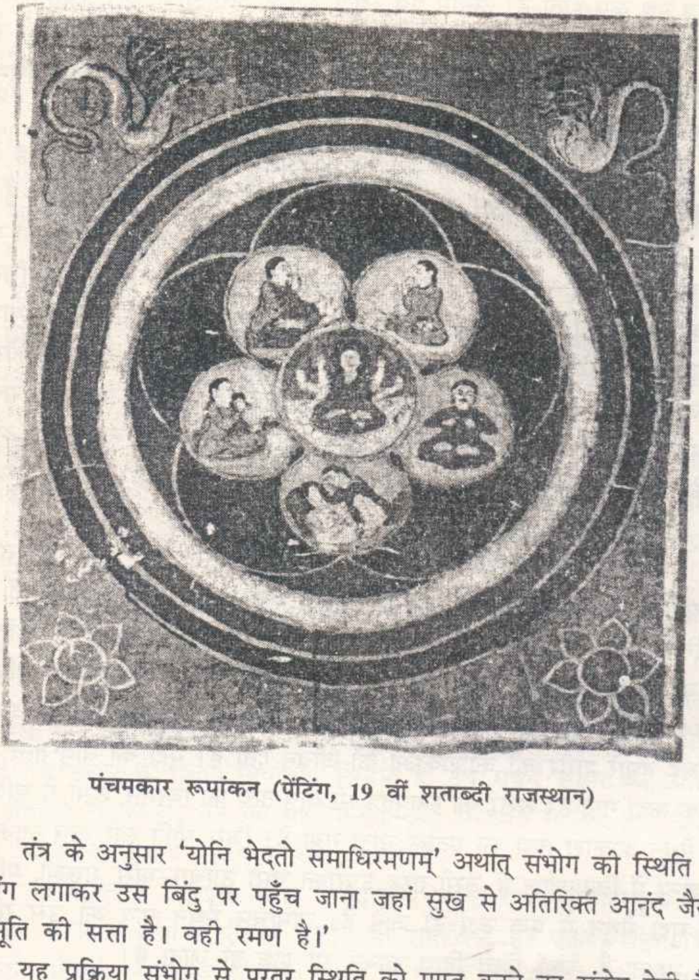

पंचमकार रूपांकन (पेंटिंग, 19 वीं शताब्दी राजस्थान)

तंत्र के अनुसार 'योनि भेदतो समाधिरमणम्' अर्थात् संभोग की स्थिति से छलांग लगाकर उस बिंदु पर पहुँच जाना जहां सुख से अतिरिक्त आनंद जैसी अनुभूति की सत्ता है। वही रमण है।'

यह प्रक्रिया संभोग से परतर स्थिति को प्राप्त करने का संकेत देती है। तंत्र साधना के लिए आवश्यक पंचमकार यथा मांस, मत्स्य, मदिरा, मुद्रा एवं मैथुन की अन्य व्याख्याएँ भी मिलती हैं, जिनमें इन्हें इनका शाब्दिक अर्थ न लेकर, उन्हें प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है।

तंत्र साधना में चक्रानुष्ठान

तंत्र साधना में चक्रानुष्ठान को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। लेकिन चक्रपूजा अथवा चक्रानुष्ठान की विधियों के संबंध में अनेकानेक भ्रांतियां भी हैं। चक्र पूजा बेहद गोपनीय रीति से रात में ही की जाती है। उसमें पंचमकार का समावेश अनिवार्य होता है। कुछ चक्रपूजा सभ्य समाज की दृष्टि में व्यभिचार का पर्याय होती हैं, अतः घृणित एवं निंदनीय। इस दृष्टिकोण का एक कारण तो जन-सामान्य द्वारा तंत्र के सिद्धांतों एवं चक्र पूजा के अर्थ को न समझ पाना है, दूसरे एक समय चक्र पूजा की आड़ में कुछ तत्त्वों द्वारा सचमुच व्यभिचार को प्रश्रय दिया गया। लेकिन ऐसा तो किसी भी साधना के साथ हो सकता है। साधना के नाम पर पाखंडियों द्वारा तन-धन के शोषण के समाचार आये दिन छपते ही रहते हैं अतः चक्र पूजा का आशय समझे बिना उसकी निंदा उचित नहीं प्रतीत होती।

चक्र में शक्ति की देह यंत्र का प्रतीक है। शक्ति को देवी का ही एक रूप माना जाता है। वीर एवं शक्ति के मिलन में शक्ति प्रसन्न हो वांछित फल प्रदान करती है। इसे देवता का प्रत्यक्षीकरण भी कहा गया है। मुख्यतः चार चक्र हैं—वीर चक्र, राजचक्र, देव चक्र एवं पशुचक्र। राजचक्र को महाचक्र भी कहा जाता है।

चक्र पूजा में साधक-साधिकाएँ एक वृत्त अर्थात् घेरा बनाकर बैठते हैं। इन्हें भैरव एवं भैरवी भी कहा जाता है। शक्ति (साधिका) साधक के बायीं ओर आसीन होती है। चक्र पूजा में जाति का कोई भेद नहीं होता तथापि किसी भी जाति के 'पशु' को बहिष्कृत रखा जाता है। इस तरह चक्रपूजा को उच्च कोटि के साधक-साधिकाओं की ही साधना माना गया है। चक्रपूजा के भी अनेक भेद कहे गये हैं, जैसे ब्रह्मकौलों के लिए तत्त्व चक्र और भैरवी चक्र, जिसमें मदिरा की जगह मधुर त्रय अर्थात् दूध, चीनी एवं शहद लेने का विधान है। मिथुन के स्थान पर मंत्र जाप के साथ जगदम्बा के चरणों का ध्यान किया जाता है। चूड़ा चक्र, आनंदभुवन योग चक्र जैसे अर्थ चक्रों का भी उल्लेख मिलता है।

सिद्धमाता रहस्य में एक चूड़ा चक्र का उल्लेख मिलता है। इसमें पचास साधक और पचास साधिकाएँ (शक्तियाँ) होती हैं। साधक शक्तियों की चोलियों (चूड़ा) में से कोई एक चोली उठाता है और वह चोली जिस शक्ति की होती है, वह उस रात पूजा में उसकी शक्ति का स्थान लेती है। स्नेह चक्र में सिद्ध वीर अपनी पसंद की शक्ति का चयन करता है।

आनंदभुवन योग में सिद्ध वीर कम से कम तीन एवं अधिक से अधिक 108 शक्तियों के साथ पूजन करता है। वह एक शक्ति (भोग्या शक्ति) के साथ एकाकार हो शेष को स्पर्श ही करता है। उर्ण चक्र में वीर शक्ति के साथ जोड़े में बैठ स्वयं को एक कपड़े में बांध लेते हैं। यह पूजा अन्य लोगों यथा राजा की कामना पूर्ति के लिए की जाती थी, विशेषकर रण में विजय के लिए। फिलिप रॉसन ने 'द् ऑर्ट आव तंत्र' में इन्हीं चक्रों का उल्लेख किया है।

वीर चक्र के संबंध में कहा गया है कि उसकी पूजा के प्रभाव से शीघ्र ही सिद्धि लाभ होता है। वीर चक्र में भूचर और खेचर आदि के मांस को उत्तम सिद्धिदाता माना गया है। भूचर अर्थात् पशु एवं खेचर अर्थात् पक्षी। धान्य को मुद्रा कहा गया है। पूजा के लिए श्वेत, पीत एवं रक्त पुष्प भी आवश्यक हैं। वीर चक्र में षड् वीर, अष्टवीर या नववीर में जो प्राप्त हो सके, उसकी कल्पना का निर्देश है। ऐसी कल्पना करने से ही वीर चक्र होता है। मंत्र सिद्ध एवं मद्य पीकर ही वीर बना जाता है। जब वीर का विधिवत् अभिषेक कर दिया जाता है तो वह कौलिकी कहलाता है। वीर चक्र में वीरों एवं अन्य शक्तियों को नियुक्त करने का भी विधान है।

पूजा के लिए सभी प्रकार की मदिरा, मत्स्य, मुद्रा, स्वयंभू कुसुम, कुंड गोलोद्भव द्रव्य चढ़ाकर अपनी शक्ति की पूजा करने का नियम है। हीनजा देवी का शक्ति मंत्र द्वारा शोधन, पूजन द्वारा शक्ति निवेदन किया जाता है। कहा जाता है कि मधुसूक्त वीर को हीनजा कन्या प्रदान करने से अपार पुण्य प्राप्त होता है! वीर चक्र में वीर द्वारा शक्तिदान भी अनिवार्य है। देवी, गुरु, सुधा, विद्या, श्रेष्ठ शक्ति, योगिनी, भैरवी तत्त्व और अष्ट तत्त्व की भी पूजा का विधान है। वीर चक्र में पूजा के लिए कुछ वर्जनाएँ भी हैं। जैसे अष्ट दोषों की वर्जना अर्थात् काम, क्रोध, मात्सर्य, विकार, लोभ, कुत्सा, निंदा, दुरालाप का संपूर्ण त्याग। इसी तरह पंडित, वीर, संतान, क्षेत्र, देवी, योगिनी, कुलाचार एवं गुरुदूती की मानसिक निंदा की भी पूर्णतः वर्जना। मातृयोनि, पशु क्रीड़ा, नग्न स्त्री, उन्नत स्तनी, कांत क्षोभिता, और कांता, इनके प्रति कामभाव की शून्यता।

देव चक्र को देवताओं द्वारा सदैव किया जाने वाला अनुष्ठान निरूपित किया

गया है। देव चक्र में राजवेश्या, नागरी, गुप्त वेश्या और ब्रह्मवेश्या को पंच शक्ति माना गया है। इनकी परिभाषा करते हुए कहा गया कि राजकीय सेवा में रत वेश्या राजवेश्या, कौलजा गुप्त वेश्या, नर्तकी देववेश्या, तीर्थाटन करने वाली ब्रह्मवेश्या तथा रजस्वला कन्या नागरी कहलाती है। एक अन्य श्लोक में पंच शक्तियों के लिए सभी जाति की विदग्धा कन्याओं के समावेश का विधान है। यह भी कहा गया है कि लोभवश, छलवश या कामवश इन कन्याओं के साथ समागम करने पर साधक भैरव नर्क का भागी होता है। यथा :

लोभाद्वा कामतो वापि छलाद्वा वरवर्णिनि।
परिस्यात् संगमस्तासां भैरव नरकं व्रजेत॥

राज चक्र

राज चक्र में माता, भगिनी, पुत्रवधू, कन्या और वीर पत्नी को कुलेश्वरी और पंच शक्ति कहा गया है। चक्र में द्रव्य से बार-बार इनकी पूजा की जाती है। इन पंच शक्तियों के प्रति कामभाव नर्कवास, रोग, धन हानि, दुःख और सर्वनाश का जनक होता है। निरुत्तर तंत्र के अनुसार, माता से राजकन्या, दुहिता से धोबिन की कन्या, बहन से चाँडाली, स्नुषा से कापाली तथा योगिनी से स्वपत्नी का अर्थ लेना चाहिए। ये ही देव चक्र की पंच कन्याएं और पंचशक्तियां होती हैं। पशु चक्र में विमाता, दुहिता, भगिनी, पुत्रवधू और पत्नी को पंचशक्तियां माना जाता है। इन्हें मद्य, पुष्प, माला, वस्त्र, आभरण, सिंदूर, अगरु, कस्तूरी, विविध पुष्प एवं फल भक्तिपूर्वक अर्पित किये जाते हैं। पशुचक्र में यज्ञ करने से साधक साठ हजार वर्ष तक पृथ्वी पर राजा होता है।

रुद्रयामल तंत्र के अनुसार, राजचक्र का अनुष्ठान करने से राज्य लाभ, महाचक्र का अनुष्ठान करने से समृद्धि, देव चक्र का अनुष्ठान करने से सौभाग्य एवं वीरचक्र का अनुष्ठान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तंत्रशास्त्र में सिद्धि के लिए शवसाधना का भी विधान है। नीलतंत्र में शव साधना का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। शव साधना से साधक को संसार में विविध लाभ प्राप्त होते हैं तथा अंत में वह स्वर्गलोक जाता है।

'द् ऑर्ट ऑव तंत्र' में फिलियप रॉसन ने लिखा है कि "चक्र पूजा में भाग लेने वाले जाति एवं परंपराओं-रीतिरिवाजों के सारे भेद-भाव भुला देते हैं। सभी को यह निरंतर स्मरण करते रहना होता है कि यह सब ब्रह्म की एक क्रीड़ा है। 'कौलावलिनिर्णय'

में कहा गया है कि सभी पुरुष शिव हो जाते हैं और स्त्रियाँ देवियाँ। मांस शिव एवं मद्य शक्ति। वे आह्वान के साथ मदिरा पान करते हैं और समागम में एक हो जाते हैं।' उनके द्वारा अनुभूत आनंद ब्रह्म की ब्रह्मांडीय देह की अभिव्यक्ति है, जो देवी शक्ति के वास वाले शरीर के समस्त अंगों का शुद्धीकरण कर देता है।

इस विषय में सैद्धांतिक मतभेद है कि विवाहित युगलों के फलस्वरूप यह अनुष्ठान भली-भाँति संपन्न होता है, या ऐसे युगलों के जो परस्पर विवाहित नहीं हैं। कुल मिलाकर यह तय पाया गया कि वैवाहिक बंधन से परे यह आनुष्ठानिक समागम किया जाना चाहिए। शाक्त युगल पृथक होकर अन्य पुरुष या स्त्री के साथ यह अनुष्ठान कर सकते हैं। अनुष्ठान से पूर्व एक या अधिक कुमारी की पूजा की जाती है तथा उनमें देवी का आह्वान किया जाता है। अनुष्ठान की दूसरी रीतियों में यह भी संभव है कि एक मानव दीक्षित योगिनी-डाकिनी यह भूमिका निभाती है और उसके साथ पुरुष सदस्य किसी रूप का प्रारंभिक समागम करते हैं। उच्च कोटि की साधना में 'वीर' द्वारा अन्य अनुष्ठान भी किये जा सकते हैं। जैसे युद्ध के पूर्व राजा के लिए। कुछ विद्वानों के खंडन के बावजूद चक्र पूजा अवश्य ही मूल भारतीय कर्मकांड रहा होगा।...इसमें कोई संदेह नहीं कि चक्रपूजा अत्यन्त प्राचीन है।

फिलिप रॉसन के अनुसार-'एक अकेले जीवन में मोक्ष के लिए प्रयासरत साधक के लिए अन्य अनुष्ठान भी थे। इसमें एक स्त्री के साथ समागम करते हुए गहन आनंदमय ध्यान में तल्लीन होने का समावेश था। लेकिन साथी स्त्री का भी ऐसा ही लक्ष्य होना आवश्यक था। ऐसे ध्यान में मंत्रों, आंतरिक कल्पनाओं, योगिक मुद्राओं एवं पुरुष एवं स्त्री शक्ति के मिलन की 'जोड-तोड़' का समावेश था। अन्य तांत्रिक साधनाओं की तरह इसमें भी प्रारंभिक स्तर पर 'शारीरिक कर्म' किये जाते थे जबकि साधना के उच्च स्तर पर केवल उन्हें अंतरतम में अनुभव किया जाता था। मैथुन की भाँति भांग-गांजा भी साधना के प्रारंभिक चरणों में साधना के रूप में तब तक अपनाये जाते थे, जब तक कि साधक की अपनी विद्याएं विकसित न हो जाएं। भोग के लिए मैथुन रत् होना, भांग-गांजे का सेवन करना 'मूर्खतापूर्ण' एवं साधना में बाधा समझा जाता था।'

श्री चक्र

श्री यंत्र अथवा त्रिपुरी सुंदरी यंत्र अथवा श्री चक्र ब्रह्मांडीय प्रक्रिया के चक्र का प्रतीक है। इसे यंत्रराज भी कहा जाता है। स्वयं को समस्त विकारों से मुक्त कर व्यक्ति अपनी देह को त्रिपुर सुंदरी देवी का मंदिर बना सकता है–त्रिपुर सुंदरी अर्थात् लक्ष्मी, काली एवं सरस्वती। श्री दुर्गा सप्तशती के प्राधानिक 'रहस्यम्' के अनुसार, त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं, वे ही दृश्य और अदृश्य रूप से सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करके स्थित हैं यथा–

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी
लक्ष्यालक्ष्य स्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता।

इन्हीं महालक्ष्मी ने अपने तेज से इस संपूर्ण जगत को परिपूर्ण किया। संपूर्ण जगत को शून्य देखकर परमेश्वरी महालक्ष्मी ने सर्वप्रथम काली, फिर लक्ष्मी और अंत में सरस्वती को प्रकट किया।

श्री दुर्गा सप्तशती के प्रथम रहस्य में पराशक्ति महालक्ष्मी के स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। वे ही सब प्रपंच एवं संपूर्ण अवतारों का आदि कारण हैं। तीनों गुणों की साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी उनसे भिन्न नहीं। स्थूल–सूक्ष्म, दृश्य–अदृश्य, व्यक्त-अव्यक्त सब उनके ही रूप हैं। उनके श्री विग्रह की कांति तराशे हुए स्वर्ण की भाँति है। उनके चार हाथों में स्थित मातुलिंग कर्मराशि का, गदा क्रियाशक्ति का, खेट ज्ञानशक्ति का और पान पात्र तुरीयवृत्ति (सच्चिदानन्द स्वरूप में स्थित) का सूचक है। इसी प्रकार नाग से काल का, योनि से प्रकृति का और लिंग से पुरुष का ग्रहण ही होता है। अर्थात् प्रकृति, पुरुष और काल इन तीनों का अधिष्ठान परमेश्वरी महालक्ष्मी ही हैं।

श्री चक्र में मातृका चक्र उसके ऊपर छाया हुआ है। मान्यता है कि संस्कृत के बावन अक्षर मंत्रों के रूप में मानव देह में यत्र-तत्र उपस्थित हैं। यह शरीर मंत्रों अर्थात् रहस्यमय स्पंदन की माला ही है। श्री चक्र के विभिन्न हिस्से मानव

देह का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके कूट अर्थ की व्याख्या इस प्रकार की गयी है :

महाबिंदु : ब्रह्मरंध्र में स्थित महाबिंदु परमानंद का प्रतीक है। ब्रह्मांड के समस्त स्थूल एवं सूक्ष्म रूप इसी में समाहित हैं। इसी चक्र में चैतन्य अपनी समरस स्थिति में रहता है। शक्ति अपनी लीला के लिए महाशिव को चार अस्त्रों द्वारा पाशबद्ध करती है। ये चार अस्त्र आसक्ति, विक्षोभ, मस्तिष्क एवं इंद्रियों के प्रतीक माने गये हैं। मानव देह में बिंदु चक्र हृत्कमल के रूप में प्रकट किया जाता है। व्यक्ति एवं समष्टि का अहं इसी महाबिंदु में लीन हो जाता है। इस तरह महाबिंदु चैतन्य की समरसता का प्रतीक कहा गया है। त्रिपुरा सुंदरी इसी बिंदु चक्र में कामेश्वर (शिव) के साथ संयुक्त रहती है।

त्रिकोण चक्र : इसे योनि चक्र भी कहा जाता है। समूचे ब्रह्मांड में जो भी उपस्थित है, वह उसी का सर्वोच्च संजाल है। इस चक्र के त्रिकोण में ही तीन गुण अर्थात् सत्व, रज, तम, सांसारिक चेतना के तीन रूप, बुद्धि और अहंकार तथा संहार, ज्ञान एवं क्रिया, (जो तीन शक्तियों के प्रतीक हैं) उद्भूत होते हैं। ये ही व्यक्ति एवं समष्टि को नाना रूप प्रदान करते हैं।

अष्ट चक्र : एक-दूसरे पर अवस्थित दो त्रिकोणों से नये आठ त्रिकोणों की रचना होती है। इनकी शासिका आठ देवियाँ मनुष्य की मूलभूत आठ भावनाओं का नियमन करती हैं। यह चक्र भी पूर्ण सफलता प्रदान करता है।

अंतर्दश चक्र : इस चक्र के आंतरिक दस चक्र पाँच ज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच कर्मेन्द्रियों के प्रतीक हैं।

बहिर्दश चक्र : दस बाह्यत्रिकोण ऐंद्रिक वस्तुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

चतुर्दश चक्र : चौदह त्रिकोण पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार और चेतना के प्रतीक माने गये हैं। इन चौदह चक्रों में स्थित शक्ति की प्रतिनिधि देवियां मन और शरीर के क्रियाकलापों को नियमित करती हैं। इस चक्र की नियमनकारी शक्ति मन और शरीर में समन्वय लाती है।

अष्टदल : यह चक्र मानवीय व्यक्तित्व की गतिशीलता का स्रोत तथा समस्त आशाओं, आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला माना गया है। वह व्यक्ति में सृजनात्मकता का स्रोत है।

षोडशदल चक्र : इस चक्र के सोलह कमलदल पांच पदार्थों, पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों एवं मन के प्रतीक हैं। षोडशदल की अधिष्ठात्री देवी शरीर और मन में समन्वय स्थापित करती है।

भूपुर चक्र : यह तीन वृत्तों द्वारा दर्शाया जाता है। ये वृत्त प्रकाश के तीन

रूप सूर्य, चंद्र एवं अग्नि के प्रतीक हैं। वे पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी वाणी के प्रतीक भी माने जाते हैं।

चतुरस्त्र चक्र : व्यक्ति के मन एवं देह के सम्मिलन का प्रतीक है। वह शिव-शक्ति के संयोग को भी दर्शाता है। चतुर्भुज चेतना को आविष्ट किये शरीर के सूचक हैं।

इस तरह श्री यंत्र व्यक्ति के मन एवं देह के संजाल का प्रतीक है। श्री यंत्र के मध्य से स्पंद, स्फुरण एवं क्षोभ के रूप में व्यक्ति की सृजनात्मकता शक्ति उद्भूत होती है। इसी मध्य क्षेत्र से सृजनात्मकता के विभिन्न चरण भी प्रकट होते हैं। विभिन्न सृजनात्मक अभिव्यक्तियों में वे स्वयं को प्रकट करते हैं। सृजनात्मकता के बाह्य रूप विश्व को सम्मोहित करते हैं, इसीलिए उन्हें त्रैलोक्य मोहन भी कहा गया है। श्री यंत्र से उद्भूत स्पंद से ही नाना-रूपी समष्टि प्रकट होती है। सर्वप्रथम चैतन्य के स्तर से ब्रह्मांड का जन्म होता है, जो बाद में जगत रूप में संकुचित हो जाता है। इसे ही 'चिद् विलास' भी कहा गया है। तंत्र विज्ञान के अनुसार विशुद्ध चैतन्य सूक्ष्म, स्वैच्छिक सनातन स्पंद के माध्यम से अपने प्रतीकात्मक संदेश को प्रकट करता है। नाद एवं प्रकाश, सृजनात्मकता के सभी रूप इसी स्पंद के प्रस्फुटन हैं। स्पंद ही सत्य को प्रकट करता है।

अपनी ऊर्ध्वावस्था में कुंडलिनी शक्ति नाद की तरंगों को जन्म देती है, जो ब्रह्मांडीय नाद अर्थात् ऊं के साथ लयबद्ध होती हैं। ऊर्ध्व कुंडलिनी शक्ति ही स्पंद के अर्थ को समझ सकती है। साधक अपनी अंतस्फूर्त चेतना द्वारा उत्पन्न ज्ञान की सहायता से कर्म के शुभत्व-अशुभत्व को जान सकता है। स्पंद से तदाकार साधक इच्छामुक्त हो जाता है तथा अपने में निहित सदाशिव के अंतस्फूर्त चैतन्य को प्राप्त कर लेता है। तंत्र शास्त्र विशुद्ध चैतन्य को तरंगों के रूप में मानता है। इस ब्रह्मांड में समस्त तरंगें, लहरें, गतिविधियां, कार्यकलाप स्पंद के ही प्रस्फुटन हैं, जो प्रकृति में भी व्याप्त हैं, और उसके पार भी। योगी तुरीयावस्था में स्पंद स्वयं उद्भूत, स्वच्छंद अंतस्फूर्त चेतना को उपलब्ध करता है। इसे ही अंतर्दृष्टि भी कहा जा सकता है, जिसके माध्यम से योगी त्रिकालज्ञ भी बन जाता है।

स्वच्छंद योग में पतंजलि के चित्त-वृत्ति निरोध के विपरीत चैतन्य की विशुद्ध स्वच्छंदता का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। कहा गया है कि एक स्वच्छंद योगी अपनी चेतना को शुद्ध स्वच्छंदता की स्थिति तक पहुँचा सकता है और शुद्ध स्वतंत्रता पा सकता है। स्वच्छंद भैरव अर्थात् शिव में यही शुद्ध स्वच्छंदता है, जो ब्रह्मांडीय शून्य के पार है। ब्रह्मांड में समस्त वैविध्य इसी स्वच्छंदता का प्रस्फुटन है।

शिव और शक्ति

शिव और शक्ति पौराणिक चरित्र प्रतीत होते हैं, तथापि तंत्रशास्त्र में वे परम सत्य के दो पक्षों के ही प्रतीक हैं। शिव विशुद्ध चैतन्य हैं जबकि शक्ति विशुद्ध ऊर्जा या शक्ति। यों वे एक हैं तथापि लीला के लिए पृथक स्वरूप धरते हैं। शिव सनातन ध्यानावस्था में रहते हैं। शक्ति विशुद्ध चैतन्य के स्तर से उतरकर नानारूपी ब्रह्मांड में प्रकट होती हैं। शिव साक्षी बने शक्ति की सृष्टि लीला को देखते रहते हैं। व्यक्तियों की इन्द्रियानुभूति एवं प्रज्ञा तथा प्रकृति के विविध रूपों के मूल में शक्ति ही हैं। वे प्रत्येक व्यक्ति में कुंडलिनी शक्ति के रूप में वास करती हैं। वे सुप्तावस्था से जागृत हो विशुद्ध चैतन्य के स्तर पर आरोहण करती हैं। तंत्रशास्त्र की मान्यता है कि जो ब्रह्मांड में है, वही प्रत्येक व्यक्ति में भी है। वस्तुतः व्यक्ति समूचे ब्रह्मांड की एक लघु अनुकृति ही है। व्यक्ति अपने चैतन्य प्रयत्न द्वारा इसी ब्रह्मांड से संपर्क स्थापित करता है।

कुंडलिनी शक्ति के संबंध में विपुल साहित्य उपलब्ध है। यह षट् चक्रों पर विधिवत् ध्यान एवं मंत्र जाप द्वारा जागृत होकर प्रत्येक चक्र को पार कर सहास्रार में जाकर परम शिव से मिलती है। इसे षट्चक्र भेदन कहा जाता है और प्रत्येक चक्र के भेदन के उपरांत साधक अनेकानेक सिद्धियों से संपन्न होता जाता है। कभी-कभी आध्यात्मिक रूप से परिपक्व होने पर या गुरु कृपा से 'शक्तिपात' द्वारा भी यह कुंडलिनी जागृत हो जाती है। वह सुषुम्ना नाड़ी से होते हुए सहस्त्रार में निवास करते परमशिव या सदाशिव से मिल जाती है। सहस्त्रार विशुद्ध चैतन्य का क्षेत्र है।

तांत्रिक योगी 'देह परिशोधन' एवं साधना द्वारा इस स्थिति पर पहुँचता है। वह निष्काम भाव से कर्म करता है, फलतः उसे अपने कर्मों का फल नहीं भुगतना पड़ता। समस्त सृष्टि के प्रति उसमें एक आदर का भाव होता है। वह प्रकृति के साथ मृदु व्यवहार करता है तथा उसके सौंदर्य में वृद्धि करता है। वह इच्छा

मुक्त होता है, अतः उसकी भौतिक आवश्यकताएँ न्यूनतम होती हैं। भोजन में शुद्धता, वेशभूषा में स्वच्छता उसकी विशेषता कही जा सकती हैं। वह नित्य अपने आराध्य की मूर्ति को स्नान करा, नियमित पूजा करता है। न्यास द्वारा आराध्य का आह्वान कर वह ध्यान में तल्लीन हो जाता है। उसकी तंत्र साधना चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं होती। वह मुक्ति के लिए तंत्र योग को एक जीवन शैली के रूप में अपनाता है।

तांत्रिक दृष्टिकोण से मानवीय चेतना का कोई ओर-छोर नहीं। वह सीमित नहीं असीमित है। तांत्रिक योगी सांसारिक चेतना को पार कर असीमित विशुद्ध चैतन्यावस्था में विचर सकता है। आम आदमी की इंद्रियानुभूति और वैज्ञानिकों का तकनीकी कौशल जहां समाप्त होता है, तांत्रिक की अंतस्फूर्त चेतना वहां से प्रारंभ होती है। उसकी साधना के फलस्वरूप उसके चारों ओर एक ऐसा आभा मंडल बन जाता है, जिसके कारण तांत्रिक योगी इच्छा मात्र से विरोधी तत्त्वों को समाप्त कर सकता है। यही नहीं, उसमें चेतना के उन उच्चतम स्तरों तक पहुँचने की क्षमता आ जाती है, जहां पहुँचकर वह प्रकृति के नियमों को भी नियंत्रण में रख सकता है।

'ए मोमेंट इन टाइम' औंध के नरेश एवं भारतीय राजनयिक अप्पा पंत की संस्मरणात्मक कृति है। उसमें दिया गया एक प्रसंग उपरोक्त कथन को सिद्ध करता है।

स्व. प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू एक बार सिक्किम-भूटान की यात्रा पर गये थे। तब अप्पा पंत वहां राजदूत के रूप में नियुक्त थे। नेहरू जी की यात्रा के समय अचानक काले मेघ घिर आये और भीषण वर्षा के कारण वे यात्रा नहीं कर पाएंगे, यह सभी ने मान लिया। अप्पा पंत एक तिब्बती मठ के वयोवृद्ध लामा के पास गये। उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे नेहरू जी के यात्रा मार्ग पर वर्षा न हो, ऐसा कुछ करें। अप्पा पंत स्वयं भी एक आध्यात्मिक वृत्ति के व्यक्ति थे तथा जानते थे कि वे धर्म गुरु कुछ समय के लिए वर्षा भी रोक सकते हैं। उन तिब्बती धर्म गुरु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा कहा कि वे निश्‍चिंत होकर जाएं। प्रधानमंत्री के यात्रा काल में वर्षा नहीं होगी।

और ऐसा ही हुआ।

अप्पा पंत ने लिखा है कि यात्रा की शुरुआत के समय अचानक बादल छट गये और धूप निकल आयी। लेकिन सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी कि नेहरू जी के यात्रा मार्ग पर ही धूप थी। उससे कुछ दूर दोनों ओर काफी तेज वर्षा की झड़ी लगी हुई थी। मात्र विज्ञान पर ही भरोसा करने वाले लोगों को यह प्रसंग अविश्वसनीय लग सकता है, तथापि अप्पा पंत के इस प्रसंग पर अविश्वास करने का भी कोई कारण नजर नहीं आता।

प्रकृति वैविध्यपूर्ण, भिन्नतायुक्त साथ ही सुगठित भी है। अणु, परमाणु, कोशिकाएँ बहुकोषीय जीवन, मानवीय व्यक्तित्व, सामाजिक-सांस्कृतिक समूह, ये सब प्रकृति के ही घटक हैं। भौतिक पदार्थ अणुओं से बना है। डेमोक्रिटियस का विश्वास था कि अणु ही भौतिक सत्ता या पदार्थ की अंतिम एवं विघटित न होने वाली इकाई है। यह मान्यता सर्वस्वीकृत है कि परमाणु ही पृथ्वी पर शक्ति साधना का अत्यन्त बलशाली माध्यम है। उनका संलयन और विखंडन अर्थात् 'फ्यूज़न' और 'फिज़न' दोनों ही असीमित शक्ति के स्रोत हैं।

तंत्र शास्त्र के अनुसार, अणु एक बंदी चेतना के प्रतीक हैं। अणुओं की बंदी चेतना इलेक्ट्रान एवं अन्य कणों के माध्यम से एक लयात्मक प्रवाह में विस्तार पाना चाहती है। स्वेच्छिक या स्वयं उद्‌भूत स्पंद का सिद्धांत अणु के नाभिक के चारों ओर घूमते इलेक्ट्रानों एवं अन्य कणों में अनंत गति भरता है। अणु प्रणाली में चेतना का प्रकाश ऊर्जा कणों या फोटोन के रूप में स्वयं को प्रगट करता है। अणु के नाभिक के चारों ओर घूमते इलेक्ट्रान एक गतिशील चक्र का चित्र उपस्थित करते हैं। अणु प्रणालियां शिव (विशुद्ध चैतन्य) एवं शक्ति (विशुद्ध ऊर्जा या शक्ति) की लीला के ही लघु प्रतीक कहे जा सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने इस बात का भी पता लगाया है कि समस्त भौतिक प्रणालियों

में एक असंबद्धता भी पायी जाती है। लेकिन वे जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। ऐसा क्यों होता है? इस समस्या के निदान के लिए वैज्ञानिकों ने 'वेव्स' अर्थात् लहरों की अवधारणा प्रस्तुत की। पर इससे भी समस्या दूर नहीं हुई क्योंकि लहरों में ऊर्जा के लघुत्तम पैकटों रूप में संकुचित हो जाने की क्षमता होती है। इन पैकटों को 'क्वांटा' या ऊर्जा कहा जाता है। उदाहरण के लिए इलेक्ट्रान निरंतर फोटोन या ऊर्जा कण विसृत करते और उन्हें पुनः अपने में समाहित करते रहते हैं। यद्यपि कण लहरों से जुड़े रहते हैं तथापि वे परस्पर असंबद्ध भी होते हैं। एक बलशाली शक्ति ही ऊर्जा पैकटों को अणु-प्रणाली से जोड़े रखती है।

डीएनए का स्वरूप कुछ इस तरह होता है–

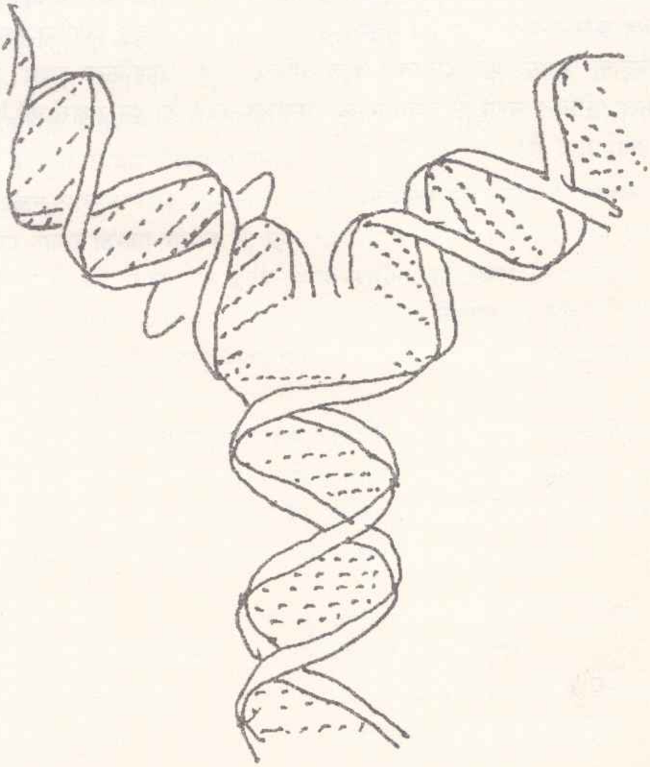

जबकि जीवंत प्रणाली में ऐसी कोई असंबद्धता नहीं होती। उसकी सुगठित संबद्धता और एकता उसके सेलुलर और मालिक्यूलर प्रणालियों के बीच एक त्वरित संचार के कारण बनी रहती है। एक कोशिका के भीतर संदेश प्रेषण का कार्य जीन करते हैं। एक सजीव (लिविंग आर्गेनिज़्म) के जीनों में स्वयं का प्रतिरूप बनाने की क्षमता होती है और वे एक विकसित जीव की सभी कोशिकाओं को ही नहीं अपने प्रतिरूपों को भी यहीं संदेश प्रेषित करते हैं। जीन न्यूक्लियों, प्रोटोनों से बने होते हैं अर्थात् उनमें न्यूक्लिक एसिड होता है, जो न्यूक्लि प्रोटीन से जुड़ा रहता है। रासायनिक परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि न्यूक्लि प्रोटीन डेसोक्सिरीबो न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) और रिबोन्यूक्लिक एसिड (आर.एन.ए.), हिस्टोन एवं अ-हिस्टोन प्रोटीनों से बने होते हैं। डी.एन.ए. में ये नाइट्रोजेनिक कंपाउंड होते हैं, एडेनाइन (ए), गुआनाइन (जी), सिस्टोसाइन (सी) और थायमिन (टी)। इन चार रासायनिक तत्त्वों को 'जैविक अक्षर' कहा जा सकता है, जिनके जरिए किसी जीवित प्राणी की पीढ़ियां-दर-पीढ़ियां सूचनाएँ प्रवाहित होती रहती हैं। वे अभिभावकों की पैतृक सूचनाओं को उनकी संतानों को प्रेषित करते हैं और यह क्रम चलता रहता है। तंत्रशास्त्र ने सदियों पहले यह स्थापित किया कि इन 'जैविक अक्षरों' की बनिस्बत कुछ अधिक सूक्ष्म 'साइकिक अक्षर' होते हैं जो किसी जीवित प्राणी के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं। इन अक्षरों को 'मातृका भेद' कहा गया है।

तांत्रिक चेतना

तांत्रिक चेतना को आध्यात्मिक चेतना भी कहा जा सकता है। लेकिन इसे प्राप्त करने के लिए साधक को स्वयं को साधना द्वारा तैयार करना पड़ता है। तांत्रिक चेतना की प्राप्ति के लिए किसी भी साधक को तन से स्वस्थ, मन से संतुलित होना चाहिए। राजसिक और तामसिक भावों का नाश कर उसे स्वयं को सात्विक भाव से आलोकित करना होता है। खान-पान हमारे तन-मन दोनों पर प्रभाव डालता है, अतः हमारा खान-पान भी शुद्ध होना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य में एक गहरा संबंध होता है। शुद्ध तन-मन के लिए तंत्र शास्त्र में कुछ नियम निर्धारित किये गये हैं।

खान-पान के लिए शाकाहारी भोजन अनिवार्य कहा गया है। साधक अपने उदर का आधा हिस्सा भोजन से, एक चौथाई हिस्सा जल से भरे तथा शेष एक चौथाई हिस्से को रिक्त रखे ताकि वायु-संचरण को स्थान मिल सके। भोजन को आनंद एवं संतुष्टि के भाव से ग्रहण करने का विधान है। मद्यपान से बचने के लिए कहा गया है। मद्यपान आवश्यक हो तो उसे पूजा द्वारा शुद्ध किया जाए, अन्यथा वह विष हो जाता है।

खान-पान की शुद्धता के साथ आसनों का भी बेहद महत्त्व है। साधक के लिए 82 प्रकार के आसन बताये गये हैं। उचित आसनों द्वारा शारीरिक-मानसिक व्याधियों से मुक्त रहा जा सकता है। आसन शारीरिक क्षय को भी रोकते हैं। यहां विभिन्न आसनों का संक्षिप्त लाभ प्रस्तुत है :

1. गर्भासन : तनाव सहने की क्षमता में वृद्धि
2. उत्थत् द्विपदासन : वायु का शुद्धिकरण
3. पश्चिमोत्तासन : उदर रोगों एवं अपच का निराकरण
4. धनुरासन : आलस्य-निवारण, साहस-वृद्धि

5. हलासन : अपच, कब्ज, मधुमेह का निवारण, सदैव स्फूर्तिवान, बलवान
6. शीर्षासन : स्वास्थ्य, सौंदर्य और शारीरिक बल वृद्धि
7. चक्रासन : शरीर चुस्त-दुरुस्त
8. सुप्त वज्रासन : एकाग्रता में वृद्धि
9. मत्स्येंद्रासन : वीर्य वृद्धि
10. वृश्चिकासन : मांसपेशियों एवं स्नायु-तंत्र को बल, चिंतन एवं स्मरण शक्ति तीव्र
11. बकासन : जल में देर तक रहने की क्षमता में वृद्धि
12. मुक्तासन : गुह्य शक्तियों की प्राप्ति
13. पवनमुक्तासन : अपान वायु का निस्सरण
14. सूर्यासन : शारीरिक ताप में वृद्धि
15. सूर्य वेदासन : नेत्र रोगों का निराकरण
16. भस्त्रिकासन : बुखार से निवृत्ति, रक्त का शुद्धिकरण, पाचन शक्ति में वृद्धि
17. सवित्र-समाधिआसन : शारीरिक बल, बुद्धि का विकास
18. अचिंत्य आसन : चेतना में वृद्धि
19. ब्रह्मज्वरांकुश आसन : रोग निवारण
20. उड्डारक आसन : गुदा की मांस पेशियों की मजबूती
21. मृत्युभंजकासन : शरीर में वायु संतुलन
22. आत्मरमासन : चिंता मुक्ति
23. भैरवासन : कुंडलिनी में सक्रियता, यकृत वृद्धि के दोष दूर
24. गरुड़ासन : सक्रियता में वृद्धि
25. गोमुखासन : मुख रोगों से मुक्ति
26. वातायनासन : स्वास्थ्य की उन्नति
27. सिद्धमुक्तावलि आसन : स्फूर्ति में वृद्धि
28. नेति आसन : शरीर में शुद्धता
29. पूर्वासन : अतीत की स्मृति का जागरण
30. पद्मासन : समस्त इच्छाओं की पूर्ति
31. सिंहासन : पाचन शक्ति में वृद्धि
32. वज्रासन : दीर्घायु कारक

33. भ्रदासन : एकाग्रता में वृद्धि
34. सिद्धासन : स्नायु-तंत्र की शुद्धि
35. ऊर्ध्व पद्मासन : रक्त-शुद्धि, रीढ़ की मजबूती
36. हस्ताधार शीर्षासन : मस्तिष्क की शक्ति
37. ऊर्ध्व सर्वांगासन : पाचन शक्ति वृद्धि, स्वतंत्र चेतना में वृद्धि
38. हस्त पादांगुष्ठासन : गर्दन, कमर, नाक, उदर की पुष्टि
39. पादांगुष्ठासन : नेत्र-ज्योति में निखार
40. प्रसिद्ध सिद्धासन : सभी रोगों से मुक्ति
41. जानुलग्नाहस्तासन : उदर की शुद्धि
42. एकपादाशीर्षासन : संपूर्ण शरीर की शुद्धि
43. द्विपादाशीर्षासन : आनंद वृद्धि
44. एक हस्तासन : पार्श्व के दर्द से मुक्ति
45. पादा हस्तासन : बल वृद्धि
46. कर्ण पीड़ा-मूलासन : क्षुधा में वृद्धि
47. कोणासन : उदर रोगों से मुक्ति
48. त्रिकोणासन : कमर दर्द से मुक्ति
49. चतुष्कोणासन : प्रज्ञा प्रखर
50. वृकासन : स्नायु-तंत्र में मजबूती
51. बद्ध पद्मासन : मानसिक शांति
52. वियोगासन : बुखार से मुक्ति
53. विलोमासन : दीर्घकालीन रोगों का निवारण
54. योन्यासन : गुदा के रोगों से मुक्ति
55. गुप्तांगासन : संभावित रोगों से मुक्ति
56. उत्कट आसन : पैरों में शक्ति
57. शकासन : मिरगी से मुक्ति
58. संकटासन : कमर दर्द से मुक्ति
59. अंधासन : रतौंधी का निवारण
60. रुद्रासन : निर्भयता में वृद्धि
61. शवासन : थकान से मुक्ति
62. वृषासन : संभोग शक्ति में वृद्धि
63. गोपुच्छासन : पापों से मुक्ति
64. उशिरासन : गर्मी-सर्दी सहने की क्षमता में वृद्धि

65. मरकटासन : नाभि प्रदेश स्वस्थ
66. मत्स्यासन : शरीर में स्थिरता
67. स्वस्तिकासन : शारीरिक-मानसिक शांति
68. मकरासन : शांति की प्राप्ति
69. कच्छपासन : मस्तिष्क स्थिर
70. मंडूकासन : शरीर सक्रिय, स्फूर्तिवान
71. उत्तमंडूकासन : तैराकी की कला में वृद्धि
72. हंसासन : मानसिक शांति
73. प्रण्यामासन : रक्त वाहिकाओं एवं नाड़ियों की शुद्धि
74. मयूरासन : श्रवण शक्ति में वृद्धि, लीवर के रोगों से मुक्ति
75. कुक्कुटासन : कामेच्छा में न्यूनता
76. सुप्तपद्मासन : उदर रोगों का निवारण
77. शलभासन : कब्ज निवारण, बाहों में बल
78. योगासन : मस्तिष्क संतुलन
79. सर्पासन : अपच में कमी
80. उतिष्ठ पद्मासन : श्वास रोग से मुक्ति
81. वीरासन : धैर्य में वृद्धि
82. शांतिप्रियासन : कल्याण एवं आनंद में वृद्धि

आसनों का शारीरिक दृष्टि से महत्त्व तो है ही, वे व्यक्ति को आध्यात्मिकता की ओर ले जाने में भी सहायक होते हैं।

प्राणायाम : प्राणायाम हमारे सांस लेने-छोड़ने की प्रक्रिया को नियंत्रित-नियमित करता है। प्राणायाम से तन-मन दोनों शुद्ध होते हैं। प्राणायाम सभी प्रकार के विकारों से मुक्ति प्रदान करता है। प्राणायाम में सिद्ध साधक पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के नियम का भी उल्लंघन कर सकते हैं। प्राणायाम हमारी नाड़ियों को भी शुद्ध करता है तथा उनसे विषैले तत्त्वों को हटाता है। प्राणायाम से शरीर में संतुलन स्थापित होता है। वह हमारे स्नायु-तंत्र को भी मजबूत और सक्रिय बनाता है। बौद्ध धर्म में प्रचलित विपश्यना पद्धति, 'द ऑट ऑव लिविंग' के प्रणेता श्री श्री रविशंकर की 'सुदर्शन क्रिया' का आधार प्राणायाम ही है।

मुद्राएँ : आसनों को सिद्ध कर लेने अर्थात् उनमें निष्णात होने के बाद मुद्राओं का अभ्यास किया जा जाता है। मुद्राएं किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व की अवस्था को दर्शाती हैं। वे प्राण और अपान वायु के मिलन को स्थिर बनाती

हैं। मुद्राओं से शारीरिक और मानसिक संतुलन भी बना रहता है। घेरंड संहिता में पच्चीस मुद्राओं का उल्लेख है, जबकि हठ प्रदीपिका में दस। शिव संहिता में महामुद्रा, महाबंध, विपरीतकर्णी, उड्डियान, जालंधर, मूलबंध, खेचरी, वज्रोली और शक्तिचालन की चर्चा है। मुद्राओं के अभ्यास के अनेक लाभ हैं। उनके द्वारा व्यक्ति अपने शरीरिक ताप को रोक सकता है। कुछ मुद्राएँ शरीर के सूक्ष्मीकरण में सहायक बतायी गयी हैं। उनके अभ्यास से मस्तिष्क शांत, संतुलित होता है, साधक को ज्योति के भी दर्शन होते हैं। उनका कुंडलिनी शक्ति पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। शक्ति चालन मुद्रा कुंडलिनी को ऊर्ध्वमुखी करती है।

कुंडलिनी शक्ति : कुंडलिनी शक्ति को विशुद्ध चैतन्य का सृजनात्मक पक्ष कहा गया है। वह प्रत्येक व्यक्ति में निहित शक्ति तत्त्व की प्रतीक है। रीढ़ के अधोभाग में वह सुप्तावस्था में रहती है। आसन, प्राणायाम, मुद्राओं द्वारा इसे जागृत किया जा सकता है। तंत्र योग के माध्यम से उसके सहस्त्रार में सदाशिव के मिलन को स्थायी रखा जा सकता है।

पिंड सिद्धि : पिंड सिद्धि द्वारा साधक अपने शरीर का आध्यात्मिकीकरण करता है। जब वह पिंड (निज शरीर) एवं ब्रह्मांड की समता के सार तत्त्व को जान लेता है तो उसे अंतर्ज्ञान प्राप्त हो जाता है। उसके समक्ष ब्रह्मांड का वास्तविक स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। अपने शरीर में स्थित चक्रों पर ध्यान लगाने से उसे अपनी देह की प्रकृति का भी ज्ञान मिल जाता है।

कुंडलिनी शक्ति की परिकल्पना

हमारे शरीर के भीतर 72 हजार नाड़ियाँ हैं, जिनमें 10 ऐसी प्रमुख नाड़ियाँ हैं जो प्राण शक्ति का वहन करती हैं। इन नाड़ियों के नाम हैं : 1. इड़ा, 2. पिगंला, 3. सुषुम्ना, 4. गांधारी, 5. हस्तजिव्हा, 6. पूषा, 7. यशस्विनी, 8. अलंबुषा 9. कुहू और 10. शंखिनी। इनमें इड़ा मेरुदंड अर्थात रीढ़ के बाहर, मूलाधार चक्र के त्रिकोण के बायीं ओर से आरंभ हो नाक में बायीं ओर समाप्त होती है। इसी तरह पिंगला मूलाधार चक्र के दायीं ओर के त्रिकोण से दायीं ओर से प्रारंभ हो नाक के दायीं ओर समाप्त होती है। सुषुम्ना मेरुदंड के मध्य में, मूलाधार चक्र के त्रिकोण के मध्य से प्रारंभ हो, मस्तिष्क के भीतर ब्रह्रंध्र में समाप्त होती है। अन्य नाड़ियों की स्थिति इस प्रकार है। गांधारी बाएं नेत्र में, हस्तजिव्हा दाएं नेत्र में, पूषा : दायां कर्ण, यशस्विनी : बायां कर्ण, अलंबुषा : मुख, कुहू : लिंग, शंखिनी : गुदा। षट चक्रों अर्थात् छह चक्रों की स्थिति इसी सुषुम्ना नाड़ी में है। सुषुम्ना नाड़ी के ही अन्य नाम हैं–शून्यपदवी, ब्रह्मरंध्री, महायंरी, शाम्भवी, श्मशानी।

योगशिखोपनिषद् के अनुसार–"सुषुम्ना ही परम तीर्थ, परम जप, परम ध्यान है और उसी से परागति प्राप्त होती है। सुषुम्ना के भीतर वज्रानाड़ी तथा वज्रानाड़ी के भीतर ब्रह्मनाड़ी है। वज्रा का एक अन्य नाम चित्रिणी भी कहा गया है। इसे मकड़ी के जाले से भी अधिक सूक्ष्म कहा गया है। इसे शुद्ध ज्ञान स्वरूप शक्ति कहा गया है। यही चित्रिणी नाड़ी छह चक्रों को आबद्ध करती है। चित्रिणी के भीतर ही ब्रह्मनाड़ी है।

षटचक्र–इड़ा एवं पिंगला मेरुदंड के बाहर की ओर दाएँ-बाएँ ऊपर की ओर बढ़ते हुए मेरुदंड के भीतर सुषुम्ना नाड़ी से पाँच स्थानों पर संबद्ध होती हैं। उनका यह जुड़ाव एक ग्रंथिका बन जाता है। कुंडलिनी तंत्र में इन्हें ही 'चक्र' माना गया है। अंग्रेजी में इन्हें 'प्लेक्सस' कहा जाता है। प्रथम चक्र मूलाधार चक्र (Pelvic Plexus) है। यह गुदा से ऊपर तथा जनेंद्रिय से नीचे सुषुम्ना के आरंभ या मुख

पर स्थित है। द्वितीय चक्र Hypogastric plexus स्वाधिष्ठान चक्र है, जो जनेन्द्रिय के मूल में है। तृतीय चक्र मणिपूर नाभि के मूल में, अनाहत चक्र हृदय प्रदेश के पास तथा विशुद्ध चक्र कंठ में है। भृकुटि के मध्य में आज्ञा चक्र तथा मस्तिष्क में सहस्त्रार चक्र है। मूलाधार चक्र से आरंभ होने वाली समस्त नाड़ियों का यही अंतिम बिंदु है। मणिपुर चक्र Epigastric plexus, अनाहत चक्र Cordic plexus, आज्ञाचक्र Medula plexus, और सहस्त्रार चक्र Cerebral Plexus कहा जाता है।

गोरखनाथ ने शरीर में द्वादश चक्रों की स्थिति बतायी है। ये हैं–1. आधार चक्र (गुदा में), 2. स्वाधिष्ठान चक्र (लिंग में), 3. कुंडलिनी चक्र (गर्भ स्थान में), 4. मणिपूरक चक्र (नाभि में), 5. मनश्चक्र (नाभि के मध्य में), 6. अनाहत चक्र (हृदय मे), 7. विशुद्ध चक्र (कंठ में), 8. बलवा चक्र (नासिका में), 9. आज्ञा चक्र (भृकुटि मध्य में), 10. पूर्णगिरि पाटल चक्र (ललाट में), 11. सहस्त्रदल (मूर्धा में), 12. ब्रह्मरंध अमर स्थान (सिर के मध्य में)।

बौद्ध तंत्र में चक्र

बौद्ध तंत्र शरीर में चार चक्रों की स्थिति मानता है। ये हैं--निर्माण चक्र, संभोग चक्र, धर्म चक्र तथा उष्णीश चक्र। निर्माण चक्र निर्माण काय से, संभोग चक्र संभोग काय से, धर्मचक्र धर्म काय से तथा उष्णीश चक्र वजुकाय से संबद्ध है। इन्हें चार मुद्राओं से भी संबंधित किया गया है–ये मुद्राएँ हैं–क्रमशः कर्ममुद्रा, धर्म मुद्रा, महामुद्रा तथा समय मुद्रा। जिस तरह योग वर्णित षट् चक्रों में तत्त्वों की स्थिति की कल्पना की गयी है, उसी तरह बौद्ध तंत्र के चक्रों में भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तत्त्व की कल्पना है। इनकी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं, लोचन (पृथ्वी), मामकी (जल), पांडरा (अग्नि), एवं तारा (वायु)। ये देवियाँ चार स्कंधों की भी देवियाँ हैं तथा मुद्राएँ इन्हीं से क्रमशः संबंधित हैं। जिस भाँति षट् चक्रों में मातृकाक्षरों की उपस्थिति कल्पित है, उसी तरह इन देवियों के भी मातृकाक्षर हैं–क्रमशः ए, व, म, तथा य। 'ए' कार को माता का, 'व' कार को पिता का प्रतीक माना गया है। ये क्रमशः चंद्रमा एवं प्रज्ञा तथा सूर्य एवं उपाय के भी सूचक हैं। बिंदु उनका सम्मिश्रण एवं अनाहत ज्ञान का प्रतीक है।

इन चार चक्रों की अधिष्ठात्री देवियों को करुणा, मैत्री और एकाग्रता एवं मुदिता तथा उपेक्षा का भी प्रतीक माना गया है। इनके साथ चार आनंद एवं चार योग हैं। आनंद हैं–आनंद, परमानंद, विरमानंद एवं सहजानंद तथा साधना के लिए

योग हैं–विशुद्धि योग, धर्म योग, मंत्रयोग एवं संस्थान योग। इन चार योगों की अवस्थाओं को पार कर ही कोई साधक मुक्ति पा सकता है।

बौद्ध तंत्र के चक्रों में भी षट् चक्रों की भाँति कमल है। बौद्ध तंत्र में हे कार महाकरुणा का, ए कार भग का तथा व कार वज्र का प्रतीक है। तंत्र की एक मान्यता है, जो चीजें गिराती हैं, वे ही उठा भी सकती हैं। हे वज्र तंत्र इसी बात को यों कहता है–'राग से ही बंधन और राग से ही मुक्ति।'

षट–चक्र भेदन के उपाय

षटचक्र भेदन अर्थात् कुंडलिनी–जागरण के लिए तंत्र योग के अलावा सहज योग, हठयोग का भी आश्रय लिया जाता है। कुंडलिनी–शक्ति के जागरण से मिलने वाली सिद्धियों का इतना प्रचार हुआ है कि हर व्यक्ति अपनी कुंडलिनी जागृत कर उन्हें पाना चाहता है। ऐसी इच्छा या लालसा तंत्रयोग या तत्संबंधी अन्य योगों के मूल उद्देश्य के ही सर्वथा विपरीत मानी जाएगी। इन सब योगों का उद्देश्य मनुष्य को आध्यात्मिकता के उस परम शिखर पर ले जाना है, जहां वह स्वयं में विश्वात्मा को और विश्वात्मा में स्वयं को देखता है। इस स्थिति को पा लेने के बाद उसे भौतिक सुख–समृद्धि, सांसारिक प्रपंच, धर्मगत, जातिगत, वर्गगत भेदभाव महत्त्वहीन लगने लगते हैं। वह कण–कण में, हर जीव–जंतु, पादप–पुष्प, प्राणियों में, सार रूप में समस्त चराचर जगत के साथ एक आत्मीयता, एक एकात्मकता का अनुभव करने लगता है। इसीलिए सिद्ध तांत्रिक और सच्चे साधु–संन्यासी त्यागमय, अपरिग्रही, प्रचार शून्य जीवन बिताते हैं ताकि उनकी आध्यात्मिक यात्रा में विघ्न न पड़े। प्रसिद्धि का लोभ चाहने वाला तांत्रिक या कोई साधु–संत 'चमत्कारों' से भले लोगों को मोह ले, लेकिन वह उनका कोई भला नहीं कर पाता। वरन् वह लोगों की भावनाओं, दुःख–दर्दों, लालसाओं का शोषण ही करता है। इस कथन के प्रमाण हैं वे समाचार जो आये दिन प्रकाशित होते रहते हैं।

कुंडलिनी क्या है?

तंत्र मर्मज्ञ सर जॉन वुडरोफ के अनुसार, "कुंडलिनी शक्ति एक चेतन और महान सामर्थ्यवान शक्ति है, जिसकी तुलना अन्य किसी पदार्थ या प्रवाह से नहीं की जा

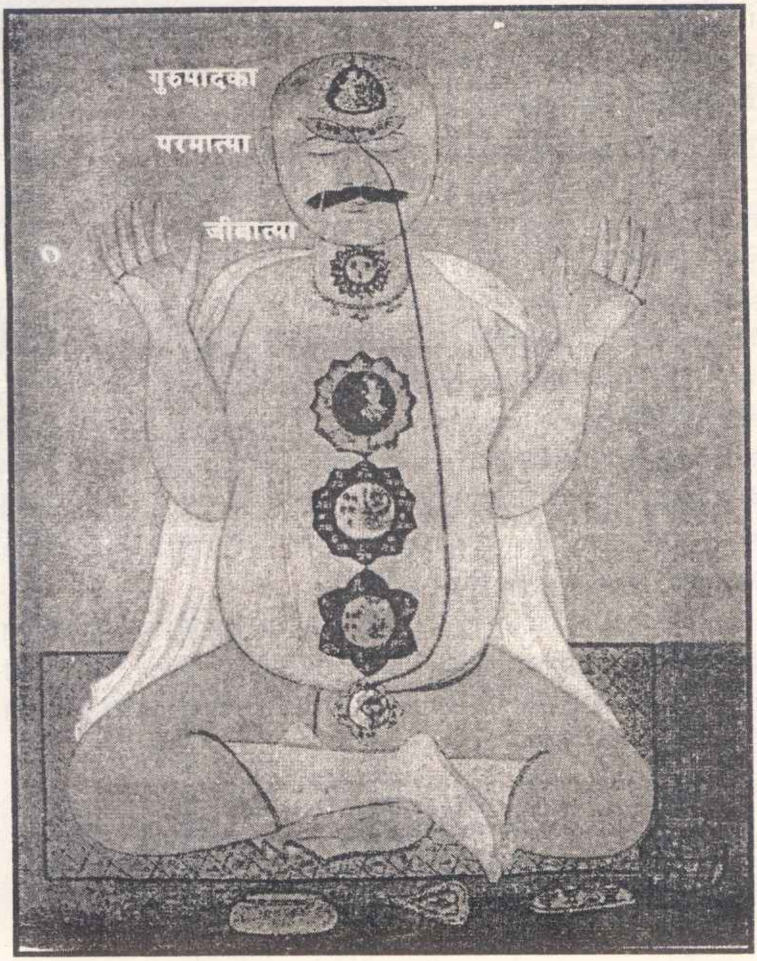
गुरुपादुका
परमात्मा
जीवात्मा

शरीर में चक्र निरूपण (पेंटिंग 1820, कांगड़ा हिमाचल)

सकती है। मेरे विचार में नाड़ी शक्ति कुंडलिनी का एक स्थूल रूप ही है, वह मूलतः नाड़ी संस्थान या उसका उत्पादन नहीं है। वह न कोई भौतिक पदार्थ है, और न मानसिक शक्ति। वह स्वयं ही इन दोनों प्रवाहों को उत्पन्न करती है। वह स्थिर सत्य अर्थात् स्टेटिक रिपल, गतिशील सत्य अर्थात् फेनामिक रिपल एवं अवशेष शक्ति अर्थात् रेसीडुएल पावर के समन्वित प्रवाह की तरह इस सृष्टि में काम करती है। व्यक्ति की चेतना में वह प्रसुप्त पड़ी रहती है। इसे प्रयत्नपूर्वक जागृत करने वाला विशिष्ट सामर्थ्यवान् बन सकता है।"

शिव संहिता में कहा गया है कि यह कुंडलिनी शक्ति सुप्त सर्पिणी के समान है। वह स्फुरण, गति, ज्योति एवं वाक् है। यह विष्णु शक्ति है। स्वर्णिम सूर्य की भांति दीप्तिवान है। मैडम ब्लाशेवस्की कुंडलिनी शक्ति को 'कास्मिक इलेक्ट्रिसिटी' मानती हैं। सर्पवत् अथवा वलयनुमा गति अपनाने के कारण इस दिव्य शक्ति को कुंडलिनी कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसे 'फायर ऑव लाइफ'–'जीवन-अग्नि' भी नाम दिया है। यह जीवन अग्नि समस्त विश्व-ब्रह्मांड में व्याप्त है। जब यह शक्ति जड़ पदार्थों में क्रियाशील होती है तो अध्यात्म उसे 'अपरा प्रकृति' कहता है। पदार्थों का उद्‌भव, विकास, संवर्द्धन, परिवर्तन इसी अपरा प्रकृति द्वारा होता है। इस शक्ति का दूसरा रूप है–परा प्रकृति। बुद्धि-विवेक, इच्छा, ज्ञान, भावना आदि इसी के अंग हैं। यह परा प्रकृति अचेतन मष्तिष्क को केंद्र बना शारीरिक, मानसिक एवं स्वभावगत क्रियाकलापों का संचालन करती है।

इस जीवन अग्नि अर्थात् कुंडलिनी शक्ति का समष्टि रूप ब्रह्माग्नि या परमात्मा कहा गया है, तथा व्यष्टि रूप जीवाग्नि अर्थात् आत्मा। वे दोनों एक ही प्रवाह का अवच्छिन्न अंग हैं। आम भाषा में इन दोनों को धन विद्युत एवं ऋण विद्युत भी कहा जा सकता है।

षट् चक्र परिचय

मूलाधार चक्र स्थित चार दलों वाले कमल में पृथ्वी तत्त्व का चतुष्कोणी चक्र है। जिसके आठों ओर आठ प्रकाशमान शूल हैं। इन्हें अष्टशूल कहा जाता है। पीतवर्णी इस सुंदर चक्र के भीतर धरा का बीज अर्थात् इंद्र 'लं' अंकित है। इन चार कमल दलों पर स्वर्णवर्णी चार अक्षर अंकित है—वं, शं, षं, सं। चतुर्भुजी इंद्र ऐरावत पर आरूढ़ हैं और उनकी गोद में बिंदु या लंब स्थित है। यह बाल ब्रह्म का प्रतीक है। चतुर्भुजी ब्रह्म चार मुख वाले हैं। इस कमल में चार हाथों, रक्तिम नेत्र वाली डाकिनी देवी है। इसे नित्य शुद्ध ज्ञान की शक्ति माना गया है। अर्थात् डाकिनी ही शुद्ध ज्ञान प्रदान करती हैं।

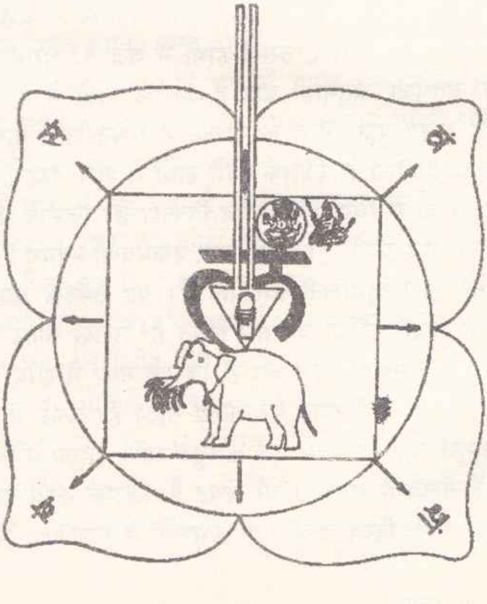

सुमुम्ना, जिसे वज्रा नाड़ी भी कहा गया है, के मुख पर कमल के बीज कोश में त्रैपुर नामक एक सुंदर, प्रकाशमान, कोमल, त्रिकोणात्मक कामरूप सदैव चमकता रहता है। यहां सर्वत्र, सदैव, कंदर्प नामक वायु का वास बताया गया है। गहरे लाल रंग की यह वायु सब प्राणियों की स्वामी कही गयी है। इस त्रिकोण के भीतर पिघले स्वर्ण की तरह सुंदर अधोमुखी स्वयंभूलिंग विद्यमान है। उसका आकार एवं रंग कोंपल की भाँति लाल होता है। इससे निसृत होने वाली शीतल किरणें सबको आकृष्ट करती हैं। यहां शिव भंवर के रूप में विद्यमान हैं तथा उनके ऊपर कमल नाल के समान सूक्ष्म, चमचमाती कुंडलिनी सुप्तावस्था में ब्रह्मद्वार का मुख बंद किये रहती है। सर्पिणी की तरह यह कुंडलिनी शिव के चारों ओर साढ़े तीन फेरे डाले लिपटी रहती है। इसकी अस्पष्ट गूंज को प्रेममत्त मधुमक्खियों की गूंज की भांति बताया गया है। कुंडलिनी को एक ओर समस्त संसार को भ्रम में डालने वाला कहा गया है तो दूसरी ओर काव्य, छंद, गद्य-पद्य का रचनाकार भी गया है।

तंत्रशास्त्र के अनुसार यहां स्थित चक्र एवं कुंडलिनी पर ध्यान जमाने से व्यक्ति में वाक् शक्ति आ जाती है। वह सब विद्याओं में निपुण, शासक तथा रोगमुक्त हो जाता है। उसकी अंतरात्मा आनंद से परिपूर्ण रहती है।

सार रूप में मूलाधार का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—चार पंखुड़ियों वाला कमल, जिसके दलों पर अंकित हैं वं, शं, षं, सं, अक्षर। नीचे गोलक में चौकोर धरा मंडल, जिसके चारों ओर आठ शूल एवं मध्य में धरा बीज 'लं' है, पीतवर्णी, चतुर्भुजी, गज पर सवार, उसके हाथों में वज्र है। धराबीज के बिंदु के भीतर लालवर्णी, चतुर्भुजी, चतुर्मुखी ब्रह्म है, जिनके हाथों में है, दंड, कमंडलु, रुद्राक्ष माला, और अभय मुद्रा। नीचे के गोलक में स्थित लाल कमल में रक्तिम वर्णी, चक्राधिष्ठात्री डाकिनी है, जिसके चारों हाथों में शूल, खड्ग, खटवांग और चषक है। उसी गोलक में विद्युत की भांति त्रिकोण है। जिसके भीतर रक्तवर्णी काम वायु एवं काम बीज 'क्लीं' है। इसके ऊपर श्यामवर्णी स्वयंभू लिंग है, जिसके पर साढ़े तीन फेरे डाले कुंडलिनी विद्यमान है। यह तांत्रिक मत है।

स्वाधिष्ठान चक्र जनेंद्रिय के पास स्थित है। उसके भीतर अर्द्ध चंद्राकार वरुण देवता का श्वेत चमकदार जल क्षेत्र है, जिसके मध्य में शरद् चंद्र की भांति निष्कलंक और श्वेत बीज 'वं' मकर पर आरुढ़ वरुण हैं। उनके भीतर नीलवर्णी, पीताम्बरधारी चतुर्भुज तथा श्री वत्स एवं कौस्तुभ मणि, धारण करने वाले विष्णु विद्यमान हैं। यहीं नीलवर्णी शाकिनी भी स्थित है, जिसके ऊर्ध्व हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र हैं। दिव्य वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित शाकिनी अमृत

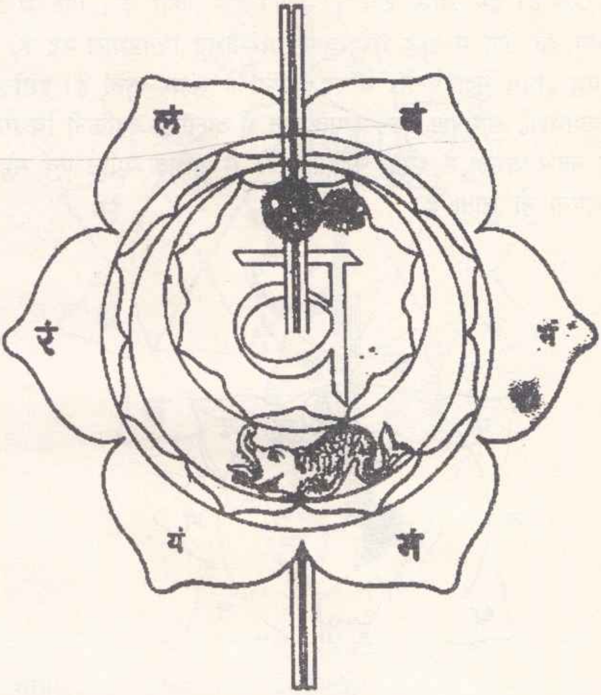

पान के कारण सदैव आनंद मग्न रहती है।

स्वाधिष्ठान चक्र का सार रूप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है–सिंदूरवर्णी, छह दल युक्त कमल, जिन पर अनुस्वार सहित अंकित हैं अक्षर–बं, भं, मं यं, रं, और लं। इस कमल कोष में अष्टदल कमल की आकृति वाला जल क्षेत्र है, जिसके मध्य में अर्द्ध चंद्र और पाशयुक्त वरुण बीज (बं) मकर पर आरूढ़ है। बिंदु के छिद्र में शंख, चक्र, गदा, पद्म युक्त पीताम्बरधारी विष्णु हैं, जिनके गले में वनमाला, वक्षस्थल पर श्रीवत्स तथा कौस्तुभ मणि है। गोलक के भीतर रक्तवर्णी कमल पर श्यामवर्णी शाकिनी विद्यमान है। उसके चार हाथ, तीन नेत्र तथा भीषण दंत पंक्ति है। भयावनी प्रतीत होने वाली शाकिनी के हाथों में अस्त्र-शस्त्र हैं। स्वाधिष्ठान चक्र पर ध्यान केंद्रित कर व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से पूर्णत: मुक्त, शत्रु रहित हो जाता है। उसकी वाक् शक्ति, चिंतन शक्ति, साहित्यिक प्रतिभा भी प्रखर हो जाती है। इस चक्र का संबंध स्वाद एवं हाथों से माना जाता है।

मणिपूर चक्र : यह नाभिप्रदेश में स्थित है। इसके प्रकाशमान त्रिकोणात्मक अग्नि क्षेत्र के बाहर की ओर तीन स्वस्तिक हैं, जिनके मध्य में अग्नि का बीज

मंत्र (रं) अंकित है। इस अग्नि क्षेत्र का वर्णन इस प्रकार है : मेढ़े पर आसीन चतुर्भुज अग्नि की गोद में शुद्ध सिंदूरवर्णी, भस्मीभूत त्रिनेत्रधारी रुद्र हैं, जिनके हाथ वरद एवं अभय मुद्रा में हैं। ये रुद्र सृष्टि के संहार कर्त्ता हैं। इसी क्षेत्र में चतुर्भुजा, श्यामवर्णा, आभूषण युक्त अमृत पान से आनंदित लाकिनी विद्यमान हैं। लाकिनी के नाभि कमल में ध्यान केंद्रित करने से साधक सृष्टि एवं संहार की शक्ति से संपन्न हो जाता है।

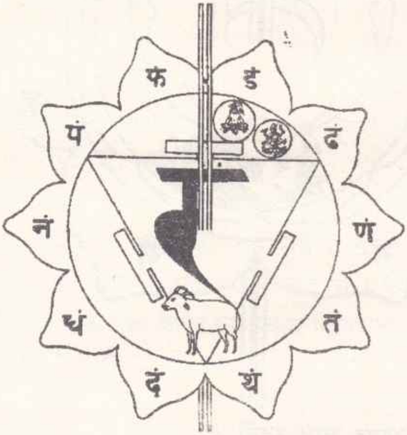

मणि के समान प्रकाशमान मणिपुर चक्र का सार रूप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है–दस दल वाले, मेघवर्णी नाभिकमल की पंखुरियों पर अंकित है अनुस्वार युक्त अक्षर–डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं, ये नीलवर्णी हैं कमल के भीतर स्थित अग्नि के लाल त्रिकोण में लाल रंग से ही अंकित है अग्नि का बीज मंत्र (रं) जो चतुर्भुजी मूर्ति में मेढ़े पर आरूढ़ है। उसके हाथों में वज्र और शक्ति है। दो हाथ वरद और अभय की मुद्रा में हैं। लाल त्रिकोण के बाहर तीन स्वस्तिक अंकित हैं। बीज के भीतर रक्तवर्णी वृषभ पर भस्म रमाये रुद्र आसीन हैं। मध्य भाग में लाल कमल पर आसीन तीन मुखों वाली, तथा प्रत्येक मुख पर त्रिनेत्रधारी, नीलवर्णी लाकिनी विद्यमान हैं। उनके तीन दाँत बाहर निकले हुए हैं। लाकिनी के एक हाथ में वज्र, दूसरे में शक्ति है। एक हाथ वरद तथा दूसरा अभय मुद्रा में है।

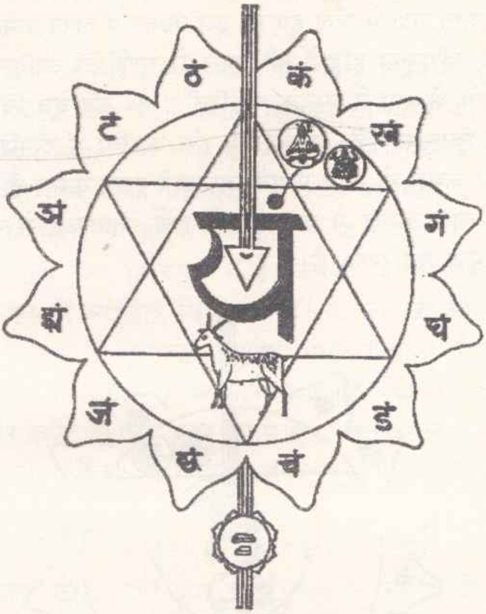

अनाहत चक्र : इसकी आकृति कल्पवृक्ष की भाँति है। यहां धूम्रवर्णी, षट्कोणी वायुक्षेत्र है, जिसके मध्य कमल बीज (य) है, जो ध्रूम समूह की भाँति धूमरा चतुर्भुजी कृष्ण हरिण पर विद्यमान है। इनके भीतर ज्योतिष्मान अभय मुद्रा वाले भगवान विराजमान हैं। यहीं पीतवर्णी, कल्याणमयी त्रिनेत्रधारी, चतुर्भुजा काकिनी स्थित हैं–जिनके दो हाथों में क्रमशः पाश, खप्पर और दो हाथ वरद एवं अभय मुद्रा में हैं। वह कमल के मध्य त्रिकोण रूप में स्थित हैं। त्रिकोण के मध्य में वाण नामक शिवलिंग है, जिसके शीर्ष पर अनेक छिद्र हैं। यही लक्ष्मी का भी आवास है। यह चक्र शर्व (महादेव) का आवास स्थल है। वह हंस (जीवात्मा) से युक्त है, जो दीपक की लौ की भांति स्थिर है। अनाहत चक्र पर ध्यान केंद्रित करने से साधक को इच्छा से अधिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इसमें परकाया-प्रवेश की शक्ति भी आ जाती है।

अनाहत चक्र का सार रूप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है : रक्तवर्णी बारह पंखुड़ियों वाला कमल, जिसकी प्रत्येक पंखुड़ी पर अंकित हैं कं, खं, गं, घं, ङं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं। उसके मध्य में धूम्रवर्णी वायुमंडल है, जिसके बीच में त्रिकोणाकृति सूर्य मंडल है। उसके ऊपर वायु बीज (यं) काले हरिण पर आसीन है। उसकी चार भुजाएँ हैं। उसके हाथ में अंकुश है। वायु

बीज की गोद में त्रिनेत्रधारी ईश्वर हैं। वे हंस की भांति धवल हैं उनके दोनों हाथ अभय एवं वरद मुद्रा में फैले हुए हैं। इस कमल में लाल कमल पर चतुर्भुजा पीताम्बरधारिणी, मणियुक्त हड्डियों की माला से सुशोभित काकिनी है। त्रिकोण के मध्य बाणलिंग के रूप में मस्तक पर द्वितीया का चंद एवं बिंदु धारण किये स्वर्णवर्णी शिव विराजमान हैं। उनके नीचे हंस के रूप में दीपशिखा-सा स्थिर जीवात्मा है। इस कमल के मध्य में एक अष्टदली लाल कमल है, जिसका सिरा औंधा है। इसी लाल कमल में कल्पवृक्ष है तथा पताकाओं से सजी वेदी है। यही मानसिक पूजा का स्थल है।

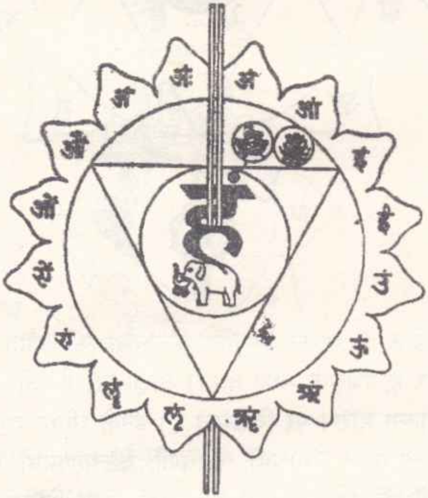

विशुद्ध चक्र : कंठ स्थित विशुद्ध चक्र का रंग धूमरा बैंगनी है। उसकी सोलह पंखुड़ियों पर सोलह स्वर यथा अं, आं, इं, ईं, उं, ऊं, ऋं, ॠं, लृं, लॄं, एं, ऐं, ओं, औं, अं, अः अंकित हैं। इस कमल कोश में पूर्ण चंद्र की भाँति श्वेत प्रकाश है। हिम की भाँति धवल गज पर श्वेत आकाश रंग का बीज मंत्र (हं) स्थित है। वह चतुर्भुज है तथा एक-एक हाथ में पाश एवं अंकुश हैं तथा शेष दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में हैं। इस बीज मंत्र की गोद में त्रिनेत्रधारी, पंचमुखी, दशभुजी, व्याघ्र चर्म ओढ़े शिव हैं। साथ ही वे गिरिजा से जुड़े हुए हैं। इसी कमल कोश पर पीताम्बरधारिणी, चतुर्भुजा शाकिनी एक हाथ में धनुष, एक में बाण, एक में पाश तथा एक में अंकुश लिये हुए हैं। विशुद्ध चक्र पर ध्यान केंद्रित

करने से साधक आत्मज्ञानी, वाक्शक्ति युक्त बुद्धिमान, निरोग एवं त्रिकालदर्शी हो जाता है।

विशुद्ध चक्र का सार रूप में वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है : धूमर बैंगनी रंग का सोलह दल वाला कमल, जिसका रंग केसर की भाँति लाल है। पंखुड़ियों अनुस्वार सहित स्वर लाल रंग से अंकित हैं। मध्य में गोल, श्वेत नभो मंडल है, जिसके मध्य स्थित चंद्र मंडल में श्वेत वस्त्रधारी, श्वेतवर्णी चतुर्भुजी बीज हं गज पर सवार है। उसके एक हाथ में पाश, एक में अंकुश, तथा एक हाथ वरद एवं एक हाथ अभयमुद्रा में है। उसकी गोद में वृषभारूढ़ सिंह पर अर्ध नारीश्वर रूप में सदाशिव विराजमान हैं। वे पंचमुखी और दस भुजा वाले हैं। पांच मुख के नाम हैं–सधोजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष और ईशान। वे शूल, परशु, खड्ग, वज्र, आग्नेयास्त्र–अग्नि, सर्प, घंटा, पाश तथा अभय मुद्रा धारण किए हैं। वे बाघम्बर लपेटे हैं तथा भस्म रमाये हैं। गले में सर्पों की माला है। सिर पर औंधी लटकी चंद्रकला से टपकती अमृत बूँदें, मस्तक पर झलक रही हैं। कोख के भीतर चंद्र मंडल में हड्डियों पर गौरवर्णी, पीताम्बरधारिणी पंचमुखी, चतुर्भुजा शाकिनी हैं। उनके हाथों में धनुष, बाण, पाश तथा अंकुश है। विशुद्ध चक्र पर ध्यान लगाने तथा कुंभक द्वारा प्राण वायु रोकने पर साधक के क्रोध के सामने कोई नहीं ठहर सकता।

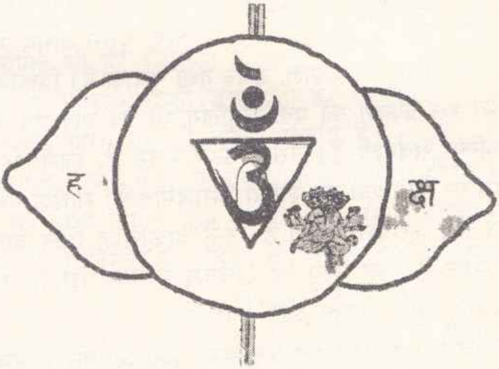

आज्ञा चक्र : इसमें दो कमल दल हैं, जिन पर श्वेतवर्णी ह एवं क्ष अक्षर अंकित हैं। इसमें षष्ठमुखा, षष्ठभुजा हाकिनी निवास करती हैं। उसके एक हाथ में पुस्तक, एक में कपाल, एक में डमरू, एक में माला है, एक हाथ अभय एवं दूसरा वरद मुद्रा में है। यहीं प्रथम बीज ऊं स्थित है।

आज्ञा चक्र का यह भी वर्णन मिलता है : श्वेतवर्णी दो पंखुड़ियों, जिन

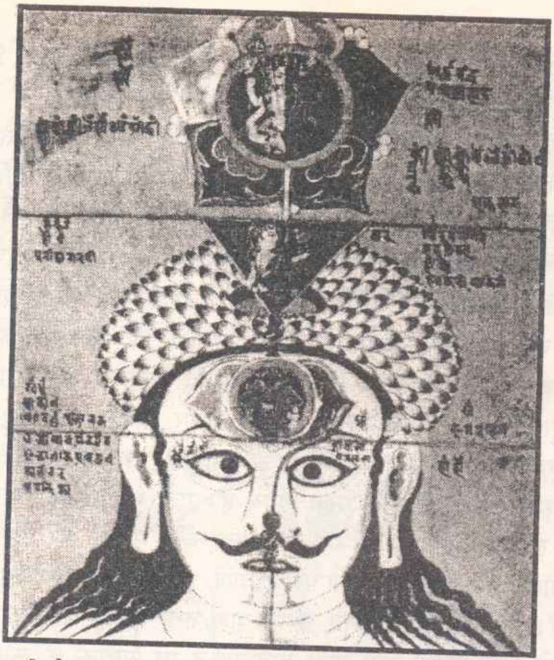

चक्र की श्रेष्ठतम स्थिति का रूपांकन (पेंटिंग 17 वीं शती, नेपाल)

पर श्वेतवर्णी अक्षर ह एवं क्ष। षट्मुखी हाकिनी के प्रत्येक मुख पर तीन-तीन नेत्र। श्वेत कमलासीन हाकिनी एक हाथ में वरद, दूसरा अभय मुद्रा में रखे हैं। शेष हाथों में रुद्राक्ष माला, नर कपाल, डमरु तथा पुस्तक है। त्रिकोण में प्रकाशमान आत्मा स्थिर है। इस प्रकाश को एक स्फुलिंग घेरे है। मूल एवं ब्रह्मांध्र के मध्य स्थित यह स्फुलिंग सर्वदर्शी है। उसके ऊपर मनस है, जिस पर चंद्र मंडल में हंस है। इस हंस पर परमशिव एवं शक्ति विराजमान हैं। साधक यहां ध्यान एकाग्र कर महानाद के रूप का दर्शन करते हैं। उन्हें वाक्सिद्धि मिल जाती है। महानाद वायु का लय स्थान है। वह शिव का अर्धरूप है तथा उसकी आकृति हल की भाँति है। वह शुद्ध बुद्धि प्रदाता और भयहर्त्ता है।

सहस्त्रार चक्र : इसमें सहस्र् पंखुड़ियों युक्त अधोमुखी कमल है। उसका वर्ण प्रातःकालीन सूर्य की तरह केसरिया है। शरीर अ से प्रारम्भ होने वाले अक्षरों से प्रकाशमान है। यह मुक्ति का मूल है। यहीं विराजमान परमशिव सर्वात्मा हैं। उनमें रस-विरस दोनों हैं। वे अज्ञान एवं मोह के अंधकार को दूर करते हैं। यहां ध्यान एकाग्र करने से साधक जीवात्मा तथा परमात्मा के ऐक्य को अनुभव करने लगता है।

कमलदलों की संख्याओं का रहस्य

अंग्रेजी में कुंडलिनी शक्ति को आमतौर पर 'सरपेंट पॉवर' कहा जाता है तथा अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने उस पर काफी कुछ लिखा भी है। शास्त्रों में वर्णित चक्रों के कमलदल स्वरूप, उन पर अंकित वर्णों एवं देवताओं को वास्तविक मान कुछ लेखकों ने मखौल भी उड़ाया है। बिना अधिकृत विद्वान या गुरु से इन चक्रों के संबंध में वास्तविक ज्ञान किये बिना, केवल तत्संबंधी साहित्य पढ़कर निष्कर्ष पर पहुँचने का यही परिणाम निकलता है। आम आदमी भी कुंडलिनी शक्ति संबंधी विवरण पढ़कर इन चक्रों के स्वरूप को सही मान बैठता है। लेकिन कभी-कभी प्रबुद्ध मन में जिज्ञासा उठती है कि क्या सचमुच में शरीर में स्थित इन चक्रों में विभिन्न दल वाले कमल, उनकी पंखुड़ियों पर वर्ण अंकित हैं। क्या सचमुच में कोई ऐरावत हाथी बना है। ब्रह्मा भी हैं, शिव भी हैं, विष्णु भी हैं और आद्य शक्ति भी है? जिज्ञासा के समुचित समाधान का अभाव फिर संदेह को और अंत में अविश्वास को जन्म देता है। दरअसल ये सब रूपक हैं और उनका अर्थ कोई योग्य गुरु ही बतला सकता है।

'शक्ति एंड शॉक्त' में सर जॉन वुडरोक ने भी ऐसी ही पाश्चात्य आलोचनाओं और संदेहों की चर्चा की है तथा अपनी क्षमतानुसार उसका उत्तर देने का भी प्रयत्न किया है। वे लिखते हैं : (चक्रों के) कमल दलों की संख्या भिन्न है–जैसे 4, 6, 10, 12, 16 और 2। ये मूलाधार से शुरू होकर आज्ञा चक्र में समाप्त होते हैं। उनका कुल योग 50 है। संस्कृत वर्णमाला में भी 50 वर्ण हैं। ये वर्ण या मातृकाएँ तत्वों से संबंधित हैं। ये दोनों एक ही सृजनात्मक ब्रह्मांडीय शक्ति की उपज हैं और उसके शारीरिक या मनोवैज्ञानिक कार्यकलापों का प्रस्फुटन हैं।

ध्यान देने की बात है कि क्ष या द्वितीय ल को छोड़ देने के बाद इन 50 वर्णों में बीस का गुणा किया जाए तो सहस्रार के 1000 कमलदल मिलते हैं। यह संख्या केवल आधिक्य या गुरुतर महत्त्व की ही संकेतक है।

पर पूछा जा सकता है कि कमलदलों की संख्या भिन्न क्यों है? मूलाधार में 4 और स्वाधिष्ठान में 6 ही कमलदल क्यों? उत्तर यह है कि चक्र के कमलदल की संख्या उस चक्र विशेष में नाड़ियों की संख्या या स्थिति से तय होती है। मूलाधार चक्र को और उसकी क्रियाओं से गुजरने वाली नाड़ियों की संख्या चार है जो कमल दल सी प्रतीत होती है। ये नाड़ियां वैद्यक या चिकित्सा शास्त्र में वर्णित नाड़ियां नहीं हैं। ये योग-नाड़ियां कही जाती हैं, वे ऐसी सूक्ष्म 'विवर' हैं, जिनमें प्राण ऊर्जा प्रवाहित होती है। नाड़ी शब्द की उत्पत्ति 'नाद' से हुई है, जिसका अर्थ है गति।

मेरुदंड अथवा रीढ़ को पाश्चात्य शरीर शास्त्र पाँच भागों में विभाजित करता है, जो चक्रों से मेल खाता है। वैज्ञानिक अनुवीक्षण से पता चला है कि मूलाधार में (जिसे tilum terminale कहा गया है) एक बेहद संवेदनशील 'ग्रे' पदार्थ होता है। पश्चिमी विज्ञान भी मानता है कि मेरुदंड या 'स्पाइनल कॉर्ड' केवल संवदना का संवाहक ही नहीं, वरन् स्वतंत्र केंद्र या केंद्रों का समूह भी है।

कुंडलिनी जागरण : पांतजलि के उपाय

योग को कुंडलिनी जागरण का एक उपाय बतलाया गया है। योग के भी दो रूप हैं–ध्यान योग एवं कुंडलिनी योग। ध्यान योगी ध्यान के क्रिया मार्ग द्वारा मंत्रादि एवं हठयोग की कुछ बातों का आश्रय ले कुंडलिनी जागरण की साधना करता है। कुंडलिनी योग क्रिया मार्ग की उपेक्षा नहीं करता, तथापि देह की परिचालन ऊर्जा 'शक्ति' को चैतन्य शिव से संयुक्त कर आनंद प्राप्त करता है।

'पांतजलि योग प्रदीप' (गीताप्रेस, गोरखपुर) में स्वामी ओमानंद तीर्थ कुंडलिनी जागृत करने के उपायों की चर्चा करते हुए लिखते हैं–"विशेषतया कुंडलिनी शक्ति तो शरीर के शुद्ध और सूक्ष्म होने पर, सात्विक विचार, शुद्ध अंतकरण, ईश्वर की सच्ची भक्ति और परिपक्व वैराग्य की अवस्था में एकाग्रता अर्थात् निश्चल ध्यान से जागृत होती है।"

कुंडलिनी जागरण के बाह्य साधन हैं; भस्त्रिका, कपाल-भाति, सूर्यभेदी प्राणायाम, महाबंध, महावेध, महामुद्रा, खेचरी मुद्रा, विपरीतकर्णी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा, योनि मुद्रा, शक्ति चालिनी मुद्रा आदि। पर ये सब कुंडलिनी शक्ति को चेतन करने में सहायक होते हैं। सुषुम्ना के मुख में कुंडलिनी के मुख का प्रवेश केवल ध्यान की परिपक्व अवस्था में हो सकता है। चक्रों पर दो प्रकार से ध्यान केन्द्रित

किया जाता है, एक–सिद्धियों तथा शक्तियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से चक्रों में दी गयी बातों की विशेष-विशेष चक्र पर भावना के साथ ध्यान किया जाता है। स्वामी ओमानंद तीर्थ ने इसे तांत्रिकों का मार्ग कहा है, जो लंबा है। आध्यात्मिक उन्नति तथा परमात्मा प्राप्ति के लिए 'आज्ञा चक्र' एवं 'सहस्रार चक्र' पर ही ध्यान पर्याप्त है। शाक्त तंत्र का दावा है कि वह विश्व में भुक्ति (आनंद) तथा समस्त संसारों से मुक्ति प्रदान करता है। उसका भुक्ति एवं मुक्ति दोनों पर समान जोर है।

स्वामी श्रीधरानन्द (डॉ. श्रीधर वाजपेयी, एम.एस-सी., पी-एच.डी. एवं अनेक विदेशी विश्वविद्यालयों में मानद प्रोफेसर एवं डीन) ने अपनी एक कृति 'प्राच्य गुह्य ब्रह्म योग' में सूक्ष्म शरीर एवं कुंडलिनी जागरण का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए 'ब्रह्म केलि' के माध्यम से कुंडलिनी को जागृत करने की विधि बतलायी है। उनका कहना है–ब्रह्मयोग का दर्शन कुंडलिनी-जागरण को महत्त्वपूर्ण मानता है। इस योग में कुंडलिनी जागरण हेतु ब्रह्म और तांत्रिक मंत्रों के जाप, ब्रह्म यंत्रों के ध्यान, स्तोत्रों के पाठ, ब्रह्मकेलि, ब्रह्म ध्यान आदि का प्रयोग किया जाता है। ब्रह्मकेलि में लीन ब्रह्म मिथुन जब मूलाधार चक्र पर शक्ति तंत्र का ध्यान करते हैं तो उनकी कुंडलिनी स्वतः जागृत होने लगती है तथा उन्हें कुंडलिनी जागरण का बोध और उसके जागरण की विधि का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता है। यह ध्यान उन्हें इच्छा शक्ति और स्नायविक नियंत्रण भी प्रदान करता है, जो दीर्घ ब्रह्म केलि के हेतु अति आवश्यक है। एक सांसारिक व्यक्ति सदैव इंद्रिय सुख एवं सांसारिक आनंद का चिंतन करता है, अतः उसका मन मूलाधार चक्र में ही भटकता रहता है तथा उसकी कुंडलिनी सुप्त रहती है। जब कुंडलिनी जागृत हो जाती है तो इस संसार के लिए वह सुप्तावस्था प्राप्त कर लेता है, अर्थात् उसके लिए संसार का अस्तित्व क्षीण हो जाता है तथा वह आत्म-साक्षात्कार हेतु प्रयत्नशील हो जाता है।

कुंडलिनी योग

कुंडलिनी के विषय में कहा गया है कि वह प्रत्येक व्यक्ति में स्थित विशुद्ध चैतन्य शक्ति है, जो मूलाधार चक्र में स्वयंभू लिंग को साढ़े तीन बार आवृत्त किये हुए सुप्तावस्था में पड़ी रहती है। माना गया है कि जीवात्मा अर्थात् व्यक्ति का 'स्व' इसी कुंडलिनी में होता है। साढ़े तीन घेरों की व्याख्या इस प्रकार की गयी है। ये तीनों घेरे सत्व, रजस, तमस गुणों के प्रतीक हैं। ऊर्ध्व गति की ओर उन्मुक्त अंतिम आधा आवर्त्त व्यक्ति में छिपी मानसिक अथवा आध्यात्मिक आरोहण की क्षमता और संभावना का प्रतीक है। कुंडलिनी को प्रत्येक में निहित तथापि सुषुप्त संकुचित चेतना ऊर्जा का प्रतिनिधि या प्रतीक माना गया है। इस अवस्था में उसे 'अधोमुखी कुंडलिनी' कहा जाता है। कल्पना की गयी है कि सर्पिणी की आकृति बाली इस कुंडलिनी का मुख नीचे की ओर है, तथा उसमें उसकी पूंछ का अंतिम सिरा है।

अपनी शोधपूर्ण कृति 'साइंस एंड तंत्र योग' में प्रो. श्री अजित कुमार सिन्हा लिखते हैं—पदार्थ कणों, अणुओं और आकाशगंगाओं में कुंडलिनी अतिशय संकुचित अवस्था में रहती है। वह प्रत्येक जीवंत कोशिका में भी मौजूद है। तथापि पदार्थ कणों, आकाश गंगाओं या जीवंत कोशिका में मौजूद कुंडलिनी में काल एवं आकाश की सीमा अथवा ढाँचे में स्वयं को विस्तारित करने की क्षमता होती है। लाइट क्वांटम (फोटोन) के संलन रेखांकन में तरंगें कुंडलिनी के विस्तार को दर्शा रही हैं।

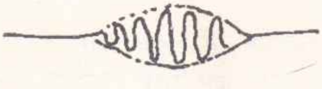

अनंत ब्रह्मांड में भी आकाश गंगाएं एक-दूसरे से जन्म लेती हैं, विकसित होती हैं, और विलीन हुआ करती हैं। उनकी गति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। उनका विस्तार होता रहता है तथापि वे काल आकाश से, मध्य में आबद्ध रहती हैं।

जीवंत कोशिका में कुंडलिनी अपने नाभिक के इर्द-गिर्द केंद्रित रहती है। वह सर्पिल रूप में स्वयं को विस्तारित करना चाहती है। डीएनए के कणों में अपनी शुद्ध अनुकृतियाँ बनाने की क्षमता होती है। उनकी दोनों 'धाराएँ' एक बंटी रस्सी के समान परस्पर गुंथे होती हैं। डीएनए कणों का यह गुंथाव सर्पिल होता है तथा वे एक सर्पाकार सीढ़ी की तरह उठते हैं।

हमारे भीतर स्थिति कुंडलिनी में सीधे लंबवत् ऊपर उठने की क्षमता होती है। हमारे अनुभव सिद्ध काल-आकाश के पार जाने में सक्षम आरोहण करती कुंडलिनी को 'ऊर्ध्व कुंडलिनी' नाम दिया गया है। ऊपर की ओर आरोहण करती चैतन्य कुंडलिनी की चमक या प्रकाश आकाश की बिजली की तरह होता है। जब कुंडलिनी पूरी तरह ऊपर उठ जाती है तो वह प्रकाश स्तंभ की भाँति प्रतीत होती है। एक ओर जहां विद्युत ऊर्जा यांत्रिक ढंग से कार्य करती है, वहीं दूसरी ओर कुंडलिनी चैतन्य एवं स्वाधीन या स्वशासित होती है। मेरुदंड अथवा रीढ़ के मध्य सुषुम्ना नाड़ी मूलाधार चक्र से उठकर सिर से ब्रह्मरंध्र तक पहुंचती है। ऊपर की ओर आरोहण करती हुई ऊर्ध्व कुंडलिनी इसी सुषुम्ना नाड़ी के भीतर यात्रा करते ब्रह्मरंध्र से गुजरती काल एवं आकाश के परे चली जाती है।

तंत्रशास्त्र की मान्यता है कि किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वास्तविक 'स्व' उसकी देह में नहीं, वरन् हमारे काल-आकाश के चारों आयामों के परे सिर में स्थित है। सिर में सहस्रार अथवा हजार दलों वाला कमल स्थित है, जिसमें वास करते हैं परमशिव या सदाशिव। ऊर्ध्वगामी कुंडलिनी इसी सहस्रार से निसृत होते अमृत का पान करते हुए सदाशिव से जा मिलती है। परमशिव से कुंडलिनी शक्ति का यह मिलन ही कुंडलिनी योग का लक्ष्य है। और कुछ व्याख्याकारों के अनुसार पंचमकार के 'मैथुन' का अर्थ भी यह मिलन है, न कि पार्थिव देहों का मैथुन। 'कुंडलिनी योग' को एक आध्यात्मिक समाजवाद कहा जा सकता है। किसी भी जाति, धर्म, वर्ण, उम्र का शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति इस कुंडलिनी योग को अपनाकर अपनी देह, अपनी आत्मा का आध्यात्मिकरण कर हमारे ज्ञात, अनुभवसिद्ध सभी आयामों से ऊपर उठ सकता है। लेकिन ऐसा करने के पूर्व उसे अपनी देह को, अपने को विकार रहित करना अनिवार्य है। उसे इंद्रियजन्य सुखों, भौतिक प्रलोभनों, काम, क्रोध, मद, मत्सर से ऊपर उठना आवश्यक है। उसे मृत्युभय से भी सर्वथा मुक्त होना चाहिए। ऐसी मनोभूमि तैयार कर लेने के पश्चात व्यक्ति समस्त मनोविकारों, प्रलोभनों, राग-द्वेष आदि के परे हो कुंडलिनी योग के अभ्यास की क्षमता अर्जित कर लेता है।

तंत्रयोग की मान्यता है कि मनुष्य के अस्तित्व का परम लक्ष्य उसके व्यक्तित्व

में ही कूटलिपि में मौजूद है। यही नहीं, वही परम लक्ष्य संपूर्ण वातावरण में भी कूटलिपि में अंकित है। सामान्य व्यक्ति कूटलिपि में अंकित इस गोपनीय लक्ष्य को न पढ़ पाता है, और न उसे समझने की उसमें क्षमता होती है। केवल सिद्ध तांत्रिक ही, जिसकी कुंडलिनी शक्ति का परमशिव से सम्मिलन हो गया है, इस कूट लक्ष्य को पढ़ने, जानने और समझने में समर्थ होता है। उसके लिए उसकी देह या शरीर ही विशुद्ध शक्ति का आवास है तथा शरीर के विभिन्न अंगों में ही इस दैवी ऊर्जा की विभिन्न शक्तियाँ उपस्थित हैं, जिन्हें न्यास एवं मंत्रोच्चार द्वारा जागृत अथवा सक्रिय किया जा सकता है।

क्या तंत्र शास्त्र, क्या ज्योतिष शास्त्र, समूचे भारतीय दर्शन की यह मान्यता है कि जो पिंड में अर्थात् देह में है, वही ब्रह्मांड में है। ज्योतिष शास्त्र में कालपुरुष की कल्पना कर उसके सिर से पैर तक विभिन्न अंगों में द्वादश राशियों की स्थिति का सिद्धांत प्रचलित है। तंत्रशास्त्र की भी यही मान्यता है कि जो पिंड में है, वही ब्रह्मांड में है। ब्रह्मांड को नियंत्रित करने वाली समस्त भौतिक एवं पराभौतिक शक्तियां अपने सूक्ष्म रूप में मानव शरीर में उपस्थित हैं। जब मानव देह शुद्ध साम्यावस्था में होती है, तब वह ब्रह्मांडीय प्रक्रिया के साथ समरस हो कार्य करती है और जब प्रकृति की विभिन्न शक्तियां पूर्णतः समरस हो कार्य करती हैं तो परम शक्ति से पूर्णतः तदाकार हो जाती हैं।

कुंडलिनी : मानसिक विकारों की सूचक

एक ओर जहां सुषुम्ना स्थित षट् चक्रों एवं मूलाधार स्थित कुंडलिनी शक्ति का आध्यात्मिकता के क्षेत्र में अतिशय महत्त्व है, वहीं उनसे किसी व्यक्ति के शारीरिक-मानसिक विकारों का पता लगाने में भी सहायता ली जाती है। यह माना गया है कि प्रत्येक चक्र का व्यक्ति के मानसिक और शारीरिक गुणों से संबंध होता है, और उनमें उत्पन्न विकार के कारण ही व्यक्ति तरह-तरह की व्याधियों से ग्रस्त होता है यथा :

मूलाधार चक्र में विकार चिंता के साथ-साथ पीलिया रोग भी उत्पन्न कर सकता है। स्वाधिष्ठान चक्र में विकार भ्रम की स्थिति पैदा करता है। व्यक्ति मूर्च्छा एवं लैंगिक विकारों से ग्रस्त हो सकता है। मणिपुर चक्र में विकार फेफड़े एवं नेत्र के रोग पैदा कर सकता है। इस चक्र में विकार क्रोध बढ़ाता है। अनाहत चक्र में विकार श्वास रोगों को जन्म देता है।

अपने सहज योग के माध्यम से कुंडलिनी जागृत करने वाली माता निर्मला देवी के अनुसार : व्यक्ति की दूषित कामेच्छा और सीमित समझ या कामवेग के दमन के कारण मूलाधार चक्र में विकार आता है। उनका कहना है, अत्यधिक नैतिकता के कारण भी इस चक्र में उतना ही विकार आता है, जितना अनैतिक आचरण से। मूलाधार चक्र में विकार के कारण कब्ज की शिकायत होने लगती है। यदि व्यक्ति का अहम् उसके कार्यकलापों पर हावी हो जाता है तो निरंतर सोचने, योजनाओं की क़ल्पनाओं में खोये रहने से स्वाधिष्ठान चक्र पर बोझ पड़ता है और उसके विकारग्रस्त होने से मधुमेह, पेडू में पीड़ा के रोग हो जाते हैं। अप्राकृतिक सहवास भी इस चक्र को दुष्प्रभावित करता है।

अत्यधिक सुरापान, नशीले पदार्थों के सेवन तथा धन के अपव्यय से पूर्ण ऐश्वर्यमय जीवन मणिपूरक चक्र को विकारग्रस्त करता है। इस चक्र पर अत्यधिक बोझ यकृत रोगों का जनक है। माता-पिता के साथ कटु संबंध अनाहत चक्र को विकारग्रस्त करते हैं तथा विकार में वृद्धि हृदय रोग एवं छाती के कैंसर को भी जन्म दे सकती है।

विशुद्ध चक्र अत्यन्त संवेदनशील चक्र है। इसी के बाद आज्ञा चक्र और सहस्त्रार चक्र है। विशुद्ध चक्र में विकार के ये कारण हो सकते हैं : घोर आत्महीनता का भाव, अत्यधिक संयम, दूसरों पर वर्चस्व जमाये रखने की कोशिश। इस चक्र में विकार कंठ एवं कर्णरोग उत्पन्न कर सकता है। आज्ञा चक्र में विकार उत्पन्न हो जाए तो माथे में असह्य पीड़ा, जलन आदि का अनुभव होता है। नेत्रों के गलत उपयोग, दूषित विचारों और पाखंडी गुरुओं का प्रभाव, ये सब आज्ञा चक्र को विकारग्रस्त कर देते हैं।

तांत्रिक चिकित्सक दूषित चक्रों का निदान कर उन्हें पुन: व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है। उसके उपचारों में मंत्रों, सम्मोहन तथा तेल मालिश, गर्म पानी में स्नान, संगीत तथा परंपरागत कर्मकांडों का समावेश होता है। कभी-कभी डाकिनी, लाकिनी जैसी शक्तियों के कारण भी ये चक्र बिगड़ जाते हैं। प्रत्येक चक्र में ऐसी किसी न किसी शक्ति का वास भी माना गया है। तंत्र में जिन्हें भूत-प्रेत और डाकिनी आदि कहा जाता है, उन्हें मुसलिम तंत्र बलाएँ मानता है। मनोविश्लेषक की दृष्टि में, भूत-प्रेत, बला आदि अचेतन कल्पनाओं का रूप ही हैं।

बौद्ध तंत्र

जीवन में मध्यम मार्ग अथवा सम्यक् मार्ग अपनाने तथा कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करने वाले तथागत ने शायद स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा कि उनके द्वारा प्रवर्तित मत में एक दिन तंत्र-मंत्र और कर्मकांड का, जिसके वे विरोधी रहे, वर्चस्व स्थापित हो जाएगा। बुद्ध के चार आर्य सत्य दुःख और उसके निरोध के उपायों को ही समर्पित हैं। बुद्ध के चार आर्य सत्य हैं :

1. दुःख–जीवन दुःख से भरा है।
2. दुःख समुदय–दुःख किसी कारण से उत्पन्न होते हैं।
3. दुःख निरोध–दुःखों का अंत हो सकता है।
4. दुःख निरोध मार्ग–उनके अंत का उपाय है।

दुःख के निरोध के लिए व्यक्ति को जीवन में सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मांत, सम्यक् आजीव (जीविका), सम्यक् व्यायाम (उचित प्रयत्न), सम्यक् स्मृति एवं सम्यक् समाधि (सम्यक् जीवन का संतुलन) अपनानी चाहिए।

दर्शनों के चार प्रतिपाद्य विषय भी दुःख से ही संबंधित हैं–

1. हेय–दुःख का वास्तविक स्वरूप जो हेय अर्थात् त्याज्य है।
2. हेय हेतु–दुःख का वास्तविक कारण क्या है?
3. हान–दुःख का नितांत अभाव क्या है?
4. हानोपाय–नितांत दुःख निवृत्ति के साधन क्या हैं?

बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद वैशाली में आयोजित बौद्ध संघ की द्वितीय संगति के परिणामस्वरूप महासांधिकों का एक वर्ग स्थविरवाद परंपरा से अलग हो गया। उसने कौशाम्बी में एक पृथक् सभा की। कालांतर में बौद्ध धर्म अठारह संप्रदायों में बँट गया। इनमें से एक संप्रदाय था–वेनुल्ल अथवा वैपुल्यवादी। बाद में अत्यंत लोकप्रिय महायान का यही प्रारंभिक नाम था।

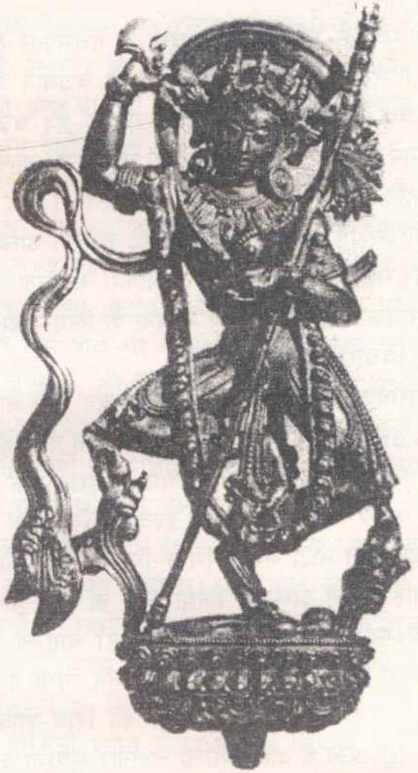

वज्र वाराही : डाकिनी (हेयक की संगिनी) (कांस्य : 17वीं शती, तिब्बत)

बौद्ध धर्म में अनेक दार्शनिक ब्राह्मणों का समावेश होता गया और एक सरल-सहज मत दर्शन की घोर भूल-भूलैया में फंसता चला गया। औपनिषदिक दर्शन के अनेक तत्वों का बौद्ध धर्म में प्रवेश हो गया। बौद्ध धर्म में आये इस महत्त्वपूर्ण परिवर्तन के सूत्रधार थे–नागार्जुन, जो ब्राह्मण धर्म त्याग बौद्ध बन गये थे। उनका मत माध्यमिक दर्शन कहलाया। नागार्जुन की कुछ शताब्दियों के बाद महायान में योगाचार का उद्‌भव हुआ; जो ध्यान एवं समाधि द्वारा बाह्य संसार से विमुक्त हो दार्शनिक प्रज्ञा प्राप्त करना चाहते थे। कालांतर में कुछ योगाचारी अलौकिक शक्तियों के साथ-साथ मुक्ति भी पाने के लिए सदियों प्राचीन तांत्रिक कर्मकांडों का आश्रय लेने लगे। सातवीं शती से बौद्ध धर्म में तंत्र ने गहरी जड़ें जमा लीं। महायान भी दो भागों 1. परमितानय, 2. मंत्रनय अर्थात् मंत्रयान में बँट गया। आगे चलकर एक और विभाजन हुआ तथा वज्रयान, कालचक्र यान तथा

सहजयान का आविर्भाव हुआ।

वज्रयानियों ने मंत्र के साथ-साथ साधना में पंचमकार तथा यौन यौगिक साधना को अपनाया। सरहपाद अथवा राहुलभद्र को वज्रयान का आदि आचार्य माना जाता है। 'हे वज्र तंत्र' के सरहपाद ही प्रवर्तक है। वज्रयान के चौरासी सिद्ध प्रसिद्ध हैं, जिनमें सरहपा, शबरपा, लुईपा, पद्मवज्र, जालंधरपा, अनंगवज्र, डोम्बी तथा हेरुक आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। वज्रयान की ही एक शाखा सहजयान है, जिसका बंगाल में विशेष प्रचार है। बंगाल के बाऊल आज भी इस परंपरा को जीवित रखे हुए हैं। सहजयान की प्रवर्तक लक्ष्मींकरा को माना जाता है। इसीलिए शायद चर्यागीतों में साधक को नारी बनकर साधना के लिए कहा जाता है। शाक्त मत में भी ऐसी ही विचारधारा मिलती है।

कनिष्क के शासनकाल में बौद्ध धर्म राजधर्म बन गया था। फलतः उसके समूचे साम्राज्य में, जो उत्तर में मंगोलिया (चीन) तथा भारत के दक्षिण में विंध्याचल तक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी एवं पश्चिम में ईरान तक फैला था, बौद्ध धर्म के महायान मत का प्रचार-प्रसार हुआ। 'ईश्वरीय विश्वास' को 'अव्याकृत', 'अप्रासंगिक' मानने वाले मूल बौद्ध धर्म में भिन्न-भिन्न देवियों का समावेश हुआ। यदि बौद्ध तंत्र के साहित्य का अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होता है कि उसमें कुछ हेर-फेर के साथ परंपरागत तंत्र के तत्वों का ही बाहुल्य है। सनातन तंत्र के 'दक्षिणाचार' तथा 'वामाचार' हमें क्रमशः क्रिया तंत्र, चर्या तंत्र, योग तंत्र एवं अनुत्तर योग तंत्र के रूप में प्राप्त होते हैं। शैवों की शिव-शक्ति बौद्ध तंत्र में प्रज्ञोपाय बन गयी है। इड़ा प्रज्ञा है और पिंगला ललना। सुषुम्ना का नाम अवधूति है। बौद्ध तंत्र में भी देवता, मंडल, शक्तियों एवं चक्रों का वर्णन है।

बौद्ध तंत्र अपने देवी-देवताओं को शून्य का प्रकाश मानता है। उनके तीन तत्व हैं—शून्य, विज्ञान एवं महासुख। इन्हें पंच स्कंधों, रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान का मूर्त रूप भी माना गया है। प्रत्येक देवता का अपना एक विशिष्ट वर्ण हैं। पंच स्कंधों के देवता ध्यानी बुद्ध कहलाते हैं। इनके अपने पृथक् चिह्न और शक्तियाँ हैं। जैसे रूप स्कंध के बोधिसत्व सुमंतभद्र तथा शक्ति वज्रधात्वीश्वरी है। वेदना स्कंध के बोधिसत्व रत्नपाणि और शक्ति मामकी है। संज्ञा स्कंध के बोधिसत्व पद्मपाणि तथा शक्ति पांडिरा है। संस्कार स्कंध के बोधिसत्व विश्वपाणि तथा शक्ति आर्य तारा है। विज्ञान स्कंध के बोधिसत्व वज्रपाणि तथा शक्ति लोचना है। प्रत्येक स्कंध के एक ध्यानी बुद्ध हैं, जिनके पृथक्-पृथक् नाम हैं। यथा रूप, स्कंध के ध्यानी बुद्ध वैरोचन, वेदना के रत्नसंभव, संज्ञा के अमिताभ, संस्कार के अमोघ शक्ति तथा विज्ञान के अक्षोभ्य। ध्यानी बुद्धों के कुल भी हैं। यथा द्वेष

कुल के ध्यानी बुद्ध अक्षोभ्य हैं। शक्ति लोचना है ही। अक्षोभ्य नामक इन ध्यानी बुद्ध ने जिन देवी-देवताओं की रचना की उनमें मुख्य हैं—हेरुक, हयग्रीव तथा यमार्य। नाम के अनुरूप इस कुल का संबंध क्रूर कार्यों और क्रूर देवताओं से हैं। अतः उनका रूप भी क्रूर है। जैसे वर्ण नील, काली के समान लपलपाती जीभ, त्रिनेत्र, नग्न शरीर, गले में मुंडमाला।

हेरुक के, जो द्वेष कुल के प्रमुख देवता हैं, पाँच रूप हैं—बुद्ध कपाल, संवर, वज्रढाक, सप्ताक्षर एवं महामाया। दो भुजाओं वाले हेरुक का स्वरूप काली से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। जैसे एक हाथ में वज्र, एक में नरकपाल, यज्ञोपवीत की जगह नरमुंड मंडित खट्वांग। शिव के वक्षस्थल पर नृत्य करती काली की भाँति हेरुक भी एक शव पर नृत्य करते हैं। हेरुक का एक चतुर्भुज रूप भी है। अन्य रूपों में हेरुक को चित्रसेना, वज्रवाराही के साथ भी वर्णित किया गया है। अन्य देवता यमार्य रक्तवर्णी हैं। हेरु कुल की देवियों में प्रमुख हैं—एकजटा तथा नैरात्मा। नीलवर्णी इन देवियों का रूप भयंकर है, लगभग काली के समान। अमिताभ नामक ध्यानी बुद्ध का कुल 'रागकुल' कहलाता है। प्रमुख देवी हैं, चतुर्भुजी, भयंकर रूप वाली कुरु कुल्ला। चिंतामणि कुल के ध्यानी बुद्ध रत्नसंभव हैं। प्रमुख देवता-देवी हैं जम्मल एवं वसुधरा। मोह कुल के ध्यानी बुद्ध वैरोचन हैं। कुल की प्रमुख देवियाँ हैं, मारीची एवं वज्रवाराही। द्वादश भुजाधारी मारीची सनातन धर्म की त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को पददलित करती हैं। अन्य देवी वज्रवाराही के तीन रूप भयंकर हैं—त्रिनेत्र, बिखरे केश, मुंडमाला। ये शव पर नृत्य करती हैं। वज्रवाराही डाकिनी, लामा, खंडरोहा तथा रूपिणी नामक देवियों से घिरी रहती हैं।

बौद्ध तंत्र के ध्यानी बुद्धों, देवियों एवं देवता अन्य तंत्रों में पाये जाने वाले देवी-देवताओं से ज्यादा भिन्न नहीं है। ये देवता अपने समय में प्रचलित विचारधारा के भी प्रतीक कहे जा सकते हैं। जैसे मारीची देवी का सनातन धर्म की पूज्य त्रिमूर्ति को पादाक्रांत करना। यह रूप इन देवताओं के प्रति बौद्ध तांत्रिकों का तिरस्कार प्रदर्शन ही है। मंत्रयान के क्रियातंत्र में भी अनेक कुल हैं, इनमें से कुछ में तंत्र साधना का प्रतिपादन है। क्रियातंत्र का अनुयायी देवता के ध्यान द्वारा ही सिद्धि प्राप्त कर सकता है। इसमें पैशाचिक क्रियाओं का भी समावेश है। ऐसी क्रियाओं के लिए रात्रिकाल को उपयुक्त बताया गया है। योग तंत्र में महामुद्रा पर विशेष जोर है। महामुद्रा का अर्थ है देवता-विशेष की काया। अन्य मुद्राएँ हैं—वज्रमुद्रा, दीपक मुद्रा आदि।

बौद्ध तंत्र में भी ध्यान, मंत्र जाप, नाद ध्यान एवं हठयोग की कुछ साधनाओं

का समावेश है। इन साधनाओं से सिद्धि प्राप्ति का भी उल्लेख मिलता है। सिद्धियां भी तीन कोटि की मानी गयीं है–उच्चतम, मध्यम तथा कनिष्ठ। विद्याधर, अभिज्ञान तथा तांत्रिक सिद्धियों को उच्च कोटि का माना गया है जबकि लोप हो जाना आदि मध्यम कोटि की। वशीकरण, मारण, उच्चाटन कनिष्ठ सिद्धियां हैं। कार्यतंत्र का प्रमुख तंत्र विरोचन वर्णित महावैरोचना अभिसंबोधि तंत्र है।

कार्यतंत्र को दो भागों में बाँटा गया है 1. तंत्र की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ तथा 2. साधना के लिए मार्गानुसरण, जिसके चार विभाग हैं–अभिषेक (दीक्षा), संबर (शुद्ध आचार), साम्या (संकल्प), प्रारंभिक सेवा। सेवा में तीव्र रुचि सिद्धियों की दिशा में ले जाती है। सगुण और निर्गुण उपासना की तरह योग भी दो भागों में बंटा है, एक में मूर्ति का आलंबन है, दूसरा निरालंब है। इस योग में ध्यान एवं मंत्र जाप का समावेश है। अनियमित योग में शरीर के भीतर पंच महाभूतों का ध्यान किया जाता है। समाधि में प्रकाश दर्शन होता है। पांतजलि योग के अध्येता जानते हैं कि उसमें भी ध्यान एवं समाधि में ऐसी ही विधियों का समावेश है।

योगतंत्र में मंडल एवं गुरु का महत्व है। गुरु मंडल में ही शिष्य को दीक्षित करता है। मंडल के भी कई प्रकार हैं–जैसे रंगों द्वारा धरती पर निर्मित मंडल इसे रजोमंडल भी कहा जाता है। (अल्पना के रूप में आज भी लोकप्रिय)। कपड़े पर चित्रित मंडल, ध्यान में मंडल की रचना तथा अंत में देह को ही मंडल मान लेना। ये मंडल स्वयं भी बनाये जाते हैं और अन्य से भी बनवा ये जा सकते हैं। मंडलों के साथ देवता के आह्वान के लिए कलशों की भी व्यवस्था है। अनुत्तर तंत्र को उपाय तंत्र तथा प्रज्ञान तंत्र भी कहा जाता है। कुछ ने इस तंत्र को पितृ, मातृ तथा अद्वैत तंत्रों में विभाजित किया है। एक ध्वनि तंत्र का भी उल्लेख मिलता है। ध्वनि तंत्र भी हेतु, उपाय एवं फल तंत्र में विभाजित है। शैव या शाक्त तंत्र की भाँति बौद्ध तंत्र में भी अभिषेक या दीक्षा का अतिशय महत्व है।

इस तरह शैव, शाक्त तथा बौद्ध तंत्र के विभिन्न संप्रदायों में बाह्य भिन्नता के बावजूद एक आंतरिक एकता परिलक्षित होती है और इसका एक प्रमुख कारण यह है कि मनुष्यों का मन और मस्तिष्क एक जैसा ही है। उनकी आकांक्षाएं, उनकी पूर्ति की अभिलाषा भी एक जैसी है। लक्ष्य एक है, मार्ग पृथक्-पृथक्, रुचि वैभिन्न्य के कारण।

अपनी कृति 'पोस्ट चेतना सहजिया संप्रदाय' में एम.एम. बोस लिखते हैं, 'बौद्ध तंत्र में हम वैसा ही वर्णन पाते हैं, जैसाकि हिंदू तंत्र में वर्णित है। ऐसा

प्रतीत होता है कि हिंदू धर्म के शिव, दुर्गा नाम को बौद्ध तंत्र में वज्रसत्व, वज्रडाकिनी आदि के रूप में वर्णित किया गया है। बौद्ध तंत्र में भी चंडी, तारा, वाराही आदि की पूजा का प्रचलन है। जिस तरह शिवोक्त तंत्र में तरह-तरह की देवियों की कल्पना की गयी है, उसी तरह बौद्ध तंत्र में भी हेरुका-जैसी देवियों का वर्णन है। बौद्ध तंत्र में भी मालामंत्र, मातृकाओं, कवच, हृदय आदि की चर्चा है। इन्हें परम गोपनीय कहा गया है। मूल बौद्ध धर्म में पंचमकारों की भर्त्सना की गयी है, जबकि बौद्ध तंत्र में पंचमकार उसकी प्रमुख विशेषता है। बौद्ध तंत्र में सिद्ध साधक को वीर नायक कहा जाता है और बौद्ध तांत्रिक मानते हैं कि यह जगत नारी से उत्पन्न हुआ है (वामोद्भव)। इसी तरह बौद्ध तंत्र में भी अन्य तंत्रों की भाँति चक्र पूजा, वीरयाग एवं भगपूजा का प्रचलन है।" इसीलिए बौद्ध तंत्र को प्रच्छन्न हिंदू धर्म कहा जाता है।

बौद्ध तंत्र की दोनों शाखाएँ–दक्षिणाचारी एवं वामाचारी–मानती हैं कि सभी व्यक्ति वज्रसत्व हैं और ध्यान एवं कतिपय साधनाओं द्वारा सबमें मौजूद वज्रतत्व को यथार्थ बनाया जा सकता है। वामाचारी शैवतंत्र के निकट हैं, जबकि दक्षिणाचारी वैष्णव तंत्र के। बौद्ध तंत्र में बुद्ध के तीन परंपरागत शरीरों के अलावा एक चौथे शरीर की कल्पना की गयी है। यही वज्रसत्व की असली प्रकृति है–यह शरीर आनंदमय है–आनंद, सुखमाया, महासुख काया! इसी शरीर में शाश्वत तथागत अपनी सनातन शक्ति तारा या भगवती से मिलन करते हैं। इसीलिए अपने सच्चे दैवी स्वरूप को जानने के लिए साधक को भगवती के साकार रूप या जो स्वयं भगवती है, स्त्री से मिलन (सहवास!) के कर्मकांड को पूर्ण करना चाहिए। कहा गया है–**बुद्धतत्वम् षोषिडयोगिनी समासृितम** (बुद्धत्व का स्त्री की योनि में वास है) बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए स्त्री के सानिंध्य में जो विधि-विधान बताये गये हैं, आज का समाज उन्हें व्यभिचार की श्रेणी में रखेगा।

एक बार मैं सारनाथ बौद्ध विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रिम्पोछे से मिलने गया था। ईश्वर संबंधी एक पुस्तक के लेखन के दौरान बौद्ध धर्म में ईश्वर की अवधारणा के संबंध में उनके विचार जानना ही इस यात्रा का उद्देश्य था। चूँकि श्री रिम्पोछे उस समय व्यस्त थे और उन्होंने हमें कुछ समय रुकने का संदेश भिजवाया था, मैं अपने अग्रज तुल्य सुप्रसिद्ध वरिष्ठ पत्रकार श्री अनंतराम गौड़ के साथ विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में चला गया। वहां अनेक पुस्तकों के पृष्ठ पलटते-पलटते एक तिब्बती पुस्तक के कुछ पृष्ठों ने मुझे आश्चर्य से भर दिया। प्रत्यक्षत: वे बाजारों में 'कोकशास्त्र' के नाम से बिकनेवाली पुस्तकों में छपे संभोगासनों के रेखांकनों से भरे थे। पुस्तक किसी पांडुलिपि की जेरोक्स प्रति

थी। बाद में तिब्बती भाषा के एक जानकार से पूछने पर उन्होंने बताया कि वह पुस्तक बौद्ध तंत्र से संबंधित थी।

बौद्ध तंत्र के वज्रयानी संप्रदाय के अनुयायी तारा देवी की पूजा करते हैं। कहा जाता है कि महायान के जनक नागार्जुन तिब्बत से एकजटा नाम वाली तारादेवी की अनेक मूर्तियाँ लाये थे। साधनमाला तंत्र से भी इसकी पुष्टि होती है। दस महाविद्याओं के रूप में ख्यात दस देवियों में एक उग्र तारा भी है। 'रचनावली' शीर्षक अपनी एक कृति में पी. बंद्योपाध्याय ने लिखा है कि बौद्ध तांत्रिकों में कामवज्रयान नामक एक संप्रदाय था, जो मानव जन्म एवं ब्रह्मांड के जन्म को एक ही सिद्धांत पर आधारित मानता था।...इस संप्रदाय के ग्रंथों में ऐसे अश्लील विवरण हैं, जिन्हें सामान्य पाठकों के लिए मुश्किल से प्रकाशित किया जा सकता है। इस संप्रदाय के अनुसार, इस जगत की उत्पत्ति काम से ठीक उसी प्रकार हुई है, जिस प्रकार मानव प्राणियों की उत्पत्ति हुई है...उनके कर्मकांड का उद्देश्य ब्रह्मांडीय कामभाव एवं मानवीय कामभाव के मध्य समरसता उत्पन्न करना है। इसीलिए वे निरन्तर कामसाधना में तल्लीन रहते हैं। इस काम लालसा को उन्होंने मंदिरों एवं मठों में प्रदर्शित किया है...मेरा यह विचार है कि जगन्नाथ का मंदिर (पुरी) मूल रूप से इन्हीं कामवज्रयानी लोगों के प्रभाव के अंतर्गत निर्मित किया गया था।...विमला देवी (पुरी मंदिर) का स्थल उनके लिए पवित्र था। इसी श्री मंदिर (पुरी मंदिर का अन्य नाम) में ब्रह्मांडीय सृजन एवं मानव शरीर के मध्य समरसता उपलब्ध की गयी। इन सभी अश्लील शिल्पों में प्रत्येक पुरुष बौद्ध भिक्षु है और प्रत्येक स्त्री मंदिर की देवदासी। संपूर्ण मंदिर कामवज्रयानी बौद्धों के सिद्धांतों पर निर्मित किया गया।"

अपनी अध्ययन योग्य कृति 'लोकायत' में श्री डी.पी. चट्टोपाध्याय उपरोक्त विचार उद्धृत करते हुए लिखते हैं–'यह ऐतिहासिक रूप से सत्य हो सकता है कि इस मंदिर का निर्माण करने वाले इस तंत्र संप्रदाय के लोगों की बौद्ध धर्म के प्रति आसक्ति हो...पर इन शिल्पों में कोई बौद्ध तत्व नहीं है। बौद्ध पूर्वाग्रह त्याग देने के बाद हम इन शिल्पों को अच्छी तरह समझ सकते हैं। और जब हम ऐसा करते हैं तो हमारे पास कृषि जादू-टोने को रेखांकित करने वाले विश्वास का कोई विकसित रूप शेष रह जाता है। संभवत: कोणार्क के अवशेषों ने भी एक विशाल पैमाने पर कृषि जादू टोने का प्रदर्शन देखा था।'

तंत्र साधना का एक समय कितना प्रचार-प्रसार एवं प्रभाव था, यह इसी से जाना जा सकता है कि शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, बौद्ध धर्मों में तंत्र साधना तो चली ही एक वैदिक शाक्त संप्रदाय को भी पर्याप्त लोकप्रियता मिली। समय

के साथ-साथ देश के अनेक स्थानों पर शक्तिपीठों की भी स्थापना हुई। मूल शक्तिपीठ थे–उत्कल में उड्डीयान, पंजाब में जालंधर में जाल, महाराष्ट्र में पूर्ण, श्री शैल पर मतंग तथा असम में कामख्या। कालांतर में इक्यावन शाक्त पीठ बन गये। नेपाल में वज्रयान का वर्चस्व रहा, कारण बौद्ध धर्म के जो आचार्य नेपाल गये, उनके ही शिष्यों ने वहां वज्रयान का प्रचार-प्रसार किया। नेपाल के पड़ोसी प्रदेश तिब्बत में भी अनेक बौद्ध आचार्य गये। वहां भी वज्रयान को आश्रय मिला। उसे वहां कालचक्र यान का पर्याय माना जाता है।

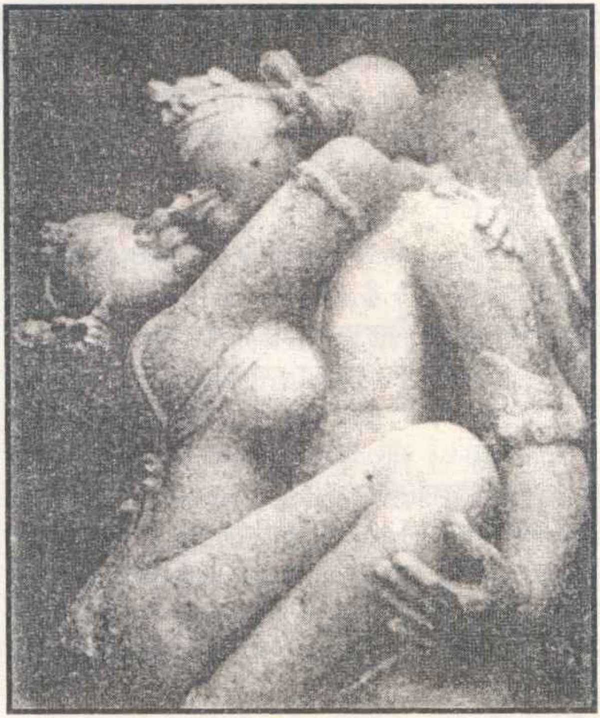

खजुराहो के एक मंदिर में मिथुन मूर्ति (ईस्वी, 1000)

चौदहवीं शती तक भारत में तांत्रिक साधना का अपना विशिष्ट स्थान रहा। बाद में अनेकानेक कारणों से तांत्रिक साधना केवल कुछ पीठों तक सीमित होकर रह गयी। धीरे-धीरे उसका स्थान शक्तिपूजा ने ले लिया तथापि इस पूजा में तंत्र-साधना के कुछ अवशेष बचे रहे। तंत्र साधना ने जनजीवन को प्रभावित करने के साथ-साथ स्थापत्य को भी प्रभावित किया। देश के अनेक मंदिरों में मिथुन मूर्तियों का बाहुल्य इसी तथ्य का प्रमाण है।

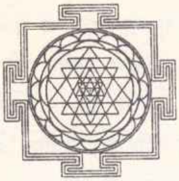

तंत्र और ताओवाद

चीन में कन्फ्यूशियस दर्शन जहां वैदिक दर्शन की भाँति पुरुष प्रधान है, वहीं ताओवाद, तंत्रसाधना की भांति नारीत्वमय ज्ञान की तलाश करता है। ताओवाद में प्रकृति की एक अह्‌म भूमिका है। ताओ प्रार्थनाओं में नारी को पूजा गया है। एक ताओ गीत का भावार्थ कुछ इस प्रकार है : 'जो पुरुष को जानता है तथापि जो नारी है, उसके लिए आतुर है, वह एक घाटी की तरह हो जाता है और स्वर्ग की छाया में जो कुछ भी है, उसे प्राप्त करता है। यह शाश्वत गुण कभी लुप्त नहीं होता। यह शैशव में लौटने के समान है, वह जो श्वेत को जानता है, फिर भी काले के लिए आतुर है, वह एक कसौटी बन जाता है, जिस पर सभी चीजें कसी जाती हैं और वह एक शाश्वत् गुण है, जो कभी गलती नहीं करता। यह असीमित की ओर लौटने की तरह हैं।

यह गीत पूर्णत: रहस्यवादी है और नारी को वरीयता देता है, क्योंकि नारी को जानने के बाद ही व्यक्ति स्वर्ग की न्यामतें पा सकता है। तंत्र की भांति ताओवाद में पुरुष की अपेक्षा नारी को प्राधान्य दिया गया है। इस दृष्टिकोण ने ताओ दार्शनिक को प्रकृति के शांत, निष्क्रिय निरीक्षण के लिए प्रेरित किया और बाद में इसी ने उन्हें प्रकृति के रहस्यों को जानने के लिए प्रयोगधर्मा बना दिया है। ताओवाद में नारी का प्राधान्य चीनी आदिम समाज के मातृसत्तात्मक होने का प्रमाण है। 'साइंस एंड सिविलाइजेशन इन चाइना' में जे. नीडम ने ताओवाद को अन्य यूरोपीय लेखकों से एक पृथक् दृष्टिकोण से देखने का यत्न किया है। भारतीय दर्शन के पुरुष एवं प्रकृति के सिद्धांत के अनुसार प्राचीन चीन में भी यांग एवं यिन के दो सिद्धांत थे। यांग को पुरुष, ऊष्मता, कठोरता, सक्रियता तथा शुष्कता का प्रतीक माना गया है जबकि यिन को स्त्री, कालेपन, आर्द्रता, कोमलता और निष्क्रियता का प्रतिनिधि कहा गया है। कन्फ्यूशियस एवं ताओ विचारधारा में हम इसी द्वैत सिद्धांत को पाते हैं। इनमें ताओ विचारधारा में यिन

की प्रधानता है, जबकि कन्फ्यूशियस विचारधारा में यांग की।

नीडम के अनुसार, ताओवाद में नारी की प्रधानता इन दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण है–1. ताओवाद के आदर्श समाज का मातृसत्तात्मक स्मृतियों से संबंध, 2. उनके नारी प्रतीक, 3. काम आसनों पर उनका जोर। नारी का महत्त्व, पुरुष के साथ नारी की समानता पर जोर, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु की प्राप्ति के लिए स्त्री-पुरुषों में सहयोग की आवश्यकता, स्त्री की कुछ मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं की सराहना, सामूहिक कार्यकलापों में वर्गभेद आदि से मुक्त सहवास आदि आदिम कबीलाई समूहवाद की याद दिलाता है और यही प्राचीन ताओवाद के कुछ नारी प्रतीकों में भी व्यक्त हुआ है। भौतिक अमरत्व की तलाश ने ताओवादियों को रसायनशास्त्र और कीमियागिरी की ओर प्रवृत्त किया। तंत्रशास्त्र की कुछ पद्धतियों में भी हमें यही कुछ दिखायी देता है।

प्राचीन ताओवादियों के अनुसार भौतिक अमरता इन बातों पर निर्भर थी–1. साँस लेने की विधियाँ (प्राणायाम), 2. आसन, 3. संभोग मुद्राएँ, 4. कीमियागिरी और औषध-पद्धतियां और 5. खान-पान नियम। यह भी हमें तंत्र के प्राणायाम, आसन एवं सहवास मुद्राओं की याद दिलाता है। प्राचीन ताओवादी काम अथवा सहवास को सिद्धि की प्राप्ति अथवा पूर्ण या सच्चा मनुष्य बनने के मार्ग में बाधक नहीं मानते थे, बल्कि वह कई महत्त्वपूर्ण तरीकों से लक्ष्य प्राप्ति में सहायक ही होता था। ताओवादियों की दृष्टि में सिद्ध अथवा पूर्ण, शुद्ध मनुष्य बनने का अर्थ भौतिक अमरता की प्राप्ति ही था। ऐसे साधक के लिए कुछ सामूहिक या गोपनीय मैथुन मुद्राएँ भी आवश्यक थीं। इसे स्त्री-पुरुषों के 'ची' को स्वीकृत करने की सच्ची कला कहा जाता था। साधकों के लिए तत्संबंधी समारोह अमावस्या या पूर्णिमा की रात को किया जाता था, जिसमें एक परंपरागत कर्मकांडी नृत्य के अलावा सामूहिक रूप में या कक्षों में लगातार मैथुन का समावेश था।

नीडम ने वज्र और पद्म, मैथुन मुद्राओं और स्त्रीपूजा का उल्लेख करते हुए कहा है कि उनमें और प्रारंभिक मध्ययुगीन ताओवाद में एक अद्भुत समानता है। तंत्र की भाँति ताओ साधना में भी स्त्री साधकों के समावेश को प्रोत्साहित किया जाता था। नीडम ने यह भी विचार व्यक्त किया है कि भारतीय तंत्र साधना संभवत: ताओवाद से प्रभावित और प्रेरित थी। लेकिन उनका यह विचार इसलिए गलत है कि भारतीय तंत्र साधना का उत्स सिंधु सभ्यता में और संभवत: उसके पूर्व के काल में है, जबकि चीन में ताओवाद दूसरी से छठवीं शती के मध्य प्रचलित था।

नीडम की तरह कुछ भारतीय लेखकों ने भी तंत्र साधना का मूल चीन

में माना है। उनके अनुसार, बौद्ध तांत्रिकों का सबसे बड़ा गढ़ असम (कामरूप) में था, जहां सातवीं शती में ताओ ते चिंग का संस्कृत अनुवाद कार्य पूरा किया गया है। तांत्रिक साहित्य में चीनाचार का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। हिंदू एवं बौद्ध तांत्रिकों द्वारा अपनाये गये तारा तंत्र के संबंध में कहा जाता है कि वह महाचीन देश से आया।

यह भी किंवदंती है कि महान ऋषि वशिष्ठ ने महाचीन जाकर बुद्ध से भेंट की थी, क्योंकि वे न तो भारत में मिल रहे थे और न तिब्बत में। बुद्ध ने ही वशिष्ठ को गोपनीय चीनाचार में दीक्षित किया। निस्संदेह ये तंत्र साधना में कुछ विदेशी देवियाँ–एकजटा तथा महाचीन क्रम मूल रूप से चीनी देवियाँ ही थीं, लेकिन उनकी उपस्थिति यह सिद्ध नहीं करती कि संपूर्ण भारतीय तंत्रसाधना का मूल विदेश में था। वास्तव में भारतीय तंत्र साधना का स्वरूप इतना व्यापक और विविध है कि उसे विदेशी प्रभावों को पचा लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

तंत्र और रसायन शास्त्र, कीमियागिरी

> *"भारतीय कीमियागिरी अपना रंग और रूप बहुत कुछ उससे (तंत्र से) प्राप्त करती है। तांत्रिक समुदाय एक ओर कीमियागिरी प्रक्रियाओं का और दूसरी ओर वीभत्स और अश्लील और कभी-कभी जुगुप्सा पूर्ण कर्मकांडों का विचित्र मिश्रण है।'*
>
> –पी. सी. रे, 'हिस्ट्री ऑव हिंदू केमिस्ट्री'

तंत्र ने न केवल अध्यात्म क्षेत्र की वरन रसायन शास्त्र आदि की समृद्धि में भी महत् योगदान दिया है। 'रस रत्नाकर', 'रसार्णव', 'काक चंडेश्वरिमाता तंत्र', 'रसेन्द्र चूड़ामणि', 'रसप्रकाशसुधाकर' आदि से इस योगदान का पता चल सकता है। नालंदा, उदंतपुर, विक्रमशिला एवं मगध विश्वविद्यालय में पढ़ाये जाने वाले तंत्रशास्त्र में रसायनशास्त्र और कीमियागिरी का समावेश था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यहीं से वह दक्षिण भारत और तिब्बत (भोट) में फैला।

तमिल के सित्तर (संस्कृत, सिद्ध) लोगों के गीतों में चर्यागीतों जैसी ही अनुगूंज है। इन सित्तरों में बोगर नामक एक चीनी तांत्रिक था, जिसने चिकित्सा एवं रसायनशास्त्र के अनेक ग्रंथ लिखे। बोगर तीसरी शती में भारत आया था और पटना तथा गया में कुछ समय बिताने के बाद वह दक्षिण भारत गया, जहां उसने तंत्रशास्त्र की दीक्षा ली और बाद में वह सित्तर (सिद्ध) माना जाने लगा। वह अरेबिया भी गया था। अनुमान किया जाता है कि उसके कुछ तमिल शिष्य चीन भी गये थे जहां से वे यांत्रिकी ज्ञान प्राप्त कर भारत लौटे। ये सित्तर शंकराचार्य के आदर्शवादी दार्शनिक विचारों से कतई असहमत ही नहीं, उसके विरोधी भी थे।

रसायन शास्त्र संबंधी तंत्रों में तथाकथित बौद्ध एवं हिंदू तंत्र का अनुसरण किया गया है। कहीं शिव-पार्वती संवाद है तो कहीं किसी बुद्ध, किसी तथागत या अवलोकितेश्वर के संवाद के रूप में उसे प्रस्तुत किया गया है। इन तंत्रों

में रसायनशाला में उपयोग में लाये जाने वाले कुछ यंत्रों और उपकरणों का भी उल्लेख है। इन तंत्रशास्त्रों में आध्यात्मिकता की बजाय भौतिकवाद पर ज्यादा जोर है। उनमें पारद और अन्य औषधियों के माध्यम से देह को हृष्ट-पुष्ट, स्वस्थ रखने की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है।

"अपनी देह त्यागे बिना जिन्होंने हर-गौरी (पारद और अभ्रक) के माध्यम से नया शरीर प्राप्त कर लिया है...अतः इस जीवन से मुक्ति की लालसा रखने वाले को स्वयं को सबसे पहले एक दैदीप्यमान देह में परिवर्तित करना चाहिए।" स्पष्टतः यहां मुक्ति से तात्पर्य किसी आध्यात्मिक मुक्ति से नहीं है। यह अवधारणा शरीर से संबंधित है। तांत्रिकों का विश्वास था कि पारे से तैयार रसायन शरीर को अक्षय बना सकते हैं। इसीलिए उसमें 'द' (अर्थात् 'प्रदाता') जोड़कर पारद शब्द बनाया गया है। उनकी एक स्तुति है : "हे महादेवि, शरीर का संरक्षण-संवर्द्धन पारद और प्राणायाम द्वारा प्राप्त किया जाता है। पारद दिव्य होने पर रोगों का नाश करता है और मार दिये जाने पर मृतक को जीवन देता है।" इस तरह तांत्रिकों का देहवाद ओर काया-साधन पर प्रतिक्षण जोर रहा है।

रसेश्वर सम्प्रदाय : देह की अमरता के लिए पारद

मध्यकालीन शैवमत के दो प्रमुख संप्रदाय थे, पाशुपत तथा आगमिक। पाशुपत मत से छह संप्रदायों में एक संप्रदाय रसेश्वर नाम से जाना जाता था। 'सर्व दर्शन संग्रह' में इनका उल्लेख है। रसेश्वर मोक्ष के लिए शरीर का अजर-अमर होना आवश्यक मानते थे। उनकी धारणा थी कि शरीर को बिना अमर बनाये मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता। उनका विश्वास था कि शरीर की यह अमरता केवल पारद से ही प्राप्त की जा सकती है। अद्वैत मत के अनुयायी रसेश्वर पारद की उत्पत्ति शिव-पार्वती के सर्जनात्मक मिलन को मानते थे। उनका विश्वास था कि इस तरह दिव्य शरीर प्राप्त कर लेने के बाद किया गया योगाभ्यास परम तत्त्व का आंतरिक ज्ञान प्राप्त कराता है।

तंत्र और मनोविज्ञान

> *'मनोविश्लेषण के समान तंत्र भी मानव स्वभाव के दर्शन पर आधारित है। यह दर्शन भारत के संदर्भ में उतना ही क्रांतिकारी है, जितना कि पश्चिम में व्यक्ति की अवधारणा बदलने में फ्रायड के सिद्धांत। तंत्र में स्वस्थ व्यक्तियों के मानसिक और व्यवहारपरक गुणों की चर्चा है। उसमें ऐसी साधनाओं की चर्चा है जिनके कारण मन और शरीर का सर्वोत्तम विकास होता है।'*
>
> –सुधीर कक्कड़
>
> (ओझे, सयाने, संत-साधु और वैद्य)

सभी दर्शन, धर्म, साधु-संत के प्रवचन प्रायः एक बात अवश्य कहते हैं कि 'मनुष्य इच्छाओं का दास है', 'मन अश्व की तरह चंचल है'। और फिर वे उस दासता से 'मुक्ति' और अश्व की तरह चंचल मन को नियंत्रण में रखने के लिए तरह-तरह के उपाय बतलाते हैं। तंत्र और आधुनिक मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण भी यही मानता है कि 'मनुष्य अपनी इच्छाओं का दास है'। और जिस तरह लोहा ही लोहे को काटता है, उसी तरह मन ही इस दासता से मुक्ति दिलाता है। तंत्र और मनोविश्लेषण दोनों में कहा जाता है कि मनुष्य को अपने मानसिक जीवन के प्रति सदैव सचेत, सजग रहना चाहिए। मनोविज्ञान के क्षेत्र में फ्रायड की अनेक मान्यताएं आज भी प्रचलित हैं, हालांकि उनकी कुछ स्थापनाओं का जुंग जैसे उनके शिष्यों ने ही खंडन किया है। उनका 'एडीपस ग्रंथि' का सिद्धांत बहुचर्चित है। 'एडीपस ग्रंथि' अर्थात् मातृमनोग्रंथि। फ्रायड के अनुसार लिंग-भेद संबंधी विचार अनेक समस्याओं और चिंताओं को जन्म देता है।

तंत्र भी एक स्तर पर लिंग-भेद को मानव-जीवन की एक अहम् समस्या मानता है। उस समस्या के निराकरण के लिए उसने अनेक मानसिक एवं क्रियात्मक साधनाएँ भी निर्धारित की हैं, तथापि इनमें मानसिक विचार या मानसिक साधना

का ज्यादा महत्त्व है। तंत्र मानता है कि आदिशक्ति अर्थात् कुंडलिनी शक्ति के रूप में मानव शरीर में नारी एवं सहस्रार स्थित शिव के रूप में पुरुष, दोनों मौजूद रहते हैं। तांत्रिक स्वयं में दोनों लिंगों को समाविष्ट मानता है। उसके अनुसार साधक तांत्रिक क्रियाओं के माध्यम से स्वयं में दोनों लिंगों की अनुभूति कर सकता है। यहां रामकृष्ण परमहंस के उस अनुभव का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा जबकि उन्हें एक समय साधनावस्था में महसूस हो रहा था कि उनके प्रत्येक रोम में लिंग एवं योनि संभोगरत थे।

तंत्र में नारी को सर्वोच्च पद दिया गया है और साधक से कहा गया है कि वह नारीत्व को प्राप्त करे। तांत्रिक क्रियाएं अचेतन मन में स्थित नारीत्व को चेतना स्तर पर लाती हैं। अर्द्धनारीश्वर का विग्रह या कल्पना यही सिद्ध करती है कि प्रत्येक पुरुष में नारीत्व की भावना विद्यमान रहती है। सामान्य स्थितियों में यह भावना अनेकानेक वर्जनाओं, परंपराओं के कारण व्यक्त नहीं हो पातीं, लेकिन जब भी लोक-सम्मत अवसर मिलता है तो वह प्रकट हो जाती है। कृष्ण की आराधना करते हुए स्वयं को राधा समझना तथा भावावेग की स्थिति में स्त्रियोचित भंगिमाएँ प्रदर्शित करना पुरुष मन में छिपी बैठी नारी भावना का ही प्रकटीकरण है। ऐसे व्यक्ति के लिए यह परम आनंद का क्षण होता है। दूसरे शब्दों में लिंगभेद के प्रति जागरूकता आनंदावस्था के मार्ग की बाधा बन जाती है।

रोग और तंत्र

आम जनता तांत्रिक को हर रोग की, समस्या की रामबाण औषधि समझती है। कुछ तांत्रिकों के विज्ञापन भी उनके इस विश्वास को पुष्ट करते हैं। भूत-प्रेत, 'हवा', 'जिन्न', 'चुड़ैल' आदि से पीड़ित व्यक्तियों के लिए तो वही एकमात्र उद्धारक माने जाते हैं। आधुनिक मनोविज्ञान इनकी अनुभूति को मनोरोग ही मानता है और इसी तरह उनका उपचार करता है।

तांत्रिकों की मान्यता है कि सुषुम्ना स्थित षट् चक्रों में विकार आ जाने से व्यक्ति में मानसिक-शारीरिक विकार पैदा होते हैं। यदि शक्ति मध्य अथवा केंद्रीय नाड़ी में सही ढंग से नहीं प्रवाहित होती है तो तरह-तरह के मानसिक रोग घेर लेते हैं। इसीलिए तांत्रिक किसी रोग का निदान करते समय सर्वप्रथम रोगी के चक्रों की स्थिति जानने का प्रयत्न करता है। रोग के निदान के पश्चात् उपचार की बारी आती है। यह उपचार तरह-तरह के कर्मकांडों के रूप में होता

है। भारतीय मानस परंपरा से ही कर्मकांड प्रिय है। इससे अधिक उसके न किये जाने के कारण होने वाली हानि के भय से आतंकित है। आधुनिक सुशिक्षित डॉक्टर की बजाय ओझों, सयानों या बाबा की विभूति या तांत्रिक उपचार पर उसका ज्यादा विश्वास है। कहते हैं कि यदि रोगी का अपने चिकित्सक पर अगाध विश्वास हो तो उसका आधा रोग तो उस चिकित्सक के सामने पहुँचते ही दूर हो जाता है। यह एक वास्तविकता है। और यही इस बात का प्रमाण है कि हमारे अचेतन मन की शक्ति हमारी अत्यधिक जटिल शारीरिक प्रक्रियाओं में हस्तक्षेप कर उन्हें सुधार भी सकती है और बिगाड़ भी सकती है। कहा भी गया है 'विश्वासं फलदायकम्'। विश्वास फलदायक होता है।

मेरे एक परम मित्र हैं। ईश्वर आदि को न माननेवाले। बाबा आदि के चमत्कारों पर विश्वास का तो प्रश्न ही नहीं। लेकिन वर्षों पहले उन्होंने मुझे अपनी एक उलझन बतायी। हुआ यह कि वे किसी 'एलटीसी' पर टूर में सपरिवार गए थे। शिरडी भी जाने का कार्यक्रम था। वे स्वयं तो कुछ नहीं मानते लेकिन परिवारवालों की आस्था थी, इसलिए बाबा के मंदिर भी गये। उन्होंने मुझसे बताया, "यार, मैं चमत्कार-वमत्कार कुछ नहीं मानता। लेकिन अर्चना के साथ जो घटा, उसे क्या कहूँ, समझ में नहीं आता। अर्चना के हाथों में कुछ 'स्पॉट' से उभर आये थे। बड़ा परेशान था। उसकी शादी में ये धब्बे बहुत बड़ी रुकावट बन सकते थे। शिरडी बाबा के मंदिर में उसने प्रतिमा के दर्शन करते समय एक ही प्रार्थना की कि 'बाबा, मेरे इस रोग को दूर कर दो।' और यार आश्चर्य, उस के हाथों में वे धब्बे ऐसे गायब हुए कि बस! तुम तो जानते हो कि मैं इन सब बातों को नहीं मानता लेकिन बाबा की ऊदी (विभूति) लगाते ही दागों का बिलकुल गायब हो जाना भी समझ में नहीं आता।"

आधुनिक मनोविज्ञान इसे मानसिक शक्ति का चमत्कार मानेगा। अमेरिका में कैंसर के रोगियों पर मानसिक शक्ति के प्रभाव को जानने के लिए अनेक प्रयोग किये गये हैं। कैंसर की एक-सी अवस्था वाले कुछ रोगियों को दो समूहों में बाँटा गया। दोनों को एक ही प्रकार की औषधियाँ दी गयीं। दोनों समूहों की चिकित्सा में कोई अंतर नहीं रखा गया। अंतर कुछ था तो यही कि एक समूह के लोगों से कहा गया कि वे मन ही मन इस बात की भावना करते रहे हैं कि एक श्वेतवस्त्रधारी देवदूत अपनी बरछी से उनके कैंसर वाले अंग पर सतत् आक्रमण कर रहा है और उसके आक्रमण से वे नष्ट भी हो रहे हैं। दूसरे समूह से ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया। छह मास बाद दोनों समूहों का परीक्षण किया गया। पाया गया कि जिस समूह को देवदूत की कल्पना करने को कहा गया

था, उनकी स्थिति में उन लोगों की तुलना में काफी सधार हुआ है, जिन्हें ऐसा कोई निर्देश नहीं दिया गया था। तंत्र के साधक मन की ऐसी शक्तियों से बहुत पहले परिचित हो गये थे। इसीलिए कहा जाता है कि वे इच्छामात्र से असंभव को संभव कर दिखाते थे।

मन का शरीर पर भी कितना दूरगामी और चमत्कार जैसा प्रभाव पड़ सकता है। यह इस सत्य घटना से सिद्ध होता है। कुछ वर्षों पूर्व दक्षिणपूर्वी एशिया के एक देश में, शायद थाईलैंड में, एक ईसाई महिला समूचे विश्व में चर्चा का केंद्र बनी हुई थी। 'गुड फ्राइडे' को अर्थात् जिस दिन ईसा को सूली पर चढ़ाया गया था, उसकी स्मृति में मनाये जाने वाले पर्व के दिन उस महिला की हथेलियों, माथे और पैरों के पास घाव बन जाते थे, जिनसे खून भी बहने लगता था। ईसा मसीह को भी इन्हीं अंगों में कील ठोंककर सूली पर चढ़ाया गया था। प्रतिवर्ष गुड फ्राइडे को उस चमत्कारिक महिला के दर्शन के लिए भारी भीड़ एकत्र हुआ करती थी। महिला के शरीर में गुडफ्राइडे को ही घाव बनना वास्तव में चमत्कार ही माना जाता था। मनोवैज्ञानिकों, चिकित्सकों आदि ने भी इस महिला का परीक्षण किया। पाखंड का कोई प्रश्न ही नहीं था, क्योकि महिला ईसा मसीह के प्रति पूर्णरूपेण समर्पित थी। एक तरह से वह 'संत' स्वभाव की थी। तो फिर उसके शरीर पर गुड फ्राइडे को ही क्यों घाव बनते थे? वर्षों बाद इस रहस्य से पर्दा उठ सका।

मनोवैज्ञानिकों, चिकित्सकों ने देखा कि गुड फ्राइडे के सात दिन पूर्व ही वह ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने वाले प्रसंग को याद कर व्यथित हो उठती थी। वह ईसा को हुई पीड़ा का अनुभव करने की कोशिश करती थी। चाहती थी कि जिस तरह ईसा के शरीर पर सूली पर चढ़ाये जाने से जो घाव हुए, वैसे ही घाव उसके शरीर पर भी हों। और उसकी यह भावना इतनी तीव्रतम हो जाती थी कि उसके शरीर में वाकई वैसे घाव बन जाते थे। यह सब उसकी उसी भावना का ही परिणाम था।

वर्षों पूर्व यूरोप के किसी गाँव में कुछ बच्चों ने एक पहाड़ी पर ईसा की माँ मरियम को आकाश में मंडराते देखा। उन्होंने अपने परिवार वालों को बताया और परिवार वालों ने गांववालों को। कुछ और लोगों की भी मरियम की यह आकृति दिखायी दी। धीरे-धीरे वह पहाड़ी एक तीर्थस्थल बन गयी। शोधकर्त्ताओं ने बच्चों तथा अन्य लोगों के इस कथन की सत्यता जाननी चाही। सतत् शोध के बाद उन्हें पता लगा कि मरियम की आकृति बच्चों और अन्य लोगों ने देखी जरूर होगी लेकिन वह उनका मात्र दृष्टिभ्रम था और कुछ नहीं, इसमें दैवी चमत्कार

जैसी कोई बात नहीं।

हम सब भी अपने जीवन में अक्सर ऐसे दृष्टिभ्रम के शिकार होते रहते हैं। एक मेरा स्वानुभव :

मैं एक दिन शाम आफिस से निकलकर ट्रेन पकड़ने के लिए मिंटो ब्रिज स्टेशन जा रहा था। सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक स्व. गोपालकृष्ण कौल भी उन दिनों उसी ट्रेन से घर लौटा करते थे। हम लोग सहयात्री थे। मेरे लिए कौल साहब बड़े भाई की तरह आदरणीय थे। उस शाम मेरे मन में कौल साहब से मिलने की उत्कट अभिलाषा थी। कारण, कई दिनों से उनसे भेट नहीं हुई थी। उनके साथ सफर सदैव मेरे ज्ञान में इजाफा करता था।

मैं जब मिंटो ब्रिज स्टेशन पर प्लेटफार्म पर जाने के लिए सीढ़ियाँ चढ़ रहा था तो मैंने प्लेटफार्म पर दूर से नजर दौड़ाकर यह देखने की कोशिश की कि क्या कौल साहब कहीं खड़े हैं। एक जगह मुझे वे खड़े हुए दिखायी दिये। मैं यह सोचता हुआ कि चलो आज का सफर अच्छा कटेगा, मैं तेज कदमों से सीढ़ियाँ उतरकर उनकी ओर बढ़ने लगा।

लेकिन यह क्या?

कौल साहब तो वहां थे ही नहीं।

सोचा, शायद पानी पीने गये हों।

पर गाड़ी भी चल पड़ी, कौल साहब नहीं आये।

दरअसल कौल साहब उस दिन दिल्ली आये ही नहीं थे। वह मेरा मात्र दृष्टिभ्रम था। पर वह दृष्टिभ्रम मेरे अपने मन की ही कारगुजारी थी।

तांत्रिक इसी मन को साधने की विधिवत् शिक्षा लेते हैं। उत्कट साधना के बाद वे अपने मन को एकाग्र करने में सफल होते हैं। इसमें मंत्र जप बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। तांत्रिकों के अनुसार, बीज मंत्र का शुद्ध उच्चारण विशिष्ट एवं जटिल भावनात्मक परिस्थितियां उत्पन्न करने वाले स्पंदनों को जन्म देता है।

भारतीय सौंदर्य-शास्त्र एवं तंत्र

'द आर्ट ऑव तंत्र' में फिलिप रासन ने लिखा है–"वस्तुतः समूचा भारतीय सौंदर्य शास्त्र तंत्र पर आधारित था। यहां तक कि सिद्धांत के स्तर पर भी बहुत कम लोगों ने इसे जाना है। तथापि भारतीय कला में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति को इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।" भारतीय सौंदर्य शास्त्र की समृद्धि में अभिनव गुप्त के महत्त्वपूर्ण योगदान को सभी स्वीकार करते है। उनका रस सिद्धांत अत्यन्त प्रसिद्ध है। एक घंटे की ध्वनि का उदाहरण देते हुए अभिनव गुप्त ने यह मान्यता स्थापित की कि रस घंटे की मूल ध्वनि में नहीं, उसकी अनुगूंज में है। इसी तरह प्रेक्षक जब किसी कलाकृति अथवा मंच पर प्रस्तुत किसी नृत्य-गान या नाटक से अभिभूत हो वह स्वयं को उसका हिस्सा समझने लगता है तो उसका साधारणीकरण हो जाता है। साधारणीकरण और रस निष्पत्ति ही किसी कला की श्रेष्ठ उपलब्धि भी है।

कला कैसे कार्य करती है? वह प्रेक्षक के हृदय में उसके अपने अतीत से जुड़ी घटनाओं की जुड़ी अनुभूतियों या भावनाओं को, जो सुप्त-सी पड़ी रहती हैं, जागृत कर देती है। दूसरे शब्दों में कोई भी कला जब प्रेक्षक को उसके वर्तमान से अतीत में ले जाकर उसकी सुप्त अनुभूतियों से पुनः साक्षात्कार कराती है तो वह आनंदातिरेक से सिहर उठता है। भावनाएं कई तरह की हो सकती हैं लेकिन वे साहित्य में वर्णित नौ रसों में किसी-न-किसी से संबद्ध होती हैं। कला के विभिन्न रूप इन्हीं सुप्त भावनाओं को जागृत कर प्रेक्षक को रस-विशेष का आस्वादन कराते हैं।

सौंदर्य शास्त्र का महारस तंत्र के महाराग की भांति ही है। अभिनव गुप्त के इस सिद्धांत में तंत्र का प्रभाव, उसकी मान्यताएं निहित है कि मानस में उपस्थित सुप्त स्मृतियों और अनुभूतियों का सार्थक, सकारात्मक उपयोग किया जा सकता है। यह पातंजलि प्रणीत योग से सर्वथा विपरीत है। पातंजलि चित्त वृत्तियों के

निरोध को ही योग कहते हैं। उनके योग में इंद्रिय निरोध, भावावेगों को दमित कर साधना का निर्देश है, जबकि तंत्र चित्त वृत्तियों का निरोध सिरे से अस्वीकार करता है। वह चित्तवृत्तियों के सार्थक, सृजनात्मक उपयोग में आस्था रखता है। कला भी चित्त वृत्तियों के निरोध में नहीं, उनके प्रस्फुटन में ही सृजनात्मकता की ऊंचाईयों को छूती है।

अभिनव गुप्त कश्मीरी थे और कश्मीरी शैवागम के एक प्रमुख आचार्य, जिन्हें कहीं-कहीं स्वयं शिव का रूप माना गया है। अभिनव गुप्त रचित तंत्रालोक, शैव मत की दार्शनिक व्याख्या का प्रामाणिक तंत्र ग्रंथ माना जाता है। अभिनव गुप्त तांत्रिक साधना 'कुल' का प्रत्यक्ष ज्ञान उपलब्ध करने बंगाल गये थे। अभिनव गुप्त को साक्षात् शिव मानकर अनेक कथाएं भी लिखी गयी हैं ये कथाएं हमें तंत्र में हेर-फेर से प्रचलित एक प्रसिद्ध कथा का स्मरण कराती हैं, जिसमें बताया गया है कि वशिष्ठ ने किस प्रकार विष्णु को बुद्ध के रूप में तांत्रिक साधना में तल्लीन देखा।

अभिनव गुप्त को भी अंगूरों के एक उद्यान में चित्रों से सुसज्जित, सुगंधियों से सुगंधित एक मंडप में स्वर्ण सिंहासन पर आरूढ़ दर्शाया गया है, वे सुरापान करते बांसुरी बजा रहे हैं। उनके नेत्र आनंद से कंपित हैं। वे आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत सुंदर स्त्री पुरुषों से घिरे हुए हैं। वे अपनी दो दूतियों के साथ तांत्रिक क्रियाओं में तल्लीन होते हैं। तथा बाद में अपने शिष्य-शिष्याओं को उसे दोहराने का संदेश देते हैं।

अनेकानेक प्रतिष्ठित चित्रकारों और मूर्तिकारों को तांत्रिक क्रियाओं में प्रेरक वर्ण्य विषय मिले हैं और उन्होंने कुछ अद्भुत चित्रों एवं मूर्तियों की रचना की, जिनमें से कुछ को आज की दृष्टि घोर अश्लील समझाती है। उड़ीसा एवं राजपूत चित्रकला में सहवास की विभिन्न मुद्राओं का जो अंकन हुआ है, वह दर्शनीय है। स्थापत्य कला पर तंत्र का प्रभाव सर्वविदित है। कोर्णाक, पुरी, भुवनेश्वरी, खजुराहो के हिंदू मंदिरों में ही नहीं, राजस्थान के अनेक जैन मंदिरों में भी मैथुन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। त्रिवेंद्रम के प्रसिद्ध शेषशायी मंदिर के कुछ स्तंभों पर भी मिथुन मूर्तियाँ देखी जा सकती हैं। यों भी असम, बंगाल, उड़ीसा के साथ केरल भी तंत्र-साधना का एक केंद्र रहा है।

तंत्र एवं लोकायत अथवा चार्वाक दर्शन

तंत्र पर अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अन्य दृष्टि से भी विचार किया है तथा उसके आध्यात्मिक पक्ष के साथ-साथ उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी रेखांकित करने की कोशिश की है। प्रख्यात मार्क्सवादी चिंतक और लेखक श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय ने अपनी शोधपूर्ण कृति 'लोकायत' में तंत्र का लोकायत अथवा चार्वाक दर्शन से संबंध स्थापित किया है। उनका विवेचन अत्यन्त विशद् है तथा हमें तंत्र के प्रारंभ, उसके विकास तथा उस पर बाद में आरोपित आध्यात्मिकता के कारणों को समझने में मदद करता है।

लोकायतों अथवा चार्वाकों के संबंध में आज कोई उनकी अपनी प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं, लेकिन भारत में वैदिक युग से जिन दर्शनों का प्रारंभ हुआ, उनमें लोकायत अथवा चार्वाक एक प्रमुख दर्शन था। वैदिक धारणा के सर्वथा विपरीत लोकायत न तो परलोक में, न बलि में और न ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते थे। लोकायत वैदिक विश्वास और वेदों के कट्टर विरोधी भी थे। लोकायतों का अपना कोई लिखित या मौखिक प्रामाणिक साहित्य उपलब्ध नहीं है। उनके बारे में जो भी जानकारी हमें उपलब्ध है, वह उनके कटु आलोचकों की टीका-टिप्पणियों से। लोकायतों की जिन धारणाओं का खंडन किया गया है, उनसे ही इस दर्शन के संबंध में ज्ञात होता है। लोकायत प्रत्यक्ष इंद्रियानुभूति को ही प्रामाणिक मानते थे। उनका दर्शन आम जनता का दर्शन था तथा वे ईश्वरवाद और कर्मकांड के नाम पर होने वाले समकालीन शोषण के घोर विरोधी थे। वे जनता को उससे सावधान किया करते थे। उनका ईश्वर, स्वर्ग, अमरत्व आदि का प्रतिपादित करने वाले वैदिक दर्शन, वैदिक संस्कृति से जबर्दस्त विरोध था।

स्वाभाविक था कि उन्हें भी वैदिक दर्शन पर विश्वास करने वाले की कटु आलोचना का सामना करना पड़ा। उन्हें इंद्रियलोलुप कहा गया। यह भी उक्ति के नाम पर प्रचलित की गयी कि 'ऋण लो और घी पियो'। लोकायत दर्शन

की सहानुभूतिपूर्वक व्याख्या करने और उसके यथार्थ स्वरूप एवं मर्म की खोज करने वाले पाश्चात्य और भारतीय विद्वानों का मत यह है कि यह उक्ति लोकायत को बदनाम करने के लिए उनके नाम पर गढ़ी गयी। लोकायतों को ब्राहस्पत्य भी कहा जाता है। हैतुक के रूप में भी उनकी चर्चा मिलती है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में सांख्य और योग के साथ-साथ लोकायत की भी चर्चा की है तथा उसे अनुवीक्षकी (तर्कविज्ञान) निरूपित किया है। बाण के 'हर्ष चरित्र' में भी उनका उल्लेख मिलता है। महाभारत के शांति पर्व से भी हमें चार्वाक (लोकायत) के चिंतन के संबंध में पता चलता है। प्रसंग कुछ इस प्रकार है :

कुरुक्षेत्र युद्ध की समाप्ति के बाद जब विजेता वापस घर लौट रहे थे तो नगर द्वार पर युधिष्ठिर को आशीर्वाद देने हजारों ब्राह्मण एकत्र हो गये थे। इनमें चार्वाक भी था। युधिष्ठिर के आगमन पर वह ब्राह्मणों की भीड़ से बाहर निकल आया और उसे संबोधित करते हुए बोला, "ब्राह्मणों की यह सभा तुम्हें शाप देती है क्योंकि तुमने अपने निकट संबंधियों की हत्या की है। अपने ही लोगों का विनाश कर, अपने ही बड़ों को मारने से तुम्हें क्या मिला? तुम भी मृत्यु को प्राप्त हो।"

चार्वाक के इस सहसा विस्फोटात्मक उद्‌बोधन से उपस्थित ब्राह्मणों में सन्नाटा छा गया। युधिष्ठिर ने भी स्वयं को आहत अनुभव किया। उसने प्राण त्यागना चाहा। यह देख अन्य ब्राह्मणों को चेत हुआ और उन्होंने युधिष्ठिर से कहा, 'चार्वाक उनका प्रतिनिधि नहीं है। ब्राह्मण वेश में वह राक्षस है। दुर्योधन का मित्र।' ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर के कृत्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की और चार्वाक को जीवित जला दिया। चार्वाक उस कबीलाई संस्कृति का पोषक था, जिसमें रक्त संबंधों और रिश्तों को सर्वोपरि माना जाता है। महाभारत काल में यही संस्कृति विद्यमान थी। लेकिन महाभारत दो विरोधी कबीलों का युद्ध नहीं था। वह तो एक ही कबीले के लोगों का आपस में युद्ध था। इसीलिए चार्वाक का कोप स्वाभाविक ही था।

महाभारत युद्ध के पूर्व जब अर्जुन इसी कबीलाई भावना के कारण अपने बंधु-बांधवों, पितामह भीष्म तथा कृपाचार्य-द्रोण जैसे गुरुओं के विरुद्ध लड़ने से हिचकिचा रहा था तो कृष्ण ने उसे गीता का उपदेश दिया और कहा कि इस युद्ध में यदि तुम मारे जाओगे तो तुम्हें 'स्वर्ग' मिलेगा और यदि तुम विजयी हुए तो पृथ्वी का भोग करोगे। लोकायतों का किसी और अनदेखे स्वर्ग में विश्वास नहीं था। उनके लिए इसी पृथ्वी का जीवन सब कुछ था। वे मनुष्य के भौतिक जीवन और उसके भौतिक यथार्थ संसार को ही मानते थे। उनके अपने कुछ रीति-रिवाज और कर्मकांड थे, जो ब्राह्मण कर्मकांड से मेल नहीं खाते थे। बल्कि उनके विरोधी थे।

चौदहवीं शती के जैन टीकाकार गुणरत्न ने आठवीं शती में हरिभद्र द्वारा रचित 'षट्दर्शन समुच्चय' की टीका लिखी है। उसमें उन्होंने लोकायतों की भी चर्चा की है। उनके अनुसार, "चार्वाक निरीश्वरवादी थे, वे पाप-पुण्य नहीं मानते थे। वे केवल प्रत्यक्ष ज्ञान पर ही विश्वास करते थे। वे मद्य पीते, मांस खाते तथा अनियंत्रित मैथुन में रत रहते। प्रत्येक वर्ष वे एक नियत तिथि को एकत्र होते तथा स्त्रियों के साथ असंयमित संभोग में जुटते। वे आम आदमी की तरह व्यवहार करते, इसी कारण उन्हें लोकायत कहा गया।'

तांत्रिकों के प्रसिद्ध पंचमकारों से तीन यहां मौजूद हैं। गुणरत्न ने लोकायत दृष्टिकोण की चर्चा करते हुए लिखा है : पहले नास्तिकों का स्वभाव। कापालिक जो शरीर पर भस्म लगाते हैं और जो योगी हैं तथा जिनमें से कुछ पतित ब्राह्मण हैं। वे पुण्य, पाप में विश्वास नहीं रखते। उनका कहना है कि यह जगत चार तत्त्वों से बना है। उनमें से कुछ चार्वाक तथा अन्य लोग आकाश को पाँचवा तत्त्व मानते हैं। उनके अनुसार, जगत पाँच तत्त्वों से बना है। उनके अनुसार, चेतना इसी से मादक शक्ति की तरह उद्भूत होती है। लोग पानी के बुलबुले की भांति हैं। मनुष्य कुछ नही, चैतन्य युक्त देव ही है। वे मदिरा पीते, मांस खाते तथा भेदभाव के परे संभोगरत रहते हैं। प्रत्येक वर्ष एक नियत तिथि को वे एकत्र होते हैं तथा अपनी इच्छानुसार किसी भी स्त्री से संभोग करते हैं। वे काम के परे कोई अन्य धर्म नहीं मानते। वे चार्वाक, लोकायत कहलाते हैं। चूँकि उनका सिद्धांत मूल रूप से बृहस्पति द्वारा प्रतिपादित किया गया था, वे बृाहर्स्पत्य भी कहलाते हैं।

मांस, मदिरा, मैथुन पर विश्वास करने वाले लोकायत तंत्र के अनुयायी थे। यद्यपि उनका तंत्र आज के प्रचलित तंत्र से, जिसमें आध्यात्मिकता का जबर्दस्त पुट है और जिसे कालांतर में आरोपित माना जाता है, बिलकुल भिन्न था। दरअसल विद्वान मानते हैं कि मूल तंत्र का यही स्वरूप था। वह विशुद्ध रूप से भौतिकवादी था। यह तंत्र मानव चिंतन के उस काल को दर्शाता है, जब वह आध्यात्मिक मूल्यों से परिचित नहीं हुआ था। इस मूल तंत्र के संबंध में कोई प्रामाणिक जानकारी इसलिए अनुपलब्ध है कि कालांतर में इस मूल तंत्र को आध्यात्मिकता का आवरण ओढ़ाने का निरन्तर प्रयास होता रहा। इसीलिए तंत्र के भी भेद हुए–बौद्ध तंत्र एवं हिंदू तंत्र, जिसके बाद में दो भेद हुए वैष्णव तंत्र एवं शाक्त तंत्र। लेकिन वास्तव में तंत्र का उद्भव आध्यात्मिक विचार के, वेदों में भी पहले हुआ था।

वामाचार के मूल संकेत

गुणरत्न का यह कथन कि लोकायत समय-समय पर सामूहिक सहवास क्रिया में संलग्न होते थे, उनके वामाचारी होने की ओर संकेत करता है। वाम अर्थात् नारी और संभवत् काम भी। तंत्र में यह दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसीलिए तंत्र की पहले भी आलोचना होती रही और आज भी उसके इस पक्ष को निंदनीय माना जाता है क्योंकि तंत्र पूजा में स्त्री, विशेषकर उसके गुप्तांग की पूजा की अनेक विधियों का उल्लेख है। यही नहीं, स्त्री के रज को 'पुष्प' की संज्ञा दी गई है। विद्वानों का मत है कि तंत्र से इस पक्ष को आज के नैतिक मूल्यों की कसौटी पर कसना गलत होगा। उसे मानसिक विकृति समझना भी अन्याय होगा। तंत्र के इस पक्ष के पीछे एक दीर्घ सुविचारित पृष्ठभूमि है। यों तो वैदिक साहित्य में भी मैथुन संबंधी, धर्म सम्मत विधियों का वर्णन प्राप्त होता है। अथर्ववेद में मैथुन को दो काष्ठ टुकड़ों–अश्वत्थ और शमी को रगड़ने से उत्पन्न अग्नि के रूप में देखा गया है। प्राचीन वैदिक विश्वासों के अनुसार यज्ञ एवं मैथुन की प्रक्रियाएँ गुंथी हुई थीं।

श्री देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय के अनुसार–"वैदिक साहित्य में उपलब्ध मैथुन का कर्मकांडी महत्त्व पितृसत्तात्मक अवधारणाओं का अंश था तो इसके विपरीत लोकायत परम्परा कृषिजन्य मातृसत्तात्मक अवधारणाओं से जुड़ी हुई थी। लेकिन दोनों का यह विश्वास था कि मैथुन भौतिक संपत्ति में वृद्धि करता है। वैदिक जन के लिए भौतिक संपत्ति पशुओं के अर्थ में थी, जबकि लोकायत कृषि उत्पादों को भौतिक संपत्ति मानते थे। वे वनों को काटकर कृषि योग्य भूमि तैयार करते थे। वैदिक साहित्य में मैथुन संबंधी 'कर्मकांड' में पुरुष का प्रधान्य था। बृहद आरण्यक उपनिषद् में पुरुष को परामर्श है कि 'यदि स्त्री उसकी इच्छापूर्ति के लिए तैयार न हो तो वह उसे लकड़ी या हाथ से मारे और उसे काबू में करते हुए कहे, 'मैं गौरव के साथ, ताकत के साथ तेरे गौरव को छीन रहा हूँ।' उस तरह वह गौरवहीन हो जाएगी।' तंत्रज्ञ और लोकायत उस मत के अनुयायी थे, जहाँ नारी का अत्यन्त आदर किया गया है। वे शक्ति रूप में संबोधित हैं। उनका अनादर अपराध और पाप है। सारांश में वैदिक संस्कृति जहां पुरुष प्रधान थी, वहीं लोकायत संस्कृति स्त्रीप्रधान, नारी के इस प्राधान्य, नारी की पूजा का मूल कृषि से जुड़ा है। यह इसलिए कि आदिम समाज में कृषि की शुरुआत का श्रेय स्त्री को ही था। आज भी भारत ही नहीं अन्य देशों में कृषि से संबंधित अनेक पर्वों और उत्सवों में नारी की यही मुख्य भूमिका रहती है।

देवियों की कल्पना

गृह्य सूत्रों में कृषि से संबंधित अनेक देवियों के नाम पाये जाते हैं, जैसे सीता, असा, आद्रा, अनद्या, यजा, समा, भूति। कृषि के प्रारम्भिक चरण में स्त्रियों का ही वर्चस्व था। पुरुष आखेट एवं बाद में पशु चारण के लिए निकलते थे और स्त्रियाँ अन्नादि के दाने बीनने। दाने बीनते-बीनते ही उनमें बीज बोकर अन्न उगाने का विचार आया। हल से खेती के आविष्कार के पूर्व तक स्त्रियां ही जमीन में गड्डा खोदकर बीज बोया करती थी। इस तरह उस काल में कृषि अर्थव्यवस्था स्त्रियों में हाथ में थी, जिसने उन्हें समाज में श्रेष्ठता का दर्जा प्रदान किया। इसके साथ ही मातृ अधिकार का भी उदय हुआ लेकिन बाद में जैसे-जैसे पुरुष वर्ग का उत्पादन के साधनों पर वर्चस्व होता गया, वैसे-वैसे स्त्रियों के अधिकार, उनकी सामाजिक हैसियत भी घटती गयी। लेकिन धार्मिक विश्वासों में उनका महत्त्व बना रहा। शाक्त संप्रदाय में देवी को 'आदिशक्ति', 'जगदम्बा' आदि निरूपित किया गया है। अन्य आदिम कृषि संस्कृतियों में मातृ देवी की अवधारणा स्पष्ट रूप से मिलती है।

मोहनजोदड़ो और हड़प्पा का उत्खनन करने वाले मार्शल के अनुसार, वह 'माँ' या 'जगदम्बा' है और 'शक्ति का प्रतीक' जो बाद में 'शक्ति' के रूप में विकसित हुई। उसके प्रतिनिधि थे ग्राम देवता, स्थानीय प्रभाव के कारण जिनके नाम यद्यपि भिन्न-भिन्न थे तथापि वे एक ही शक्ति का साकार रूप थे। अनार्य लोगों के देवताओं में उनका प्रमुख स्थान था। आदिम जनजातियों में वे बेहद लोकप्रिय थे। उनका पूजा-पाठ ब्राह्मण की बजाए पुरानी जन-जाति के व्यक्ति द्वारा की जाता है। आज भी जन-जातियों में भिन्न-भिन्न रूपों में देवी की ही पूजा की जाती है। यही नहीं वह भारतीय कृषक समुदाय भी जो अब आदिम अवस्था में नहीं है, प्रमुख रूप से देवियों को ही पूजता है। परंपरागत भारतीय समाज के मानस में आदिम अतीत आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। तंत्र में प्रकृति के रूप में नारी की ही प्रतिष्ठा है।

कृषि और जादू-टोना

आदिम समाज में कृषि के साथ जादू-टोना आदि भी अनिवार्य रूप से जुड़े हुए थे। संथाल वर्षा-ऋतु में धान की बुआई के पूर्व हरियारसिम पर्व मनाते हैं। मध्यप्रांत

के नाम से जाने वाले पुराने 'मध्यप्रांत और बरार' में कुरमी, सावन के मध्य में 'हरेली' त्यौहार का आयोजन करते हैं। इस दिन पशुओं को भात (पके चावल) के गोले खिलाये जाते हैं। हल को स्नान करा उसे सूरज के सामने रख उस पर घी-मक्खन आदि चढ़ाया जाता है। उत्तर प्रदेश में भी वर्षा में हरियार देवी की पूजा होती है। यहां तक कि प्राचीन वैदिक समाज में भी कृषि के लिए जादू-टोने को महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

थामसन का मानना है कि पशुचारण की अपेक्षा कृषि एक परिश्रम भरा, धैर्य की माँग करने वाला कार्य था। जुताई, बुआई, कटाई इन सबमें मेहनत के साथ-साथ धीरज की भी जरूरत होती थी। अतः प्राचीन कृषि-समाज में जादू-टोने को प्रमुखता मिलना स्वाभाविक ही था। आदिम किसान को पता नहीं था कि एक बीज धरती में गाड़ने के बाद कैसे पनपता है, कैसे एक बीज से ही अनेक बीज पैदा हो जाते हैं। कालांतर में उसने अनुभव के साथ ही यथार्थ का कुछ-कुछ पता लगाया। इस बीच उसने फसल अच्छी होने के लिए जादू-टोने का आश्रय लेना शुरू किया।

जादू की आधारशिला अज्ञान है। लेकिन उसका एक मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। जादू का आधार यह है कि हम एक मायाजाल की सृष्टि कर यथार्थ पर नियंत्रण पा सकते हैं। यह भी एक भ्रम ही है तथापि इस भ्रम का, उसे पालने वालों पर जबर्दस्त असर पड़ता था। इस विश्वास के साथ कि कल्पना में, फैंटेसी में किसी इच्छा को पूरा कर लेने के बाद, वे वास्तव में भी वह इच्छा पूरी कर सकेंगे, वे इच्छा की पूर्ति के लिए मेहनत से जुट जाते थे।

'लोकायत' के अनुसार, 'यदि कृषि स्त्रियों का आविष्कार था तो यह भी तर्क संगत ही होगा कि कृषि जादू-टोना का मूल भी विशुद्धत स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र में रहा होगा। यहां हमें तंत्रवाद की एक महत्त्वपूर्ण कुंजी मिलती है। हमारी आम धारणा के सर्वथा विपरीत तंत्र भी अपने मूल रूप में एक ऐसा कर्मकांड था जिसमें केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती थी। कारण यही है कि तंत्र के सूत्र भी कृषि कर्मकांड में निहित थे। कालांतर में उसमें पुरुषों का भी समावेश हो गया, लेकिन वे भी स्त्रीवेश धारण कर ही ये जादुई कर्मकांड पूरा कर सकते थे।'

विश्व की अधिकांश जनजातियों में कुछ इससे ही मिलते-जुलते रीति-रिवाज थे। मेडागास्कर में पुजारी स्त्रीवेश में होते थे। अफ्रीका में जुलू कबीलों के मुखिया वर्षा के आयोजित समारोहों में स्त्रियों द्वारा पहना जाने वाला लहंगानुमा वस्त्र या पेटीकोट पहनते थे। न्यू मेक्सिको के उत्तरी अमेरिकी इंडियनों, इंडोनेशिया, पेलिव द्वीप समूह में भी पुजारी औरतों का वेश धारण करते थे। तंत्र में भैरवियों और

योगिनियों का महत्त्व सर्वविदित है। पुरुष तांत्रिकों को भी स्त्री वेश धारण कर परम शक्ति (नारी) का आह्वान करने के निर्देश थे। आचार भेद का कथन है–**वाम भूतव यजेत परम**। पंच तत्त्व, ख पुष्प और कुलस्त्री की पूजा करो। यही वामाचार है। परम आदि शक्ति का एक स्त्री बनकर आह्वान किया जाए। ऐसा क्यों?

'लोकायत' के लेखक की मान्यता है कि यह इसलिए कि मूल रूप से यह पूजा-विधि स्त्रियों से ही संबंधित थी और उसे उनका ही कार्य माना जाता था। यहीं तंत्र के साथ गहरे जुड़े वामाचार का वास्तविक अर्थ खोजा जा सकता है। वामा का अर्थ स्त्री अथवा कामभाव है। आचार अर्थ स्पष्ट है। इस तरह वामाचार का अर्थ हुआ स्त्री एवं संभोग संबंधी आचार। वैदिक साहित्य में सहवास संबंध कर्मकांडों का उल्लेख मिलता है तथापि वे पशु चारण संस्कृति और उसके लोगों के ही हैं। इसके विपरीत तंत्र में नारी को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। अत: नारी शक्ति के आह्वान के लिए उसके आह्वानकर्ता का स्त्री बनना आवश्यक है। वास्तविक तंत्र का प्रामाणिक साहित्य भी अनुपलब्ध-सा है। जो है, उसमें प्रक्षिप्त अंशों की भरमार है। फिर भी कुछ विद्वानों ने तांत्रिकों का विश्वास जीत तंत्र के संबंध में कुछ अधिकारिक ज्ञान प्राप्त किया है। बंगाल के तांत्रिक वामाचार को ही वैध मानते हैं। दक्षिण के मातृसत्तात्मक परम्परा को मानने वाले क्षेत्रों को छोड़ दें तो बंगाल ही तांत्रिकों का गढ़ रहा है।

षट्चक्र : नारीत्व के पीठ

तंत्र की योग साधना का भी मूल उद्देश्य स्वयं में निहित नारीत्व की खोज है। निरंतर अभ्यास एवं साधना साधक के मूलभूत व्यक्तित्व एवं चेतना को नारीत्व से पूर्ण बना देती है। तंत्र के अनुसार षट् या सप्तचक्र और कुछ नहीं, नारीत्व के सात पीठ हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद हैं। इन चक्रों के जो काल्पनिक रेखांकन प्रचलित हैं, उनमें कमल के मध्य त्रिकोण स्थित है। यह त्रिकोण और कुछ नहीं, स्त्री योनि का प्रतीक है। तंत्र में इन पीठों में स्थित देवियों का भी उल्लेख है, जैसे कुलकुंडलिनी, वारुणी, लाकिनी, डाकिनी आदि।

कुंडलिनी शक्ति और चर्यागीत

तंत्र में प्राणायम, ध्यान आदि के माध्यम से अधोमुखी कुलकुंडलिनी को ऊर्ध्वमुखी

या जागृत करने का विधान है। सुषुम्ना में सबसे नीचे मूलाधार चक्र और सबसे ऊपर सहस्रार चक्र है। मूलाधार चक्र में स्थित अधोमुखी कुंडलिनी को जागृत और सहस्रार में पहुँचाकर साधक अपने व्यक्तित्व का पूर्णत: नारीकरण कर देता है। तांत्रिक मानते हैं कि सहस्रार में स्थित शिव (पुरुष) के साथ कुलकुंडलिनी (शक्ति-नारीत्व) का मिलन द्वैत को समाप्त कर सब कुछ एकाकार कर देता है। नारी बनकर आदि शक्ति के आह्वान की पुष्टि बौद्ध चर्या गीतों से भी होती है। उनमें चांडाली, डोम्बी, सावरी, योगिनी, नारायणी, सहज-सुंदरी आदि एवं योगी द्वारा इन देवियों से एकाकार होने का बारंबार उल्लेख मिलता है।

तत्सम्बन्धी कुछ चर्यागीतों का भावार्थ :

'योगी कान्हा कपाल बन गया है और योगाभ्यास करने लगा है।
वह अद्वैत रूप से नगर में विचर रहा है।'

'चौंसठ दलों वाला कमल, जिस पर चढ़कर नाच रही है डोम्बी'

'चांडाली नाभि प्रदेश में जलती है तथा वह पाँच तथागतों और लोकाना व अन्य देवी को भस्मीभूत कर देती है। और जब सब कुछ जल जाता है तो चंद्रमा 'हुम' की वर्षा करता है।'

'कमल और विद्युत मध्य में मिलते हैं और उनके मिलने से चांडाली जलती है। यह अग्नि डोम्बी के आवास के संपर्क में है-मैं चंद्रमा को ग्रहण करता हूँ और जल डालता हूँ। न तो भीषण ताप और न जल का नामोनिशान होता है, पर वह मेरु पर्वत के शिखर से आकाश में प्रवेश करती है।'

चंद्र द्वारा 'हुम' स्वर की वर्षा याद दिलाती है उस आदिम विश्वास की कि चंद्रमा स्वाभिकता: उर्वरकता का प्रदाता है। चर्या गीत संध्याभाषा में लिखे गये हैं और उनका केवल दीक्षित लोग ही अर्थ समझ पाते हैं। लेकिन इतना तो स्पष्ट है कि उनका उद्देश्य भी योग साधना द्वारा आदि शक्ति को अपने भीतर जागृत करना, उसका अद्वैत स्वरूप स्थापित करना है। बंगाल के सहजिया तांत्रिक समुदाय में भी यही मान्यता है-'अपने में समाये पुरुष को त्यागो और एक नारी (प्रकृति) बन जाओ तब एक ही शरीर में होगा, सनातन। ओ पुरुष, स्त्री बन जाओ।'

भंडारकर ने लिखा है कि 'प्रत्येक पवित्र साधक की आकांक्षा होती है कि वह त्रिपुर सुंदरी से तादात्म्य स्थापित करे और इसमें एक धार्मिक साधना यह है कि वह स्वयं को नारी समझता रहे।' इस अवधारणा के अनेक अर्थ लगाये गए हैं। श्री देवी प्रसाद चट्टोपाध्याय के अनुसार इस अवधारणा का वास्तविक अर्थ तंत्र के मूल महत्त्व को जानकर ही समझा जा सकता है। कृषि की आदिम अवस्था में ये कार्य स्त्रियों के अधिकार क्षेत्र में था। तब आज जैसा तकनीकी

ज्ञान था ही नहीं। कृषि की कला जादुई विश्वासों पर ही अवलंबित थी। यह भी विश्वास था कि प्रकृति की उत्पादन शक्ति स्त्री की प्रजनन शक्ति से मात्र जुड़ी हुई ही नहीं है, वह इस पर अवलंबित है। जब स्त्रियों का स्थान पुरुषों ने ले लिया तो उन्हें भी प्रतीकात्मक रूप से स्त्रीवेश स्वीकार करना पड़ा। और यह विश्वास केवल भारतीय आदिम जनजाति में नहीं वरन अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, अमरीका आदि की अनेक आदिम जन जातियों में भी प्रचलित था। और जब ईसाई पादरियों ने उन्हें रोकने की कोशिश की तो उन्होंने कहा कि स्त्रियां ही बच्चे को जन्म देने में समर्थ हैं, पुरुष नहीं। इसीलिए जब वे बीज बोती हैं तो फसल दुगुनी-तिगुनी होती है। ओटिंगो इंडियनों में ऐसा ही विश्वास प्रचलित था। वे धरती की उर्वरा शक्ति को स्त्री की प्रजनन शक्ति से जोड़ते थे। आस्ट्रेलिया और अमरीका की कुछ आदिम जनजातियों का तो आज भी विश्वास है कि धरती मां ही स्त्री के गर्भ में बच्चा डालती है। उनका दावा है कि यदि आप धरती पर कान लगाएंगे तो आपको अजन्मे बच्चों की चीखें और रोने की आवाज सुनायी देगी।

धरती को मां समझने और उसका संबंध सशरीरी मां से जोड़ने से एक देवी मां की कल्पना ने जन्म लिया। यह देवी सबका कल्याण करने वाली, 'अन्नदा', 'अन्नपूर्णा' थी। दुर्गा सप्तशती में भगवती अपने अवतारों के बारे में देवगण को जानकारी देते हुए कहती हैं : देवताओ, उस समय मैं अपने शरीर में उत्पन्न हुए शाकों द्वारा समस्त संसार का भरण-पोषण करूँगी। जब तक वर्षा नहीं होगी, तब तक वे शाक ही सबके प्राणों की रक्षा करेंगे। ऐसा करने के कारण पृथ्वी पर 'शाकम्भरी' नाम से मेरी ख्याति होगी।' देवी के इस कथन में एक यह अत्यंत आदिम विश्वास भी छिपा हुआ है कि पहले पौधे स्त्री के शरीर से ही उत्पन्न हुए थे।

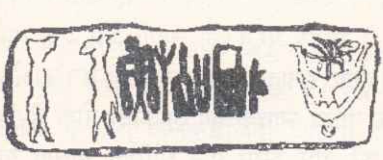

मार्शल को हड़प्पा से प्राप्त
मुहर का रेखांकन

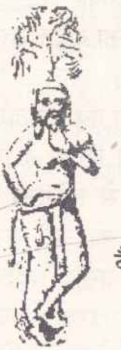

गुप्तकालीन
टैराकोटा मूर्ति का
रेखांकन

मार्शल को हड़प्पा से प्राप्त एक मुहर में एक स्त्री के शरीर से पौधा ऊगता दिखाया गया है। स्त्री के दोनों पैर ऊपर की ओर उठे हैं तथा उसके योनि प्रदेश से अनेक शाखाओं वाला एक पौधा निकला हुआ है। उन्हें प्रारंभिक गुप्तकालीन एक टेराकोटा भी प्राप्त हुआ, जिसमें स्त्री की योनि की बजाए गरदन से कमल निकलता दिखाया गया है। यह सब देवी और वनस्पति जगत के प्रगाढ़ संबंध को दर्शाता है।

दुर्गापूजा में प्रयुक्त किया जाने वाला घट, उसके चारों ओर या सामने उगाये गये जौ के हरे पौधे–आज भी धर्मनिष्ठ हिंदू घरों में देखे जा सकते हैं। पूर्ण घट अर्थात् मिट्टी की हांडी, जिसमें जल भरा जाता है। अनेक घरों में घट का स्थान धातु के पात्र ने ले लिया है। इन मिट्टी या धातु के घटों में पानी भरा जाता है तथा मिट्टी के एक चौकोर स्थल पर पंचसस्य अर्थात् अनाज को बिखेर उसे रख दिया जाता है। उसमें दही के साथ मिश्रित चावल रखा जाता है तथा मटकी या लोटे की गरदन पर लाल कलावा बाँध दिया जाता है। घट के खुले मुख पर पाँच प्रकार के पत्ते रखे जाते हैं और फिर एक पटिया में चावल-सुपारी रखी जाती है तथा उसे घट के मुख पर रख दिया जाता है। उसके ऊपर कोई फल विशेषकर जटावाला कच्चा नारियल रखा जाता है। नारियल को सिंदूर लगाया है तथा सिंदूर से ही घट पर एक आकृति बनायी जाती है, जिसे सिंदूर पुतली कहते हैं। मटकी के सामने सर्वतोभद्र मंडल का अंकन किया जाता है। इसमें मध्य में अष्टदल कमल होता है, साथ ही पुष्पों से युक्त लताएँ।

तंत्र में कमल को भी स्त्री की योनि का प्रतीक समझा जाता है। श्री चट्टोपाध्याय के अनुसार, यह सब मानव-प्रजनन की ही अनुकृति है। सिंदूर का उपयोग इस धारणा को पुष्ट करता है। घट, जल, फल आदि को स्त्री-योनि के प्रतीक कमल वाले सर्वतोभद्र मंडल के पास रखने का अर्थ उन्हें स्त्री के प्रजनन अंग के निकट लाना है ताकि वे सब एक से अनेक हो सकें। यह सब इसी आदिम विश्वास की याद दिलाता है कि प्रकृति की उत्पादकता को मानवीय, विशेषकर नारी की प्रजनन शक्ति का अनुकरण कर बढ़ाया जा सकता है।

लता साधना और यंत्र

तंत्र में लता साधना और यंत्रों का अत्याधिक महत्त्व है। यंत्रों से सभी परिचित हैं, पर यह लता-साधना क्या है? तंत्र में स्त्री की योनि-भग-को ही लता कहा

जाता है। आदिम विश्वास था कि स्त्री की योनि ही समस्त भौतिक समृद्धि का स्त्रोत है। प्राचीन तंत्र में भौतिक समृद्धि से तात्पर्य कृषि से ही था। लता का शाब्दिक अर्थ हम जानते हैं। प्राचीन तंत्र में लता को भग का प्रतीक मानने के पीछे यह विचार भी हो सकता है कि लता में फूल-फल लगाते हैं। इसी प्रकार स्त्री की योनि भी संतान को जन्म देती है।

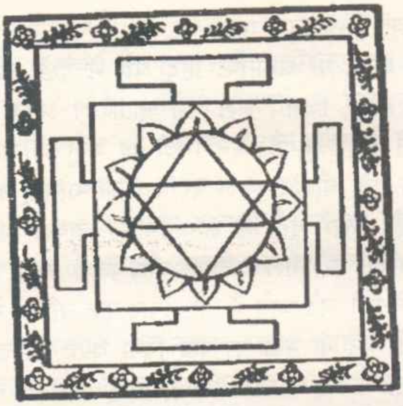

किसी भी विश्वास में समय-समय पर कई कारणों से नये-नये विचार आकर जुड़ जाते हैं। पूजा-पाठ और साधना की विधियां भी इसी तरह समय की आवश्यकतानुसार बदलती रहती हैं, पर उनका केंद्रीय भाव या उद्देश्य इन परिवर्तनों की परतों के नीचे जीवित ही रहता है। तंत्र में प्रचलित लता साधना में स्त्री को भगवती मानकर मद्यपान आदि से साधना की जाती है। साधक स्त्री के गुह्यागुह्य 'नाना स्थानों' में मंत्र जाप और उसके तथा स्वयं के अंग विशेष की पूजा-वंदनादि करता है। बाद में दोनों सहवास रत होते हैं। यह पूजाविधि आज कितनी घृणित मानी जाती है, यह 'तंत्र विज्ञान और उसकी साधना' में लेखक आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के इस वाक्य से जाना जा सकता है। वे लिखते हैं-"तंत्र में लता साधनादि और भी अधिक लज्जाकर और घृणाकर व्यवहार का उल्लेख है।... कलियुग में उसका प्रयोग वर्जित है।"

आदिम समाज का स्त्री की योनि एवं रज के प्रति जो औत्सुक्य, जो आदरभाव था, वह आगे चलकर भी यथावत् बना रहा। तंत्रों के रचना काल तक मनुष्य की बुद्धि प्रखर हो चुकी थी। उसकी अभिव्यक्ति, उसकी भाषा भी प्रांजल हो चुकी थी। उसने नाना रूपकों एवं उपमाओं तथा प्रतीकों से अपनी बात कहने की कला का भी विकास कर लिया था। तंत्र साहित्य में योनि को लेकर अनेक

दार्शनिक चिंतन प्राप्त होता है। यंत्र साहित्य में योनि को मुक्ति का साधन माना गया है और योनि के प्रतीक आदिम त्रिकोण की अनेक चमत्कृत व्याख्याएँ की गयी हैं। त्रिकोण के तीन बिंदुओं को इच्छा, ज्ञान, क्रिया का सूचक माना गया है। ज्ञानार्णव तंत्र में स्त्री के योनिमंडल को कामाख्या योनिमंडल की तरह पूजा के योग्य कहा गया है। यथा **"ततसमापि च सा योषितो योनिमंडले"**

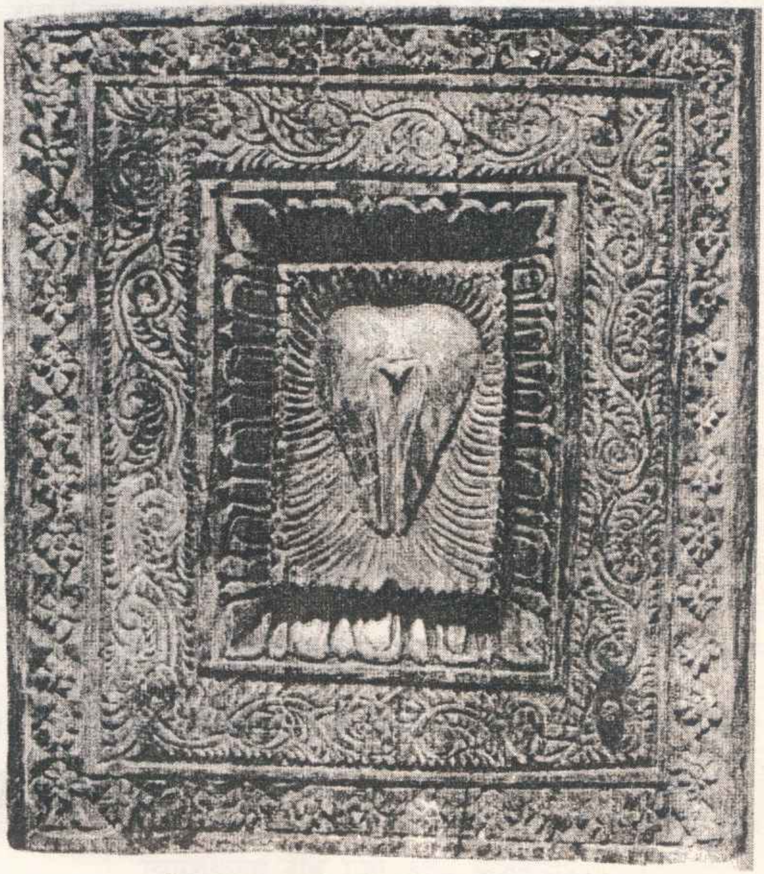

योनि पूजा (लकड़ी नक्काशी, 19वीं शताब्दी)

यही तंत्र योनि को 'गुणत्रय सम्पन्न', 'वाक्यत्रय विभावनी', शृंगाररूप संपन्न त्रिकोणाकृति कहता है। योनि की देवी भगवती के रूप में यह स्तुति तांत्रिकों के भावों को भली-भांति दर्शाती है।

ज्ञानार्णव तंत्र कहता है–

भगरूपेण सर्वेषां भूतानां देहमध्यगा
शिव सन्निधिमास्काय रत्यर्थ लिंग रूपिणी
सर्वेषां जननी सा तु रतयर्थ रमणी परा
पुंसो योनिः स्त्रियो योनिर्भगदा भगरूपिणी
यस्यान्तु जायते जंतुस्तस्यां चान्ते प्रलीयते

अंत में कहा गया है–

तस्माद्योनौ यजेद्देवी नित्यानंद रूपिणीम्

भावार्थ यही है कि वह समस्त भूतों की योनि योनि सृष्टि, स्थिति, प्रलय की आत्मिका है। भग के रूप में समस्त भूतों की देह में स्थित, शिव-सन्निधि में आस्थित रति के लिए लिंग रूप वाली, सभी की जननी, रति के लिए परा रमणी है। पुंस योनि, स्त्रियों की योनि, भगदा, भगरूपिणी है, जिससे जंतु उत्पन्न होता है और उसी में लीन होता है। आदि-आदि।

आदिम मनुष्य के पास अभिव्यक्ति और भाषा का ऐसा सामर्थ्य नहीं था। उसकी बुद्धि का इतना विकास भी नहीं हुआ था, तथापि योनि के प्रति उसका जो भाव था, वह आगे चलकर तंत्र में अक्षुण्ण रहा। इसी प्रकार आदिम समाज में जब संबंधों का निर्धारण नहीं हुआ था और विवाह-संस्था स्थापित नहीं हुई थी, तब यौन संबंधों में कोई वर्जना नहीं थी।

योगिनी तंत्रम् में भी हमें यही स्थिति मिलती है। उसमें कहा गया है–

मातृयोनि परित्यज्यं मैथुनं सर्वयोनिषु

भावार्थ यह कि माता को छोड़कर सभी योनियां (स्त्रियां) मैथुन की पात्र हैं।

योनि की यह महिमा, कामजन्य आनंद की श्रेष्ठता का गुणगान हमें उपनिषदों और ब्राह्मणों में भी मिलता है। तैत्तिरीयोपनिषद कहता है–

आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात
आनंदाद् ह्येयव खल्विमानी भूतानि जायन्ते
आनंदेन जातानि जीवंति
आनंद प्रत्यन्व्येभिसंविशं-तीति

आनंद ब्रह्म है, इस सत्य को (वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता के उपदेश से) जाना, आनंद से ही ये समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हुए प्राणी आनंद के द्वारा आनंद पाने की आशा में जीवन यापन करते हैं (सभी प्राणी) आनंद को प्राप्त होते हैं। आनंद में प्रवेश करते हैं, आनंद में लीन होते हैं, आनंद मे समा जाते हैं। सार रूप में मैथुन की यह क्रिया है, जिसमें सुख मिलता है, सुख होता है, वह आनंद है, जिससे प्राणी उत्पन्न होते हैं। मैथुन में एक सहज आनंद है।

वैदिक युग में रतियज्ञ के दो उद्देश्य थे–संतति विस्तार एवं आनंदानुसंधान तथा समाधि सुख। इस आनंदानुसंधान और समाधिसुख के लिए पुरुष, स्त्री हो जाता है और स्त्री पुरुष। कालांतर में दार्शनिक चिंतन और आगे अग्रसर हुआ तथा मैथुनानंद को ब्रह्मानन्द का सहोदर, उसका प्रतिदर्श मानकर भी क्षणिक माना गया। और सच्चाई भी यही है। इसीलिए दार्शनिकों ने एक और ब्रह्मानंद की कल्पना की जो काल निरपेक्ष और शाश्वत हो। तात्पर्य यह है कि वैदिक युग में काम सुख हेय नहीं, जीवन के लिए आवश्यक माना जाता रहा। तंत्र में भी यही स्थिति रही होगी। किंतु जैसे-जैसे परंब्रह्म की अवधारणा समाज में जड़ जमाती चली गयी, वैसे-वैसे कामसुख पर भी आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ता चला गया।

आदिम समाज में स्त्री का रज एक विस्मयकारी वस्तु था। रजोदर्शन के बाद ही स्त्री गर्भवती हुआ करती थी। आदिम मनुष्य को इस सहज शारीरिक क्रिया का ज्ञान नहीं था। विस्मय ने उसमें एक आदरभाव की सृष्टि की। वह स्त्री के रज को भी पूज्यनीय समझने लगा। तंत्र युग में भी स्त्री के रज के प्रति यही भाव विद्यमान रहा। तंत्र शास्त्र में स्त्री के रज को भी श्रेणियों में विभाजित किया गया और उसे एक सांकेतिक नाम दिया गया है। यथा–ख पुष्प, स्वयंभूपुष्प, गोलोद्‌भव, वज्रपुष्प-उल्लास, प्रौढ़ आदि।

मुण्डमाला तंत्र में कहा गया है–

हर संपर्कहीना या लतायाः काम मंदिरे।
जाते कुसुमादौ यंमहादेव्यै निवेदयेत॥
स्वयंभूकुसुमं देवि रक्त चंदन संजितम्।
तथा त्रिशुलपुष्पं च वज्रपुष्प वरानने॥
अनुकल्पं लोहिताक्षचंदनं हर वल्लभम्।

भावार्थ–पुरुष के संपर्क के बिना लता (अर्थात् स्त्री की योनि) से जो कुसुम (रज निकलता) है, उसे ही स्वयंभूकुसुम या रक्त चंदन कहा जाता है। उसके

अभाव में महादेवी को त्रिशूल पुष्प और वज्रपुष्प (चांडालिन का रज) चढ़ाना चाहिए। इसका अनुकल्प शिव-प्रिय लोहिताक्ष चंदन है।

सधवा स्त्री के रज को कुंडोद्भव तथा विधवा स्त्री के रज को गोलोद्भव कहा जाता है। समयाचार तंत्र के अनुसार, कुण्डोद्भव :

जीवद्भर्तृक नारीणां पंचम कारयेत प्रिये।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत्कुंडोद्भव मुच्यते॥

गोलोद्भव :

मृतभर्तक नारीणां पंचम यैव कारयेत।
तस्या भगस्य यद्द्रव्यं तत् गोलोद्भव मुच्यते॥

इस तरह हम देखते हैं कि तंत्र शास्त्र में हम मनुष्य की आदिम भावनाओं की एक परिष्कृत अनुगूँज पाते हैं।

लोअर आस्ट्रिया में अपर पालाओलिथिक काल की एक अत्यंत प्राचीन मूर्ति मिली है, जिसे 'वेनिस ऑफ् विलेनाडॉर्फ' नाम दिया गया है। यह एक दीर्घ स्तनों वाली भारी-भरकम नग्न स्त्री की मूर्ति है। उस पर गेरुआ रंग लगा हुआ था। उसके योनि प्रदेश को कोई महत्त्व नहीं दिया गया था। संभवत: यह 'उत्पादकता की देवी' थी। उसमें स्तनों एवं गर्भ प्रदेश को प्रमुखता दी गयी थी। इस काल में आदिम लोगों को प्रजनन क्रिया का कोई ज्ञान नहीं था। उनका विश्वास था कि गर्भधारण स्तनों में होता है। यह विश्वास इसलिए पैदा हुआ कि गर्भधारण

के बाद स्त्री के स्तन कुछ बड़े हो जाते थे। उनका विश्वास था कि बच्चा स्तनों से नीचे पेटे में आता है। अनेक प्राचीन संस्कृतियों में इसी तरह की मूर्तियाँ मिली हैं। जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ा, उसे प्रजनन के रहस्य मालूम होने लगे। इसीलिए बाद की मूर्तियों में स्तनों पर से जोर हटकर स्त्री के योनि प्रदेश पर आ गया क्योंकि गर्भस्थ शिशु इसी मार्ग से बाहर आता था।

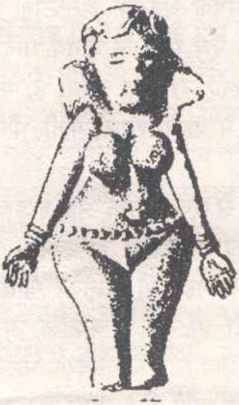

सिंधु घाटी, सीमांत भारत, मेसोपोटामिया, फोनेशिया, मेसोपोटामिया, मिस्र आदि में ईसा के आठ सौ से ढाई हजार वर्ष पूर्व के काल की जो स्त्री-मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें भग को त्रिकोणाकृति रूप में अंकित किया गया है। यंत्रों में अंकित त्रिकोण का मूल यही था, ऐसा माना जा सकता है। बंगाल के कुछ अंचलों में आज भी यह विश्वास प्रचलित है कि वर्षा की पहली झड़ी के बाद धरती मां रजस्वला होकर स्वयं को गर्भधारण के लिए तैयार करती है। इसीलिए कृषि संबंधी सारा कार्य रोक दिया जाता है।

रजस्वला होती प्रतिमा

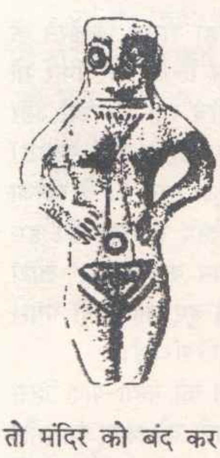

केरल के षणगूर नामक स्थान में पार्वती का एक मंदिर है। यहां भी माना जाता है कि देवी वर्ष में समय-समय पर रजस्वला होती है। केरल में ही एक अन्य स्थान पर देवी प्रतिमा के रजस्वला होने का विश्वास प्रचलित है। तब एक शुद्धिकरण समारोह होता है, जिसे त्रियुकारत्तु कहते हैं। प्रतिभा पर लपेटा गया वस्त्र जब कभी गीला और लाल धब्बों से युक्त पाया जाता है तो उसे देवी के रजस्वला होने का संकेत माना जाता है। वह वस्त्र वंजीपुझा या तलावुर गाँव की स्त्रियों के पास जाँचने के लिए भेजा जाता है। जब वे पुष्टि कर देती हैं कि ये धब्बे रजोदर्शन के हैं तो मंदिर को बंद कर दिया जाता है। वस्त्र धोबिन को दे दिया जाता है और फिर दोबारा उपयोग में नहीं लाया जाता तथापि उसे पवित्र मानकर लोग उसे ग्रहण करना चाहते हैं।

पंचमकार बनाम कृषि-कर्मकांड

तंत्र में वर्णित पंचमकारों में से श्री चट्टोपाध्याय ने केवल दो 'म'–मद्य मैथुन की चर्चा की है तथा उनका भी संबंध आरंभिक कृषि संबंधी कर्मकांड से जोड़ा है। ओरांव, बैगा, गोंड आदि जनजातियों में कृषि के समय आज भी मदिरा का खुलकर उपयोग होता है। गोंड महुआ की शराब का अपने अनेक धार्मिक अनुष्ठानों में प्रयोग करते हैं। अनेक विदेशी जनजातियों में भी जन्म एवं मृत्यु के समय मदिरा का भरपूर उपयोग किया जाता है। मदिरा प्रजनन के लिए उत्तेजित करती है, यह भी एक आदिम विश्वास है। संथालों की एक लोककथा में यह विश्वास भली-भाँति से व्यक्त होता है।

एक लोककथा के अनुसार–"दो पक्षियों के अंडों से एक लड़के और लड़की ने जन्म लिया। लड़के का नाम हाराम था, लड़की का आयो। वे नग्नावस्था में रहते थे और इसके लिए उनमें कोई लज्जा भावना भी नहीं थी। उनका जीवन शांतिपूर्ण बीत रहा था, लेकिन उनसे कोई बच्चे नहीं हो रहे थे क्योंकि उन्हें सहवास का कोई ज्ञान नहीं था। अतः एक दिन लीटा नामक एक मुखिया आत्मा उनके पास आयी और उसने उन दोनों से पूछा, 'तुम्हारे नाती-पोते कहां हैं? तुम लोग कैसे हो? मैं तुम्हारा पितामह हूँ। मैं तुमसे मिलने आया हूँ। मैं देखता हूँ कि तुम लोग सुख से तो हो लेकिन एक आनंद से, परमानंद से वंचित हो। तुम शराब बनाओ और उसका मीठा स्वाद चखो।'

हाराम और आयो ने ऐसा ही किया। धरती पर थोड़ी शराब बिखेरने के बाद उन्होंने पत्तों के दोनों में 'पहला जाम' लीटा के नाम लिया और फिर तो पीते ही चले गये। उन्होंने काफी मदिरा पी ली। इसी बीच रात हो गयी और वे लिपटकर सो गये। दूसरे दिन लीटा आत्मा फिर आयी। उसने उन्हें पुकारा। वे दोनों उठ गये पर उन्हें अब भान हुआ कि वे तो बिलकुल नग्न हैं। वे लज्जा से गड़ गये। उन्होंने लीटा आत्मा से कहा, "बाबा, हम बेहद लज्जित हैं। हम दोनों नंगे हैं। रात में हमने शराब के नशे में एक बुरा काम कर डाला।' लीटा आत्मा ने कहा, 'कोई बात नहीं' और मन ही मन मुस्कराते हुए वह चली गयी। इसके बाद हाराम और आयो को सात पुत्र और सात पुत्रियां हुईं।'

यह लोककथा बाईबिल की आदम-हौवा और शैतान की कथा याद दिला देती है। आदम और हौवा को सर्प ने ही वर्जित फल खाने को कहा था और उसे खाने के बाद उन्हें भी अपनी नग्नावस्था का भान हुआ था। आदिम जन-जातियों

में यह विश्वास प्रचलित था कि बिना मद्य के प्रजनन कार्य नहीं हो सकता था। मदिरा का नशा व्यक्ति को दूसरी दुनिया में ले जाता था और समझा जाता था कि उस पर आत्माएं उतर आयी हैं। इसी तरह कृषि कार्य को शुरू करने के पूर्व सहवास भी जरूरी माना जाता था। यह विश्वास प्रचलित था कि जिस तरह सहवास से वंशवृद्धि होती है, उसी तरह उससे फसल भी अच्छी होगी। भारत में नागाओं में कृषि की सफलता के लिए सहवास जरूरी माना जाता है। संथालों में पाँच दिनों के एक ऐसे उत्सव की प्रथा है, जिसमें खान-पान, नृत्य गान बिलकुल मुक्त भाव से होता है।

अपनी तमाम विकसित सभ्यता और संस्कृति के बावजूद मनुष्य अपनी अनेक बुनियादी आदिम वृत्तियों से छुटकारा नहीं पा सका है। ये वृत्तियाँ समय-समय पर देश काल के अनुरूप अपने मूल स्वरूप को यथावत रखकर भी परिवर्तित होती रही हैं। उदाहरण के लिए सामूहिक सहवास को, आज का समाज चाहे कितना ही घृणास्पद क्यों न कहे, वह किसी न किसी रूप में आज भी विद्यमान है, केवल ग्रामीण या जंगली इलाकों में ही नहीं, वरन् महानगरीय सभ्यता की विशाल अट्टालिकाओं, फार्महाउसों या निजी क्रीड़ा स्थलों में। 'वाइफ स्वापिंग', 'घट कंचुकी' या तंत्र के चूड़ा-चक्र का एक ही रूप है। यह बात और है कि 'चूड़ा चक्र' में आध्यात्मिकता का आवरण चढ़ा हुआ है और 'वाइफ स्वापिंग' विशुद्ध कामसुख का एक माध्यम है। 'घट कंचुकी' या 'चूड़ा चक्र' में स्त्री की चोलियाँ जो भूमिका निभाती हैं, 'वाइफ स्वापिंग' में उनका स्थान कार की चाबियों ने लिया है। 'चक्र पूजा' की भांति यह भी एक 'गोपनीय अनुष्ठान' है, जिसमें वे ही स्त्री-पुरुष भाग लेने में समर्थ होते हैं, जिन्होंने 'पति' या 'पत्नी' पर एकाधिकार के भाव से 'मुक्ति' पा ली है। यों, यह 'मुक्ति' भी कोई आसान नहीं है।

तंत्र-शास्त्र का यथार्थ

गत अध्यायों में तंत्र संबंधी सिद्धांत, साहित्य एवं उसके उद्‌भव एवं विकास का अध्ययन कुछ बातें स्पष्टतः रेखांकित करता है। एक तो यह कि कुछ ग्रंथों एवं तंत्र अध्येताओं की यह मान्यता कि तंत्र अद्वैतवादी सिद्धांत पर आधारित है। वेदांत में भी हमें अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि का विपुल उल्लेख मिलता है। यदि तंत्र को वेदों का परवर्ती मानें तो यह कहा जा सकता है कि उस पर वेदांत के अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। लेकिन एक मत शुरू से ही तंत्र को वेदों से पृथक मानता आया है। वेदांत केवल मुक्ति में विश्वास रखता है तो तंत्र भुक्ति और मुक्ति दोनों में। एक में 'काम' जहां त्याज्य है, वहां दूसरे में 'भोग' द्वारा काम का उदात्तीकरण है। तंत्र पर वेदांत का प्रभाव मानने वाले काम पर आध्यात्मिकता का एक आवरण चढ़ाना चाहते हैं।

कुछ अध्येताओं का यही मत है कि तंत्र विशुद्ध देहवादी है और उसमें आध्यात्मिकता का प्रवेश कालांतर में ही हुआ है। दरअसल तंत्र में प्राग्ऐतिहासिक सभ्यता के कुछ आदिम तत्व आज भी विद्यमान हैं, यह बात अलग है कि समय और सभ्यता के विकास के साथ-साथ उनका परिष्करण होता चला गया। तंत्र के प्रसिद्ध पंचमकार–मांस, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन–की विभिन्न व्याख्याएँ उसका अच्छा प्रमाण हैं। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि जहां कुछ तंत्रों में कहा गया है कि बिना पंचमकार के तंत्र साधना विशेषकर शाक्त तंत्र साधना पूरी नहीं होती, वहीं कुलार्णव तंत्र में पंचमकार के प्रयोग का सर्वथा निषेध करते हुए उसकी उपयोगिता और सार्थकता तथा वांछनीयता पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है।

कुलार्णव तंत्र का प्रश्न है :

मद्यपानेन मनुजो यदि सिद्धि लभेत वै।
मद्ययानरताः सर्वे सिद्धि गच्छंतु मानवाः॥

मांस भक्षण मात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत।
लोके मांसाशिनः सर्वे पुण्य भजो भवन्ति हि॥

भावार्थ : यदि मद्यपान करने से सिद्धि लाभ होता हो तो मद्यमान में रत सभी मानव सर्व सिद्धि प्राप्त कर लें। और यदि मात्र मांस भक्षण से पुण्य गति मिलती है तो सभी मांसभक्षी लोग पुण्यात्मा बन जाएंगे।

यदि तंत्र के उद्भव और विकास पर ध्यान दिया जाए तो यह ज्ञात होगा कि तंत्र का संपूर्ण इतिहास मानव की सभ्यता एवं सोच के उत्तरोत्तर विकास का भी दर्पण है। आदिम समाज जैसे-जैसे सभ्य होता गया, वैसे-वैसे उसके रीति-रिवाजों और विश्वासों का भी परिष्करण होता चला गया। लेकिन तमाम परिवर्तन और विकास के बावजूद आदिम समाज के कुछ तत्व किसी-न-किसी रूप में विद्यमान बने रहे और केवल भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी। इस दृष्टि से तंत्र मनुष्य सभ्यता के विकास का एक दस्तावेज भी कहा जा सकता है। इससे ज्ञात होता है कि हम प्रारंभ में क्या थे, और अपनी विकास यात्रा में कहां तक आगे बढ़ आये हैं।

भारत में ही नहीं तिब्बत, चीन, जापान, मंगोलिया एवं दक्षिणपूर्वी एशिया के देशों में तंत्र साधना किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रही है। काल-विशेषों में वह लोकप्रिय भी रही है और वह क्यों लोकप्रिय रही, इसके कारण तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के अध्ययन से स्पष्ट हो सकते हैं। निस्संदेह तंत्र की मूल स्थापनाएं उपयोगी एवं व्यावहारिक रही होंगी, इसलिए हर संप्रदाय ने अपने एक पृथक तंत्र की रचना की। यथा जैन तंत्र, वैष्णव तंत्र, शैव तंत्र, शाक्त तंत्र, गाणपत्य तंत्र, बौद्ध तंत्र,। कालांतर में इन तंत्रों में भी अनेक शाखा प्रशाखाओं का उदय हुआ। वैष्णव तंत्र में शिव-नारद संवाद है तो शाक्त तंत्र में शिव-पार्वती संवाद। संवादों के माध्यम से अपनी बात कहने की परंपरा प्राचीन है। ग्रंथकार शिव, पार्वती, नारद जैसे पूजित पात्रों के माध्यम से अपनी बात या सिद्धांत को महिमा मंडित करने का ही प्रयत्न करता है। बौद्ध तंत्र में बुद्ध को तंत्र का प्रतिपादन करता दिखाया गया है। बौद्ध साहित्य का अध्ययन कालांतर में उसमें आये परिवर्तनों के कारणों को भली-भांति स्पष्ट करता है।

वैष्णव तंत्र में पांचरात्र की प्रमुखता है, शैवागम में शिव की। इसमें परम शिव की पाँच शक्तियों, चित्त, आंनद, ज्ञान, इच्छा और क्रिया का प्रतिपादन है। 10 शैवागमों एवं 28 रुद्रागम प्रसिद्ध हैं। बाद में कुल मिलाकर 64 भैरवागमों का भी प्रचलन हुआ। शाक्त तंत्र में शक्ति की उपासना का प्राधान्य है। गाणपत्य

तंत्र गणपति की उपासना है। बौद्ध तंत्र का भी खूब प्रचार हुआ। इसमें तारा की उपासना प्रमुख है। जैन तंत्र के प्रवर्तक आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव माने जाते हैं, जिनका वेदों में भी उल्लेख है। जैन तंत्र में मंत्र साधना प्रबल रही, बाद में यंत्रों का भी प्रचार हुआ। इन तंत्रों के अतिरिक्त शाक्त तंत्र, डामर तंत्र, मुस्लिम तंत्र को भी पर्याप्त लोकप्रियता मिली।

तंत्र संबंधी विपुल साहित्य तथा विभिन्न संप्रदायों द्वारा उसका साधना में समावेश, यही सिद्ध करता है कि तंत्र के मूल तत्व साधारण जन के ज्यादा समीप हैं। तंत्र साधना त्वरित फल प्राप्ति का दावा करती है। सामान्य जन के पास सिद्धांतों की गहराई में जाने का न समय है न वे उसके तात्कालिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इसलिए कभी-कभी तंत्र को जादू-टोने का पर्याय भी मान लिया जाता है। एक दृष्टि से यह गलत भी नहीं है क्योंकि आदिम समाज ही नहीं, तथाकथित सभ्य वैदिक समाज में भी अभिचार कर्मों के रूप में मंत्र, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, जादू-टोने का प्रचलन था ही, यहां तक कि ईसाई धर्म में भी जादू-टोने, भूत-प्रेत आदि के विश्वास का समावेश हुआ। शैतान के रूप में एक 'एंटीक्राइस्ट' का अस्तित्व स्वीकारा गया, जो किसी-न-किसी रूप में बार-बार जन्म लेता है। हालीवुड की 'ओमेन' फिल्म ईसाई धर्म को मानने वाले कुछ लोगों के इसी विश्वास को रेखांकित करती है।

विज्ञान की कसौटी पर

जैसे-जैसे मनुष्य का चिंतन वैज्ञानिक होता जा रहा है, वह तमाम परंपरागत साधनाओं के वैज्ञानिक आधार को ढूँढ़ने में प्रयासरत है। वह उन्हें आधुनिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं की कसौटी पर कसकर भी सत्यान्वेषण में लगा हुआ है। जैसे बहुचर्चित कुंडलिनी शक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विज्ञान के सिद्धांतों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन कर कुछ उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त किये गये हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि कुंडलिनी शक्ति और उससे जुड़े षट् चक्रों की कल्पना का वैज्ञानिक आधार है। तंत्र संबंधी पुस्तकों में कुंडलिनी एवं षट्चक्रों का प्रतीकात्मक चित्रांकन सामान्य मनुष्य को थोड़ा भ्रमित कर देता है। कारण, प्रतीकों के अर्थ का ज्ञान न होने के कारण वह उन्हें समझ नहीं पाता।

वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह जानने की कोशिश की गयी है कि भावातीत अनुभव क्यों होता है? समाधि की अवस्था के लिए शरीर, विशेषकर मस्तिष्क

का कौन-सा केंद्र जिम्मेदार है? संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का एक संजाल तंत्र है, जो एक दूसरे के ऊपर मौजूद स्तरों द्वारा स्वत: नियंत्रित होता है और अंतत: संपूर्ण संजाल तंत्र 'स्व' या 'मैं' की चेतना के केंद्र से नियंत्रित किया जाता है। हमारी चेतना के स्तरों को मेरुदंड स्थित नाड़ी केंद्रों, जिन्हें 'चक्र' भी कहा जाता है, द्वारा संतुलन में ग्रखा जाता है। भावातीत अनुभव का प्रयोगों से परीक्षण नहीं किया जा सकता, उसका तो स्वानुभव से ही पता चलता है। इसके लिए 'शरीर' को 'तैयार' करने या अनुकूल बनाने की आवश्यकता होती है। भक्ति, विश्वास, आतुरता, प्रेम, संपूर्ण समर्पण द्वारा ही शरीर यह अनुकूलता प्राप्त कर सकता है, या ये सब बातें ही शरीर को उस अनुभव को पाने के लिए तैयार करती हैं। इस केंद्र को ध्यान एवं योगादि द्वारा 'निरापद' अथवा 'इम्यून' बनाकर साधक सृष्टि की सभी वस्तुओं के मूलभूत स्वरूप को जान सकता है। यही उसे 'सत् चित् आनंद' से साक्षात्कार करा सकता है।

समस्त जीवित प्राणियों में कुछ प्रक्रियाएँ होती हैं। 1. जब एक अणु दो बन जाता है इसमें उसमें रंचमात्र भी कोई रूपांतरण नहीं होता। 2. दूसरी स्थिति में तापमान, तरंग, (स्पर्श, नाद) प्रकाश और इलेक्ट्रिकल चॉर्ज (विद्युत आवेश) एवं विद्युत चुंबकीय क्षेत्र द्वारा अणु के रूपांतरण में परिवर्तन हो सकता है। अर्थात् वह पहले अणु कुछ भिन्न हो सकता है। 3. तीसरी स्थिति में अणु का एक बिलकुल नया! ढाँचा तैयार हो सकता है। वैज्ञानिक शोधों से मेरुदंड की एक ऐसी प्रक्रिया का पता चला है, जो उसकी मध्यनाड़ी (अर्थात् सुषुम्ना) में मौजूद तरल पदार्थ को गति देती है। इसे मेरुदंड का 'पंपिंग सिस्टम' कहा गया है। इसी तरह मस्तिष्क में उन स्थानों या केंद्रों को खोज निकाला गया है, जहां व्यक्ति विभिन्न अनुभूतियाँ अनुभव करता है। मनुष्य शरीर की विकासावस्था में ऐसे तीन मस्तिष्क विकसित हुए हैं, जो भिन्न-भिन्न दायित्व निबाहते हैं इनमें से एक लगभग 28 करोड़ वर्ष पुराना है, जो मनुष्य के व्यवहारों को समन्वित करता है। तथा क्षेत्रीयता संबंधी भावनाएँ, कर्मकांडी संघर्ष, प्रवासन, एकीकरण, संग्रहीकरण संबंधी व्यवहार इसी मस्तिष्क से नियंत्रित और समन्वित होता है।

दूसरा मस्तिष्क साढ़े सोलह करोड़ वर्ष पुराना है, जिसमें तीन उप प्रणालियाँ हैं। इनमें से दो गंध, मौखिक एवं प्रजनन संबंधी कार्यों से संबंध रखती है। यह व्यवहार के संदर्भ में भावनाओं और अनुभूतियों के लिए मार्गदर्शक की भूमिका निभाती है। नाक और सेरेब्रल कॉरटेक्स के संबंधों में 'समर्पण' की भावनात्मक स्थिति की मौजूदगी मानी गयी। आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए प्राय: सभी धर्मों एवं संप्रदायों में समर्पण को पहली शर्त माना गया है। विभिन्न साधनाओं में प्राणायाम,

आसन आदि विभिन्न रीतियों से शरीर और मस्तिष्क को इस खास अनुभूति के अनुभव के लिए तैयार किया जाता है, जिसे 'आनंद' कहा गया है। जहां यह अनुभव होता है वह हमारे 'नर्वस सिस्टम' का सबसे पुराना भाग है, जिसे Triune Brain नाम दिया गया है। यदि इस क्षेत्र को 'उपयुक्त, अनुकूल' बना लिया जाए तो व्यक्ति बाह्य पर्यावरणीय जरूरतों और बंधनों से स्वयं को निरापद कर लेता है। इससे एक विशिष्ट भावनात्मकता के साथ चेतना भी निसृत होती है। ध्यान आदि के द्वारा योगी सभी सृजित वस्तुओं की बुनियादी स्थिति महसूस करने लगता है। और इसी समय उसे सत्, चित्त, आनंद का अनुभव भी होता है। मस्तिष्क संबंधी आधुनिक खोजें दूरानूभूति, दूरानुश्रवण जैसी मान्यताओं के आधार को भी खोज रही हैं।

कई वर्षों पूर्व पूर्व सोवियत संघ में वैज्ञानिक इस प्रयत्न में लगे थे कि जल के भीतर पनडुब्बी से संदेश-प्रेषण कैसे किया जा सकता है। वे बिना किसी यंत्र की सहायता से ऐसे संदेश-प्रेषण का प्रयत्न कर रहे थे। दूसरे शब्दों में वे दूरानूभूति के सिद्धांत का भी पता लगा रहे थे। उन्होंने एक ऐसी बिल्ली को प्रयोग के लिए लिया जिसने अभी-अभी कुछ बच्चों को जन्म दिया था। वे उसके बच्चों को एक पनडुब्बी के भीतर ले गये। वहां उन्होंने एक-एक कर उन बच्चों को मारना शुरू किया। प्रयोग में पता चला कि जब-जब कोई बच्चा मरता था तो बिल्ली के मस्तिष्क में एक खास हलचल होती थी और बिल्ली व्यग्र हो जाती थी।

व्यावसायिकता का दुष्परिणाम

हम सब भी अपने जीवन में कभी-कभी दूरानुभूति का 'चमत्कार' अनुभव करते हैं। मनुष्य मस्तिष्क में अपार संभावनाएं और क्षमताएं विद्यमान हैं। भारत ही नहीं, अन्य देशों में भी साधकों ने अपनी ध्यानावस्था में इन्हीं संभावनाओं और क्षमताओं की झलक देखी है। उन्होंने उसके उपयोग की विधियां भी विकसित की हैं। तंत्र में भी मनोविज्ञान के कुछ सिद्धांत काम करते हैं। अतिशय आध्यात्मिकता एवं गोपनीयता के आवरण के कारण हम उन्हें समझ नहीं पाते। 'सिद्ध साधक' भी अपने अनुभवों के वैज्ञानिक आधार को खोजने में प्रवृत्त नहीं होते। वे उसे 'परमेश्वर' की कृपा मान लेते हैं। साधना में 'पाखंड' का समावेश उसके लक्ष्य को और दुरूह बना देता है। जरूरत इस दुरूहता को समाप्त करने की है तभी तंत्र या अन्य साधनाओं के वास्तविक महत्त्व को समझा जा सकता है। कभी-कभी

'रहस्यात्मकता' व्यावसायिक लाभ के लिए भी जरूरी हो जाती है। और आज तो साधना का भी अच्छा खासा व्यवसायीकरण हो गया है। इससे कुछ लोगों को आर्थिक एवं अन्य लाभ तो जरूर होते हैं, तथापि साधना की पद्धति, उसके लक्ष्य, उसकी सार्थकता को जबर्दस्त क्षति पहुंचती है।

काम : एक मूल परिचालन शक्ति

तंत्र-शास्त्र का यथार्थ क्या है? यह जानने के लिए एक वैज्ञानिक मनोभूमि का होना आवश्यक है। तभी इसके 'सार' और 'निस्सार' को समझा जा सकता है। भूख, निंद्रा, काम, भय, ज्ञान-लालसा ये मनुष्य की सहज बुनियादी प्रवृत्तियाँ हैं। इनमें चार तो पशु में भी हैं। मनुष्य की ज्ञान-लालसा ही उसे पशु-पक्षी जगत से पृथक करती है। इसी ज्ञान-लालसा के कारण मनुष्य ने एक ओर जहां काल-विशेष के लिए उपयोगी नीति-नियमों की रचना की, वहीं उसने स्वयं को अंतरिक्ष की खोज के लिए भी समर्पित किया। जीवन में 'काम' की भूमिका धर्म-अर्थ और मोक्ष से ज्यादा सक्रिय है। हमारा तमाम पौराणिक साहित्य ऐसे प्रसंगों से भरा पड़ा है, जहां काम के कारण व्यक्तियों की तपस्या भंग हुई। यहां तक कि शिव भी नहीं बच पाये। अंततः उन्हें उसे भस्म ही करना पड़ा। लेकिन लोक समाज में पार्वती या शक्ति के साथ शिव के जिस रूप की पूजा होती है, वह सर्वविदित है।

यद्यपि काम को चार पुरुषार्थों में से एक धर्म-अर्थ के बाद मोक्ष के पूर्व माना गया है, तथापि भारतीय दार्शनिक परंपरा में एक धारा ने यदि उसे मोक्ष में बाधक समझकर हेय एवं त्याज घोषित किया गया, वहीं दूसरी धारा ने उसे मोक्ष का साधन माना। योग में भोग त्याज्य है। जबकि तंत्र में योग एवं भोग दोनों हैं। एक दिलचस्प तथ्य यह है कि योग में भी जिस परमानंद की चर्चा की गयी है, उसके आस्वाद का नमूना कामानंद ही बताया गया है। कामानंद क्षणिक होता है, जबकि योग का कहना है कि समाधिवस्था में साधक यह आनंद स्थायी रख सकता है। यह समाधिवस्था सहस्त्रार में शिव-शक्ति के महामिलन (मैथुन) से प्राप्त होती है। कुंडलिनी योग में जिन प्रतीकों का आश्रय लिया गया है, वे सांसारिक मैथुन के ही हैं। कामभाव की संतुष्टि एक विचार शून्यता की सृष्टि करती है। वह व्यक्ति को स्फूर्तिमय बनाती है। उससे तन-मन आनंद का अनुभव करता है। समाधिवस्था में भी विचार शून्यता का अनुभव व्यक्ति को तरो-ताजा बना जाता है। कभी-कभी ऐसा लगता है कि सामूहिक संकीर्तन की

चरमावस्था भी एक प्रकार का कामसुख प्रदान करती है। राधा-कृष्ण का प्रेम परकीया को एक प्रतिष्ठा देता है। तंत्र में भी परकीया का महत्त्व है। स्वीकाया को स्वीकृति शायद सभ्य समाज की वर्जनाओं ने ही प्रदान की। परकीया से संबंध व्यभिचार में गिना जाने लगा। तंत्र में भी इस सामाजिक दबाव ने कार्य किया, पर परकीया के इस्तेमाल की छूट रही, कुछ शर्तों के साथ। शर्त यही थी कि यदि साधक की स्वकीया अर्थात् पत्नी साधना में पारंगत नहीं है, अधिकारिणी नहीं है तो वह परकीया के साथ साधना कर सकता है।

मनुष्य अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए धर्म, दर्शन आदि का प्रयोग करना बखूबी जानता है। यद्यपि तांत्रिक समाज इसे स्वीकार नहीं करेगा, तथापि प्रथम दृष्टि में पंचमकार के 'मैथुन' से संबंधित सारी साधनाएँ काम संतुष्टि का एक प्रच्छन्न साधन ही प्रतीत होती है। मैथुन के साथ जुड़ी पूजा-पाठ की विधियाँ उसे एक 'वैधता' और 'देवत्व' का जामा पहनाने का ही प्रयत्न प्रतीत होती हैं। यों वैदिक समाज में भी मैथुन के साथ अनेक विधि-विधानों एवं मंत्र जाप का उल्लेख मिलता है। वहां मैथुन का लक्ष्य आनंद प्राप्ति नहीं, संतान कामना दर्शाया गया है। लेकिन यदि तह में जाकर देखा जाए तो मूल में काम भाव ही सक्रिय मिलेगा। और यह कोई लज्जा की बात भी नहीं है। मनुष्य की वह एक आदिम भूख ही है, जिससे मुक्त होना न संभव है और न उचित ही। दमित काम व्यक्ति और समाज के जीवन में कितना घातक हो सकता है, यह सभी जानते हैं। फ्रायड ने शायद सर्वप्रथम काम के महत्त्व को और काम वासना के दमन के कारण उत्पन्न होने वाली मानसिक विकतियों को वैज्ञानिकता के साथ उजागर किया।

भारतीय चिंतन ने काम के महत्त्व को नकारा नहीं है। वात्सायन रचित 'कामसूत्र' का अध्ययन इसे भली भांति स्पष्ट कर देता है। 'कामसूत्र' में विभिन्न नायक-नायिकाओं का वर्णन, सहवास के प्रकार और रीतियां, एकाधिक संबंधों को निबाहने में बरती जाने वाली सावधानी का विवरण आदि यही दर्शाता है कि पूर्ण संतुष्ट और तृप्त जीवन जीने में काम की संतुष्टि की कितनी अहम् भूमिका है।

यंत्र और लता

यंत्रों को दिव्य एवं अलौकिक शक्तियों का आवास माना गया है। इन शक्तियों की संख्या चौदह बतायी गयी है और उसी संख्या के आधार पर यंत्रों का निर्माण होता है। कुछ यंत्रों में संख्याएं भी लिखी जाती हैं। वे छत्तीस तत्वों की प्रतीक छत्तीस की संख्या के अंतर्गत ही होती हैं। अनेक यंत्रों में चतुष्कोण के मध्य

में वृत्त के भीतर त्रिकोणों का रेखांकन भी होता है। चतुष्कोण की 'बॉर्डर' में लताओं और फूलों का भी चित्रण किया जाता है। लताओं के साथ फूलों की उपस्थिति एक प्राचीन विश्वास की भी प्रतीक कही जा सकती हैं।

तंत्र-शास्त्र में लता-साधन को शक्ति साधन अथवा भैरवी साधन भी कहा जाता है। तंत्र में स्त्री योनि को 'लता' नाम से भी संबोधित किया गया है। साधन शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं, 'लता' को साधना या उपाय मानना अथवा उसे साधना। विभिन्न यंत्रों में रेखांकन भी होता है।

स्त्री योनि को लता क्यों कहा गया है? जैसा कि पहले भी उल्लेख किया गया है। इसके अर्थ के सूत्र भी हमें आदिम विश्वासों में मिलते हैं। एक आदिम विश्वास यह था कि स्त्री योनि समस्त सम्पत्ति का स्रोत है। आदिम मनुष्य योनि एवं धरती में एक अद्‌भुत समानता देखता था। धरती पर पेड़-पौधे ऊगते थे तो नवजात शिशु के संसार में प्रवेश का मार्ग भी योनि ही थी। आदिम मनुष्य की बुद्धि उतनी विकसित नहीं थी कि वह प्रजनन क्रिया की वास्तविकताओं को समझ सके। अत: धरती की भांति नारी भी, उसकी योनि भी उसके लिए पूज्य थी। योनि का एक प्रतीक लता भी थी। इसलिए कि जिस तरह लता में फूल उगते हैं, उसी तरह योनि से शिशु प्रकट होता है। योनि से ही रज नि:सृत होता है। लता में फल के पहले फूल आते हैं, उसी तरह रजोदर्शन के बाद ही गर्भाधान होता है। इसलिए तंत्र में रज को पुष्प की संज्ञा दी गयी है।

कालांतर में मनुष्य की समझ बढ़ी। उसने प्रकृति के रहस्यों को कुछ-कुछ समझना शुरू किया। लेकिन अदृश्य शक्तियों पर उसकी जो आस्था बनी रही, वह इक्कीसवी शती में भी यथावत् है। वैदिक काल तक अग्नि को देवता मान यज्ञ के रूप में उसकी पूजा का प्रचलन सर्वव्यापी हुआ। कालांतर में यज्ञ कर्म की एक संहिता भी बन गयी। उपनिषद काल तक आते-आते मनुष्य का दार्शनिक चिंतन और प्रखर हो गया। एक ओर ब्रह्मज्ञान और दूसरी ओर कामसुख, एक बुनियादी सहजवृत्ति। चिंतकों ने दोनों के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने सृष्टि विस्तार में स्त्री एवं पुरुष के मैथुन के महत्त्व को स्वीकारा।

वृहदाकारण्य उपनिषद कहता है–

एषां वै भूतानां पृथ्वी रस, पृथिव्या प्रापोऽयामोषधय:,
ओषधीनां पुष्पाणि, पुष्पाणां फलानि, फलानां पुरुष, पुरुषास्य रेत:

भावार्थ : इन पंचभूतों का रस पृथ्वी है। पृथ्वी का रस जल है। जल का रस औषधि है। औषधियों का रस पुष्प है। पुष्पों का रस फल है। फलों का रस

पुरुष शरीर है। पुरुष शरीर का रस वीर्य है।

इसी उपनिषद के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम वीर्य को उत्पन्न किया और वह व्यर्थ न जाए, इसलिए उसने स्त्री की रचना की। बृहदाकारण्य उपनिषद के ही एक मंत्र में स्त्री शरीर को एक यज्ञशाला निरूपित किया गया है। उसका जनांग अर्थात् योनिस्थल ही वेदी है। फिर इसी मंत्र में योनि प्रदेश का चित्रात्मक वर्णन मिलता है–

तस्या वेदि रूपास्थो लोमानि, बर्हिश्चर्माधिषवणे, समिद्धो
मध्यतस्यों मुष्कौ, स यावान ह वै वाजपेयेन
यजमानस्य लोको भवति तावानस्य लोको भवति,
य एवं विद्वानद्योयह्रासं चारत्यसां सुकृतं वृङ्क्तेऽथ,
य इदमविद्वानद्योपह्रासं चरत्पस्य स्त्रियः सुकृतं वृञ्जते।

सारांश में स्त्री का शरीर यज्ञशाला है उसका जनांग योनिस्थल यज्ञ की वेदी हैं योनि स्थल पर उगे रोम वेदी पर बिछी कुशाएँ हैं, भगोष्ठ ही मृगचर्म है। इस भगोष्ठ के नीचे दो अन्य लघु कपाट ही अधिवषण है। भंगाकुर ही प्रदीप्त अग्नि की लपट है।

बृहदाकारण्य उपनिषद मैथुन को यज्ञ कर्म मानता है। वह स्त्री को विषय का साधन नहीं समझता। वह स्त्री को यज्ञ की भांति पवित्र मानता है। उसके अनुसार स्त्रो को विषय का साधन समझने वाले लोग पतन के गर्त में गिरते हैं। स्त्री की योनि के प्रति आदिम काल से चला आ रहा, यह पूज्यभाव न केवल उपनिषदों में वरन तंत्र में भी मौजूद है। लता साधन में भी ऐसा ही भाव है। तंत्र भी योनि सुख के उद्देश्य से की गई साधना को हानिप्रद मानता है। न केवल इस जीवन के लिए वरन परलोक के लिए भी।

लता साधन में साधक वीरासन में बैठ शक्ति को अपनी जंघाओं में बैठा उसके विभिन्न अंगों का मंत्रों एवं गंध-पुष्प से पूजन करता है। इसके पश्चात् वह शक्ति को जंघाओं से उतार उसके योनि विवर में मंत्र द्वारा गंध-पुष्प से पूजन करता है। इसके पश्चात् वह शक्ति की स्वीकृति से उसकी योनि में अपने शिश्नांग को स्थापित कर एक सहस्र मंत्रों का जाप करता है। स्खलन वर्जित है। लता साधन की और भी विस्तृत क्रियाएँ हैं। यहां इस उल्लेख का उद्देश्य यही दर्शाना है कि एक आदिम विश्वास सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ-साथ किस तरह परिष्कृत होता चलता है। लेकिन उसका केंद्रीय भाव अक्षुण्ण रहता है।

समापन

पिछले अध्यायों में हमने तंत्र के संबंध में एक स्थूल रेखा ही खींची है। कुछ लोगों के लिए मात्र 'जादू-टोना' है तो कुछ के लिए एक उच्च आध्यात्मिक साधना। कुछ उसे सभ्यता की प्रारंभिक अवस्था के विश्वासों का ही निरंतर विकास और परिष्करण मानते हैं। तुलसी के शब्दों में कहें तो 'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी'।

एक सहज जिज्ञासा होती है कि इक्कीसवीं शती में तंत्र की क्या कोई प्रासंगिकता है? कुछ लोग उसे 'अप्रासांगिक' एवं 'निरर्थक' कह सकते हैं तो कुछ लोग उसमें समसामयिक एवं आगत समय की समस्याओं का समाधान भी पा सकते हैं। तांत्रिक सिद्धांत या अवधारणाएँ प्रयोगशाला में कसौटी पर नहीं कसी जा सकती। उनके लिए स्वयं अपने जीवन में उनका प्रयोग कर 'सत्य-असत्य' को जानना पड़ेगा। लेकिन आज सबसे बड़ी कठिनाई यह कि तंत्र संबंधी साहित्य तो विपुल है लेकिन तंत्र साधना में पारंगत सिद्ध साधकों या गुरुओं का अभाव ही 'नजर' आता है। 'नजर आता है', इसलिए कि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आज तंत्र का कोई सिद्ध साधक है ही नहीं। यदि अभाव है तो सच्चे, जिज्ञासु शिष्य का। किसी भी तंत्र पद्धति की साधना का मार्ग आसान नहीं है। साधक लक्ष्य पर पहुँचने के पूर्व ही भटक भी सकता है। इसीलिए सिद्ध गुरुओं को शायद यह भी पीड़ा होगी कि उन्हें कोई योग्य सुपात्र शिष्य मिलता ही नहीं। 'तंत्र विज्ञान और साधना' में आचार्य सीताराम जी चतुर्वेदी ने ऐसे ही कुछ गुरुओं की पीड़ा को व्यक्त भी किया है कि आज कोई सुपात्र या योग्य शिष्य मिलता ही नहीं।

हमारी अपनी दृष्टि में तंत्र आज भी अप्रासंगिक नहीं। विशेषकर जहां वह व्यक्तिगत 'स्व' या 'अहं' का समष्टि में समाहार में सहायक होता है। विद्वानों का कहना है कि मनुष्य अपने मस्तिष्क की क्षमता का बहुत अल्प अंश ही प्रयोग कर रहा है। उसकी मानसिक शक्ति वास्तव में चमत्कारिक है। निस्संदेह सच्ची तंत्र

साधना किसी भी व्यक्ति को न केवल इस चमत्कारपूर्ण मानसिक शक्ति का स्वामी ही बना सकती हे, वरन् उसे एक 'पूर्ण' सच्चा इंसान बनने में भी सहायक हो सकती है। लेकिन इसके लिए एक दीर्घ, कठोर साधना और अनुशासनपूर्ण जीवन बिताने की शर्त पूरी करनी पड़ती है। ऐसे साधक आज भी होंगे, पर उनका पता लगाना कठिन है। हाँ, यदि हम स्वयं को सुपात्र बना लें तो शायद किसी दिन सच्चा गुरु मिल भी जाएग। कहा गया है कि शिष्य कभी गुरु को नहीं खोज सकता। उसमें यह क्षमता ही नहीं होती। गुरु तो स्वयं शिष्य खोजता है ताकि मानव-कल्याण के लिए उसकी परंपरा बढ़ सके।

लेकिन तंत्र एक सांत्वना, एक आश्वासन, एक विश्वास भी प्रदान करता है कि कोई गुरु न मिले तो भी कोई बात नहीं। परमशिव के रूप में जगद्गुरु ही स्वयं उसके भीतर विद्यमान हैं। बुद्ध ने भी कहा था–'अप्प दीपो भव'–'स्वयं अपने प्रकाश बनो'। क्या वे तंत्र के ही तत्संबंधी विश्वास को दोहरा रहे थे।

निस्संदेह एक सार्थक जीवन बिताने के लिए तंत्र एक मार्ग उपलब्ध कराता है। इस मार्ग पर आध्यात्मिक उत्कर्ष के फूल भी हैं और भौतिक लिप्सा के काँटे भी। यह यात्री पर ही निर्भर करता है कि वह इन दोनों में से किसको चुने!

●●●

यह पुस्तक आपको कैसी लगी?

आपके सुझाव हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। इससे भविष्य में हम आपकी अधिक सेवा कर सकेंगे। यदि आप चाहते हैं कि हमारे प्रकाशनों की सूचना नियमित रूप से आपके पास पहुंचती रहे तो हमें एक कार्ड पर अपना पता लिख भेजिए। साथ ही यह भी कि भविष्य में आप किस विषय की पुस्तक पढ़ना चाहते हैं, उस विषय की उत्तम संग्रहणीय, विश्वस्त सामग्री का चयन हमारा काम, वह भी बिल्कुल आपकी पसंद के अनुरूप।

यदि आप लेखक हैं। अपने विषय में पारंगत हैं और पाठकों के लिए लोकप्रिय विषयों की सर्वथा उपयोगी पुस्तकें लिखने में सक्षम हैं तथा आपके पास पांडुलिपि तैयार है, तो विवरण भेजें। साथ में लेखन से संबंधित सभी जानकारियों सहित अपना परिचय भी अवश्य भेजें।

मेघ प्रकाशन

239 दरीबाकलाँ, दिल्ली–110006
दूरभाष–3278761, 2913794

हमारे महत्वपूर्ण पठनीय एवं संग्रहणीय प्रकाशन

1.	तंत्र दर्शन	गोविन्द शास्त्री	200 रु.
2.	प्रायोगिक तंत्र	गोविन्द शास्त्री	150 रु.
3.	साधना और संस्कार	गोविन्द शास्त्री	150 रु.
4.	अंकदर्शन	गोविन्द शास्त्री	60 रु.
5.	अंकोदया	इंजी. हरीश श्रीवास्तव	142 रु.
6.	श्री बटुक भैरव साधना	डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी	80 रु.
7.	ज्योतिष ज्ञान प्रदीपिका	अशोक सहजानन्द	80 रु.
8.	ग्रह शांति दीपिका	अशोक सहजानन्द	200 रु.
9.	सिद्ध मंत्र-यंत्र-स्तोत्र सार-संग्रह	अशोक सहजानन्द	200 रु.
10.	जैन ज्योतिष महाविज्ञान	पं. धर्मचंद्र शास्त्री	160 रु.
11.	मंत्र महाविज्ञान	पं. धर्मचंद्र शास्त्री	100 रु.
12.	साधना और सिद्धि	पं. धर्मचंद्र शास्त्री	160 रु.
13.	भूत विद्या (अदृश्य रहस्यों की कुंजी)	डॉ. एम.यू. बहादुर	200 रु.
14.	आपका हाथ-आपका सच्चा मित्र	पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल	250 रु.
15.	द्वादश भाव रहस्य	पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल	160 रु.
16.	शनि: कब शुभ, कब अशुभ	पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल	100 रु.
17.	मंगल : कब शुभ, कब अशुभ	पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल	80 रु.
18.	राहु-केतु : कब शुभ, कब अशुभ	पं. दुर्गा प्रसाद शुक्ल	60 रु.
19.	पुत्र प्राप्ति के सफल उपाय	डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद	40 रु.
20.	आपकी समस्या-हमारा समाधान (1-24)	अशोक सहजानन्द	200 रु.
21.	णाणसायर (1,3,5,6,8,9,10, 13-16, 26-26)	कुसुम जैन	250 रु.
22.	सफलता या असफलता-चुनाव आपका	पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल	40 रु.
23.	इंटरव्यू में सफलता कैसे?	निधि. आर. लाल	40 रु.
24.	विश्व साहित्य की झाँकियाँ	डॉ. जगदीश चंद्र जैन	150 रु.
25.	गोविन्द उवाच	मध्यम पुरुष	20 रु.
26.	सार्थक समाधान?	गंगाप्रसाद मिश्र	80 रु.
27.	संस्कृत साहित्य का सुबोध इतिहास	डॉ. जे.पी. खंडेलवाल	300 रु.
28.	वैदिक साहित्य का इतिहास : नवमूल्यांकन	डॉ. रसिकबिहारी जोशी	450 रु.
29.	सहजानन्द वर्णी और उनकी संस्कृत रचनाएँ	कुसुम जैन	450 रु.
30.	सप्तसंधान महाकाव्य : समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. श्रेयांस	300 रु.
31.	महामंत्र णमोकार : वैज्ञानिक अन्वेषण	डॉ. रवीन्द्र कुमार	100 रु.
32.	त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरितम् महाकाव्य	आचार्य हेमचंद	650 रु.
33.	भारतीय नाट्य संदर्भ	डॉ. मनोहर काले	100 रु.
34.	आत्मा का वैभव	दर्शन लाड	100 रु.
35.	अनिष्ट ग्रह चिकित्सा	पांडे दीक्षित	40 रु.

पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ल हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार, लेखक एवं प्रसिद्ध अनुवादक हैं। कुछ वर्षों पूर्व हिंदी की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका 'कादम्बिनी' के डिप्टी-एडीटर पद से सेवा-निवृत्त हुए। इस अवधि में श्री शुक्ल का देश के अनेक प्रख्यात ज्योतिषियों– हस्तरेखाविदों एवं तांत्रिकों से परिचय हुआ। इस संपर्क ने उन्हें इन विषयों के अध्ययन की ओर उन्मुख किया। अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि इन विषयों पर अधिकांश पुस्तकें एक परंपरागत शैली पर आधारित हैं जो कहीं-कहीं अस्पष्ट और दुरुह भी हो जाती हैं। अतः उन्होंने ज्योतिष, हस्तरेखाशास्त्र और 'तंत्र-विद्या' पर ऐसी प्रमाणिक पुस्तकें लिखने का मन बनाया जो वास्तविक रूप से पाठकों का मार्गदर्शन करने में सक्षम हों। उनके लेखन की विशेषता पाठकों को अंधविश्वासी न बनाकर, उनमें जिज्ञासु भाव का सृजन करना है।

प्रकाशित कृतियाँ

1. द्वादश भाव रहस्य
2. आपका हाथ-आपका सच्चा मित्र
3. शनि : कब शुभ, कब अशुभ
4. मंगल : कब शुभ, कब अशुभ
5. राहु-केतु : कब शुभ, कब अशुभ
6. ग्रहों का कामभाव पर प्रभाव
7. तंत्र विद्या का यर्थाथ
8. सफलता या असफलता : चुनाव आपका
9. समय की बाँसुरी (कविता संग्रह)
10. पल्टेमार (उपन्यास)
11. जोगती (उपन्यास)

बाल-साहित्य से सम्बद्ध कई कृतियाँ
देशी-विदेशी अनेक कृतियों का अनुवाद

शीघ्र प्रकाशय

1. मुखाकृति विज्ञान
2. ज्योतिष कौमुदी

महत्वपूर्ण पठनीय एवं संग्रहणीय प्रकाशन

तंत्र दर्शन (गोविन्द शास्त्री)

इस ग्रंथ की अधिकारी विद्वानों ने 'तंत्र की अष्टाध्यायी' तथा 'तंत्र शास्त्रों का सार-ग्रंथ' के रूप में भूरि-भूरि प्रशंसा की है। तंत्र के सम्बन्ध में फैली भ्रांतियों का निरीक्षण करते हुए तंत्र के सिद्धांतों एवं रहस्यों की प्रमाणिक मीमांसा की गई है।

साधना और संस्कार (गोविन्द शास्त्री)

मंत्र शक्ति के चमत्कारों को पढ़कर कामनाओं के इन्द्रधनुषी स्वप्नों में खो जाना स्वाभाविक है किन्तु उपासना की तकनीक एवं रहस्यों को जाने बिना असफलता निरन्तर सामने आने लगती है। हताश होकर इस सारे विधान को ही असत्य कहने लगते हैं। साधना के रहस्य को संस्कारित हुए बिना नहीं पाया जा सकता। यह ग्रंथ पवित्र तपोधन ऋषियों की प्रतिभूति हैं आपके सप्राण प्रयत्नों के आगे सिद्धि को आना ही होगा।

सिद्ध मंत्र-यंत्र-स्तोत्र सार संग्रह (आचार्य अशोक सहजानन्द)

इस ग्रंथ में प्रामाणिक दुर्लभ मंत्रों एवं यंत्रों का संकलन किया गया है जो आपके जीवन की विषमताओं के समाधान एवं मनोकामनाओं की पूर्ति में निश्चित रूप में सफल मार्गदर्शक हैं। साथ ही अद्भुत स्रोतों का संकलन भी।

ग्रह शांति दीपिका (आचार्य अशोक सहजानन्द)

यदि आप मानसिक रूप से परेशान हैं? आर्थिक रूप से परेशान हैं? किसी शारीरिक व्याधि से परेशान हैं? बार-बार अपनी असफलताओं से परेशान हैं? अथवा अन्य किसी भी प्रकार की परेशानी में हैं तो निश्चय ही आप किसी ग्रह के अनिष्ट प्रभावों के शिकार हैं। इस पुस्तक को पढ़कर आप स्वयं अपने ऊपर पड़ने वाले ग्रहों के अनिष्ट प्रभावों का उपचार कर सकेंगे।

भूत विद्या : अदृश्य रहस्यों की कुंजी (डॉ. एम.यू. बहादुर)

इस ग्रंथ में अत्यन्त वैज्ञानिक रूप से, विस्तार से भूत-प्रेत; पिशाचों के स्वरूप, निवास-स्थान, आक्रमण-काल, इनसे प्रभावित होने वाले व्यक्ति विशेष, आक्रमण करने पर प्रकट होने वाले लक्षणों को, इनके आघात से बचने के उपायों, तथा उनके प्रभाव से रोगी को मुक्त करने के लिए प्रयुक्त महत्त्वपूर्ण वनस्पतियों, अंजन, धूप, मंत्र, यंत्र, बलिदान आदि का वर्णन किया गया है। साथ ही प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों 'युक्तिव्यापाश्रय' तथा 'देव्यव्यापाश्रय' का वर्णन भी। एक कोहेनूर हीरे के सदृश्य मूल्यवान ग्रंथ।

श्री बटुक भैरव साधना (डॉ. रुद्रदेव त्रिपाठी)

भैरव भगवान शिव के अवतार हैं और भगवान भैरव की साधना के बिना किसी भी शक्ति की साधना पूर्ण नहीं होती। भैरव के विभिन्न अवतारों के परिचय के साथ प्रामाणिक अचूक मंत्रों, यंत्रों एवं तंत्र-प्रयोगों का अनूठा संकलन। दैनिक जीवन की विषमताओं के समाधान तथा इच्छित कामनाओं की पूति हेतु साधना के गुप्त रहस्यों का अनूठा विशिष्ट संग्रह।

मेघ प्रकाशन
239, दरीबाकलाँ, दिल्ली-110006
दूरभाष : 3278761